खण्ड १९, २० और २१

कणिका में प्रउत

श्री प्रभातरंजन सरकार

कणिका में प्राउट

[ऊनविंश, विंश और एकविंश खण्ड]

श्री प्रभातरंजन सरकार

विषयसूची

শ্রীপ্রভাত রঞ্জন সরকার

© आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (केन्द्रीय) कर्तृक सर्बसत्व संरक्षित

रजिष्टर्ड अफिस : आनन्दनगर, पो० बागलता, जिला-पुरुलिया, प० बं०

सम्पर्क कार्यालय :527, वी.आई.पी. नगर, तिलजला, कलिकता-700 100

प्रथम युग्म संस्करण: 12 February, 2018

प्रकाशक: आचार्य मन्त्रेश्वरानन्द अवधूत

(केन्द्रीय प्रकाशन सचिव)

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ 527, वी.आई.पी. नगर, कलिकता-700 100

मुद्राकर: आचार्य अभिव्रतानन्द अबधूत आनन्द प्रिन्टार्ग 3/1C, मोहनवागान लेन, कलिकता-700006

विषयसूची

प्राप्तिस्थान: आनन्दमार्ग प्रचारक संघ 527, वी.आई.पी. नगर, कलिकता-700 100

ISBN 978-81-7252-378-7

Price Rs.200.00 only.

प्रकाशक का निबेदन

विषयसूची

श्री श्री प्रभात रंजन सरकार ने सर्वतोमुखी आध्यात्मिक दर्शन के प्रवर्तन के साथ-साथ उसी दर्शन के अविच्छेद्य अङ्ग के रूप में एक सामाजिक-आर्थिक तत्व 'प्राउट' भी प्रतिपादित किया हैं। इस सम्बन्ध में उनका सुस्पष्ट अभिमत है - प्रत्येक मनुष्य और जीव को सर्वनिम्न आवश्यकता जैसे अन्न, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा, बासस्थान की व्यवस्था होनी चाहिए। इसी आवश्यकता को यथार्थ रूप से पूरा करने के लिए वे प्राउट दर्शन की प्रस्तुत करने के लिए बाध्य हुए।

पहले प्राउट सम्बन्धित प्रवचन उनके विशाल पुस्तक सम्भार में विच्छिन्न रूपों में था। १९८७ साल से लेखक के निर्देशानुसार "कणिका में प्राउट" नामक ग्रन्थशाला में उन प्रवचनों को संग्रहित करना प्रारम्भ हुआ।

विषयसूची

वर्तमान खण्ड इसी प्रयास के फलस्वरूप "कणिका में प्राउट" उनविंश, विंश और एकविंश खण्डों की एकत्रित कर प्रकाशित किये गया है। जिसे विद्वत् पाठकों के हाथों में अर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

वर्तमान पुस्तक में अन्तर्भुक्त सभी प्रवचनों का मूल बंगला से हिन्दी में श्री मनतोष कुमार मण्डल ने अनुवाद किया हैं। श्री मण्डल जी ने प्रुफ देखने में भी सहयोग किया हैं। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

शुभेच्छा के साथ-

प्रकाशक

१२ फरवरी, २०१८

आनन्दमार्ग प्रकाशन विभाग

विषयसूची

५२७, वि.आइ.पि. नगर

कोलकात-१००

रोमन संस्कृत वर्णमाला

विभिन्न भाषाओं का ठीक - ठीक उच्चारण करने के लिए तथा द्रुतलेखन के प्रयोजन को समझकर निम्नलिखित पद्धति से रोमन संस्कृत वर्णमाला का प्रवर्त्तन किया गया है

অ আ ই ঈ উ ঊ ঋ ৠ ঌ ৡ এ ঐ ও ঔ অং অঃ

विषयसूची

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

a á i ii u ú r rr lr lrr e ae o ao aḿ ah

ক খ গ ঘ ঙ চ ছ জ ঝ ঞ

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ

ka kha ga gha uṋa ca cha ja jha iṋa

ট ঠ ড ঢ ণ ত থ দ ধ ন

ट ठ ड ढ ण त थ द ध न

t́a t́ha d́a d́ha ńa ta tha da dha na

প ফ ৱ ভ ম

प फ ब भ म

Pa pha ba bha ma

য র ল ব

विषयसूची

য র ল ৱ

ya ra la va

শ ষ স হ ক্ষ

श ष स ह क्ष

sha śa sa ha kśa

অঁ জ্ঞ ঋষি ছায়া জ্ঞান সংস্কৃত ততোঽহং

अँ ज्ञ ऋषि छाया ज्ञान संस्कृत ततोऽहं

aṋ jiṋa rśi cháyá jiṋána saḿskrta tato’haḿ

a á b c d d́ e g h i j k l m ḿ n

ń ṋ o p r s ś t t́ u ú v y

समग्र विश्व में बहुत प्रचारित रोमन लिपि के २९ अक्षर मात्र से संस्कृत भाषा का ठीक - ठीक उच्चारण किया जाना

विषयसूची

सम्भव है । इसमें युक्ताक्षर का भी झमेला नहीं है । अरबी , फारसी और अन्यान्य f, q , gh , z , प्रभुति अक्षरों का प्रयोजन रहता है , संस्कृत में नहीं । शब्द के मध्य या शेष में ' ड ' , ' ढ ' यथाक्रम ' ड़ ' और ' ढ़ ' ' रूप में उच्चारित होते हैं । ' य ' (जहाँ ' य ' का उच्चारण ' इ ' , ' अ ' होता है) के समान वे भी कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं । प्रयोजन के अनुसार और असंस्कृत शब्द लिखने के समय ŕa और ŕha व्यवहार किया जा सकता है ।

गैर- संस्कृत शब्द लिखने के लिए दिए गए दश अतिरिक्त अक्षर

क़   ख़   ज़   ड़   ढ़   फ़   य़   ल़   ৎ   अँ

क़	ख़	ज़	ड़	ढ़	फ़	य़	ऌ	त्	अँ
qua	qhua	za	ŕ	ŕha	fa	ya	lra	t	an̂

विषय-सूची

(ऊनविंश खण्ड)

1. पूर्वार्द्ध तत्त्व

2. आयरलैंड का संक्षिप्त इतिहास

3. बंगलादेश की कई उन्नयनमूलक परिकल्पनाएँ

4. त्रिपुरा का अर्थनैतिक उन्नयन

5. विहार का अर्थनैतिक उन्नयन

6. चक्रनेमी (मास्टर युनिट)

7. अर्थनैतिक शोषण के तीन रूप

8. बंगाल के कई अञ्चलों के उन्नयन के सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य

विषयसूची

(विंश खण्ड)

9. बंगाल की सामाजिक-अर्थनैतिक संभावनाएँ

10. कृषि समवाय

11. उत्तर-पूर्व भारत

12. दक्षिण बंग

13. काँथि अववाहिका की परिकल्पनाएँ

14. बंगाल के लिए कई उन्नयनमूलक कार्यक्रम

(एकविंश खण्ड)

15. इतिहास तथा अन्धविश्वास

16. समाज का दायित्व

17. गान्धीवाद की सामाजिक त्रुटियाँ

विषयसूची

18. मानव समाज को कैसे एकताबद्ध किया जा सकेगा

19. विकेन्द्रित अर्थनीति

20. अर्थनैतिक गणतन्त्र

21. मादक द्रव्य

22. न्युक्लीयर विप्लव

पूर्वार्द्र तत्त्व

पश्चिम बंगाल, बंगला देश, त्रिपुरा और असम समन्वित भारत के पूर्वाञ्चल में अवस्थित यह विशाल भूभाग जलवायु के दृष्टिकोण से भी वैशिष्ट्य पूर्ण है। समग्र अञ्चल की जलवायु ही उष्ण तथा आर्द्र है। समुद्र के नजदीक होने की वजह से सर्दी-गर्मी भी उतना अधिक प्रखर नहीं होता है। पश्चिमांश की समतल भूमि में गरमी में 120 deg फारेनहाइट तक गर्मी बढ़ जाती है, पुनः शीतकाल में 55 deg फारेनहाइट के लगभग नीचे उतर जाती है। लेकिन पूर्वी भाग में अर्थात् त्रिपुरा या असम में जलवायु कुछ हद तक सिक्त तथा आर्द्र होता है। पश्चिम राढ़ में वार्षिक वर्षा का

विषयसूची

परिमाण जहाँ पर 50 ^ prime prime -55^ prime prime होता है, वहीं पर पूर्वाञ्चल में अर्थात् असम या मेघालय अञ्चल में औसत वर्षा का परिमाण 508 ^ prime prime होता है। उत्तर में दार्जिलिंग तथा जलपाइगुड़ी जिला में औसत वर्षा का परिमाण 120 ^ prime prime इञ्च होता है। दक्षिण में सुन्दरवन इलाके में औसत वर्षा 100 ^ prime prime इञ्च के बराबर है। दक्षिण-पश्चिमी मौसमी हवा हिमालय से बाधा प्राप्त होकर पश्चिम की ओर मुड़कर असम, त्रिपुरा, बंगलादेश, पश्चिम बंगाल, राढ़ तथा विहार के उपर वृष्टिपात करते हुए और भी पश्चिम में अग्रसर होता है। लेकिन जितना ही पश्चिम की ओर बढ़ने लगती है जलीय वाष्प का परिमाण उतना ही कम होता जाता है। हवा में सुखापन आने लगता है।

विषयसूची

भौगोलिक परिवेश तथा परिमण्डल स्थानीय लोगों के पोषाक-परिच्छद, खान-पान, दैनन्दिन जीवन का व्यवहार-योग्य सामग्रियाँ तथा आचार-आचरण को विपुलरूप से नियन्त्रित तथा प्रभावित करता है। ऐसा है कि स्थानीय जलवायु ही वहाँ के रहनेवालों की भावना- चिन्ताएँ, चारित्रिक वैशिष्ट्य तथा स्वभाव को भी नियन्त्रित करता है। वैज्ञानिक समीक्षा से पता चलता है कि आर्द्र जलवायु इलाके की अधिवासी लोग जिस परिमाण में कर्मनिपुण होते हैं, उससे बहुत अधिक कर्मतत्पर होते हैं सुखे अञ्चलों में रहनेवाले लोग। मौसम की आर्द्रता तथा उष्णता एक साथ में मिलकर वहाँ के लोगों की कर्मक्षमता को घटा देती है। लोगों को ज्यादे आलसी बना देता है। इस तत्त्व के अनुसार देखा गया है, पूर्वाञ्चल से जितना ही पश्चिम की ओर आगे बढ़ते हैं आर्द्रता घटती जाती है मनुष्य उतना ही अधिक कर्मठता तथा कर्मपटुता लाभ करती है। सुखी मौसम मनुष्य की कर्मपटुता को बढ़ाती है। यही कारण है कि भारत के 'पूर्वाञ्चल में बसनेवाले

लोगों की तुलना में' पश्चिम के अधिवासियों की कर्मपटुता बहुत अधिक होती है। भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है पञ्जाब तथा सबसे पूरब में अवस्थित है असम । इन दो अञ्चलों की मौसम में आर्द्रता तथा शुष्कता का हिसाब करने पर दिखाई पड़ेगा कि दोनों जगहों की मौसम में काफी फर्क है। यह फर्क दोनों इलाकों के अधिवासियों के पोषाक-परिच्छद में ही नहीं खान-पान तथा चरित्र में भी बहुत अन्तर नजर आता है। भारत के उत्तर-पश्चिम में अवस्थित पञ्जाबी लोग सबसे अधिक शुष्क जलवायु अञ्चल में वास करता है, इसलिए भारत के अन्यान्य इलाकों के रहनेवालों की तुलना में ये लोग अधिक परिश्रमी तथा कम आलसी होते है। दुसरी ओर भारत के सबसे अधिक पूर्व में बसनेवाले के रूप में सबसे अधिक आर्द्र तथा भींगी हुई अञ्चल के अधिवासी होने के कारण असम के अधिवासी लोग भारत के अन्यान्य इलाकों में रहनेवाले लोगों की तुलना में कम परिश्रमी तथा बहुत अधिक आलसी होते हैं। इसीलिए पञ्जाबियों के लिए

भारत के किसी भी हिस्से में स्थायी बासिन्दा बनने के लिए कोई दिक्कतें नहीं होती है। लेकिन पूर्वाञ्चल वासियों के लिए पश्चिम में जाकर अधिकतर शुष्क जलवायु में परिश्रम करना उनके लिए कठिन होता है। इसीलिए पञ्जाब के लोग भारत के किसी भी प्रान्त में जाकर वसवास करने में असुविधा का बोध नहीं करते हैं। लेकिन पूर्वाञ्चल के लोग शुष्क इलाके में जाकर वसवास करने तथा वहाँ के लोगों के साथ कठोर परिश्रम नहीं कर पाते हैं। पूर्वाञ्चलवासी पश्चिम में बसने वाले अधिक परिश्रम करनेवालों के साथ उन सभी जगहों की माहौल के साथ अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाते हैं या प्रतियोगिता में उनके साथ चल नहीं पाते हैं।

इसी कारण में पूर्वी बंगाल से आगत उद्वास्तु जब देश विभाजन के बाद भारत में बसना शुरू किया तो दण्डकारण्य में जाकर वहाँ के गर्म तथा शुष्क मौसम में ठीक से व्यवस्थित नहीं कर पाया। अपने को व्यवस्थित न कर पाने के पीछे अर्थनैतिक कारण भी विद्यमान है, क्यों कि वहाँ पर रहकर जीवन धारण करने की यथेष्ट व्यवस्था नहीं की गयी थी। तुलनात्मक रूप से पूर्वी बंगाल के जो लोग उद्वास्तु होकर असम, मेघालय तथा अन्दामान में रहने लगे वे लोग वहाँ के माहौल में अपने को मिला लिया। इसका प्रधान कारण है कि वहाँ के उद्वास्तु लोग स्थानीय जलवायु के साथ तुरन्त समझौता कर लिया। दण्डकारण्य में बसे हुए उद्वास्तुओं को आज भी भासमान जनसमुदाय के रूप में माना जाता है। दुसरी और पूर्वाञ्चल के राज्यों में जैसे-असम मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा तथा मणिपुर में- उद्वास्तु लोग वहाँ के स्थायी अधिवासी हो चुके हैं। वे लोग वहुत सारे जगहों में जंगल-झाड़ियों को काटकर सफाई करके

विषयसूची

गाँव का निर्माण करके स्थायी जीविका की भी व्यवस्था कर ली है।

इसीलिए पूर्वार्द्र नीति उद्धास्तु समस्याओं का स्वाभाविक तथा विज्ञानसम्मत समाधान दे चुकी है। क्योंकि इस तत्व के अनुसार मनुष्य स्थानीय जलवायु तथा अवस्था का पूर्ण सद्व्यवहार कर ले सकता है। पूर्वबंग के उद्धास्तु जो लोग पूर्वी भारत में स्थायी रूप से रह रहा है, वे लोग उनकी कर्मक्षमता को कार्यान्वित करने में सफल हो सके हैं। और इसीलिए वे लोग स्थायी वासस्थान, जगह जमीन की व्यवस्था कर लिए है। वे पूर्वी भारत के स्थानीय अधिवासियों के साथ अपने आर्थिक भाग्य को एकात्म कर सके हैं। आज उन्हें हटाने की चिन्ता करना भी असम्भव और अमानवीय है।

विषयसूची

देश विभाजन के समय काँग्रेस नेताओं ने ऊँची आवाजों में प्रतिश्रुति दी थी कि पूर्वबंग से आए हुए संख्यालघुवाले भारत के किसी भी प्रान्त में अपनी इच्छानुसार वास कर सकेंगे। उनलोगों ने उस प्रतिश्रुति को विश्वास किया था और इसी लिए बंग विभाजन को भी स्वीकार किया था। वर्त्तमान में पूर्वी बंगाल से आए हुए लोगों को असम से हटाने के लिए आन्दोलन चला रहे है। केन्द्रीय सरकार का कर्तव्य होगा कि वे उनकी प्रतिश्रुति पालन करें तथा आन्दोलनकारियों को संयत करें, जिससे असम में रह रहें उद्वास्तुओं का सर्वविध कल्याण सुनिश्चित हो सके। जिस प्रकार जो उद्वास्तु लोग नदीया तता चौबीस परगणा जिला में आए थे उनलोगों में अधिकांश लोग वहाँ के स्थायी अधिवासी हो चूके हैं। वे उनके शारीरिक-मानसिक सामर्थ्य को कार्यकारी बनाने में कोई असुविधा का सामना नहीं कर रहे है। क्योंकि वे लोग करीब एक ही प्रकार भौगोलिक आर्थिक-मानसिक अञ्चल के अधिवासी हैं तथा स्थानीय मौसम और परिस्थिति के साथ परिचित हैं। फिर भी

विषयसूची

उद्वास्तु लोगों में से कुछलोग जो चौबीस परगणा जिला में अपनी वस्ती स्थापित किया है वे अभी भी भासमान जन समुदाय के रूप में रह रहे हैं। क्यों कि वहाँ पर उनलोगों के जीवन धारण के लिए उपयुक्त व्यवस्था नहीं किया गया है।

भासमान जनगोष्ठियों के लिए एक मानसिक असुविधा होती है कि, वे उस नए स्थान को आसानी से नहीं अपना सकते है। क्योंकि छोड़कर आए हुए जगह-जमीन तथा घर-द्वार की बातें भूला नहीं पाते हैं। इसी कारण से स्थानीय अधिवासियों की तरह उनके मन में सामाजिक-अर्थनैतिक संहति बोध तैयार होने में देर होती है।

१९८१, कलिकाता

विषयसूची

आयरलैंड का संक्षिप्त इतिहास

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का उच्च कक्ष अर्थात् (House of Lords) और निम्न कक्ष (House of Commons) सह-उसका अवस्थान है, ग्रेट ब्रिटेन की राजधानी लन्दन (London) शहर में। जब से अंग्रेजी ब्रिटेन की राष्ट्रभाषा हुई तबसे वेलस् और स्कटिश भाषा उनकी स्वीकृति खो बैठी। वर्त्तमान में बहुत सारे आन्दोलन के फलस्वरूप वेलस् भाषा प्राथमिक स्तर तक पढ़ाई जाती है, लेकिन स्कटिश भाषा को अभी तक कोई स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई

है। इसका मतलब हुआ स्कटिश और वेल्स् इलाके के मनुष्य अंग्रेजी भाषा में पढ़ने-लिखने के लिए वाध्य हैं। यद्यपि अंग्रेजी उनकी स्वाभाविक भाषा या मातृभाषा नहीं है।

अब, आइरिश सागर के दूसरे प्रान्त में अयरलैंड द्वीप अवस्थित है। अंग्रेजों ने वेलस्, स्काटलैंड और अयरलैंड को अधिकार करके ग्रेट ब्रिटैन के अन्तर्भुक्त कर लिया। देश का जातीय संगीत हुआ-"ब्रिटानिया का शासन है" ("Rule of Britain, rule over the sea, rule Britannia....")। इस अधिकृत द्वीप में आइरिश जन साधारण ब्रिटेन का शासन नहीं मानना चाहता था, इसीलिए उनलोगों ने स्वतन्त्रता संग्राम शुरू कर दिया।

करीब चालीस-पचास साल पहले आइरिशों ने उनके संग्राम में सफलता प्राप्त की। अयरलैंड की एक लड़की की शादी स्पेन देश के एक लड़का के साथ हुई थी। उस लड़की के पास बहुत अधिक पैतृक सम्पत्ति थी। इसलिए वह लड़की अपने पति के देश स्पेन में नहीं गई। बल्कि उनका पति ही अयरलैण्ड में आकर रहना शुरू किया। स्पेनिश सज्जन का नाम था भेलेरा और उन दोनों का एक सन्तान था। माता आइरिश और पिता स्पेनिश लेकिन उस लड़के का जन्म चूँकि अयरलैण्ड में ही हुआ था, इसलिए अयर लैण्ड के प्रति उनके मन में गहरा प्यार तथा भावप्रवणता तैयार हो चुका था। ब्रिटिश शासन से अयरलैण्ड को मुक्त करने के लिए उस लड़के ने स्वतन्त्रता युद्ध में नेतृत्व किया। उनका नाम था मिः डी. भलेरा, जो अयरलैण्ड के महानायक थे। बीस साल तक लड़ाई चलने के बाद अंग्रेजों ने अयरलैण्ड की स्वतन्त्रता मान ली।

अयरलैण्ड जब ग्रेट ब्रिटेन का अन्तर्भुक्त हुआ था तो उस देश का नाम परिवर्त्तित होकर ग्रेट ब्रिटन तथा अयरलैण्ड हुआ था। इसका संक्षिप्त रूप था U. K. (United Kingdoms of Britain and Ireland), राजधानी था लन्दन। सब मिलाकर उस देश का सम्पूर्ण नाम हुआ था (United Kingdoms of England, Wales, Scotland and Ireland) अर्थात इंगलैंड, वेलस् स्कटलैण्ड तथा अयर लैण्ड का संयुक्त राष्ट्र।

यद्यपि ब्रिटेन ने अयरलैण्ड देश की स्वतन्त्रता मान ली लेकिन अंगेजों ने वहाँ पर फुट डालो और शासन करो "(Divide and rule)" की नीति का अनुसरण किया। साठ साल से भी अधिक दिन तक अविराम स्वाधीनता संग्राम चलाने के बाद अंग्रेजों ने भारत की स्वतन्त्रता स्वीकार की लेकिन देश छोड़कर जाने के पहले अंग्रेजों ने भारत को भारत तथा पाकिस्तान दो देशों

में बाँट दिया था। अयरलैण्ड के क्षेत्र में भी एक ही बात हुई थी। अंग्रेजों ने जब D. भलैरा को शासन हस्तान्तर किया तब उन लोगों ने अयरलैण्ड को तोड़कर उत्तर अयरलैण्ड और दक्षिण अयरलैण्ड दो भागों में बाँट दिया था। इंगलैण्ड से बहुत लोग आकर अयरलैण्ड के उत्तर प्रत्यन्त अंश में वसति स्थापन किया। ठीक इसी प्रकार चीन देशियों ने बहुत सारे लोग तिब्बत में भेजा था वहाँ पर बसने के लिए। लक्ष्य था कि तिब्बत में तिब्बतवासियों की तुलना में चीनवासियों की संख्या अधिक हो, और अन्त तक वह देश चीन का अंगीभूत हो जाए। जब जपान ने मंचुरिया को अधिकार कर लिया तो उसका नाम बदलकर माञ्चु-कुओ रखा गया, और साथ ही साथ बहुत सारे जपानी मनुष्य वहाँ पर वसवास करना शुरू किया। कारण यह था कि मञ्चुरिया वासियों की तुलना में विदेशियों की संख्या अधिक हो। अयरलैण्ड के क्षेत्र में भी एक ही घटना घटी। इंगलैण्ड ने परिकल्पनानुसार बहुत सारे लोगों को अयरलैण्ड के उत्तरी हिस्सा में भेजकर वसा दिया।

अंगदेश में भागलपुर और पुर्णिया जिला में बहुत सारे भोजपुरीभाषी आकर रहना शुरु किया था, और उसके फल स्वरूप आज भोजपुरी भाषियों की संख्या अंगिकों की तुलना में अधिक होने का अवसर रह गया है। मगध के जमुई अनुमण्डल में बहुत सारे भोजपुरीभाषी आकर रहना शुरू कर दिया था, और इसी के फलस्वरूप आज वहाँ पर भोजपुरीभाषियों की संख्या मगहियों की तुलना में अधिक होने की संभावनाएँ रह गयी है। विहार और छोर अंचल के मणिरामपुर थाना में आरा अञ्चल से सारे भोजपुरीभाषी आते रहने के कारण उनकी संख्या मगहियों की तुलना में अधिक हो जाएगी और एकदिन वे उस अञ्चल को उनके अपने कह कर माँग करने लगेंगे।

अयरलैण्ड की अवस्था भी ठीक उसी प्रकार की है। ब्रिटेन की इशारा से उत्तरी अयरलैण्ड में अंग्रेजों ने एक आन्दोलन शुरू किया था, और उनकी माँगें थी "हमलोग ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र में ही (United Kingdoms) में ही रहना चाहते हैं। अयरलैण्ड आर. डी भलेरा के अधीन में नहीं है।" इस तरह से ब्रिटिशों का "फुट डालों, और शासन करों", इस नीति के अनुसार अयरलैण्ड को उत्तरी अयरलैण्ड को और दक्षिणी अयरलैण्ड में विभाजित कर दिया। उत्तरी अयरलैण्ड समग्र अञ्चल का मात्र एक पञ्चमांश (1/5) और दक्षिण अयरलैण्ड प्राय चार पञ्चमांश (4/5) भाग है। आज आइरिश नियम के अनुसार उत्तरी अयरलैण्ड ग्रेट ब्रिटेन के अन्तर्भुक्त हो के रह गया है। अर्थात् वर्त्तमान में United Kingdoms of England, Wales, Scotland and Northern Ireland है, जिसका अर्थ हुआ, इंगलैण्ड, वेलस, स्काटलैण्ड तथा उत्तरी अयरलैण्ड का संयुक्त राष्ट्र और दक्षिणी अयरलैण्ड एक सम्पूर्ण स्वतन्त्र देश है।

अयरलैण्ड उमस वाला गरम देश है। इस देश की आकृति गमले की जैसी है अर्थात देश की सीमाएँ ऊँची हैं और मध्यभाग नीचे है। यहाँ का मुख्य अनाज आलु है। इसलिए आलु ही यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन है। आलु, मीठा आलु, परिज, कस्टर्ड आदि यहाँ के लोगों का भोजन है। लेकिन यह देश शिल्पोन्नत नहीं है तथा साथ ही खेती में भी काफी उन्नत नहीं है। मैंने पहले ही कह चूका हूँ किस प्रकार से इस देश को विखण्डित किया गया है। इसीलिए अयरलैण्ड आज अखण्ड देश नहीं है।

उत्तरी अयरलैण्ड जो ग्रेटब्रिटेन का अंश है, जिसे उलस्टार भी कहा जाता है, उसकी राजधानी है बेलफास्ट । दक्षिणी अयरलैण्ड अर्थात अइरिशों का मुक्त राष्ट्र, उसकी राजधानी डबलिन है। अंग्रेज लोग डबलिन का उच्चारण करता है डूबलिन।

इस देश का पहला राष्ट्रपति मि. डी भलेरा की मृत्यु के बाद एक नये नेता राष्ट्रपति के पद पर स्थलाभिषिक्त हुए थे। आइरिश लोग अंग्रेजों को कभी भी अच्छी नजरों से नहीं देखते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार जार्ज वर्णर्ड साह यहीं के रहनेवाले थे।

तो मैं ने तुमलोगों को आयरलैण्ड, उलस्टार, आइरिश मुक्त-राष्ट्र इन सबों का एक संक्षिप्त इतिहास बताया। आइरिश मुक्त-राष्ट्र की भाषा अभी भी आइरिश है लेकिन आंइरिश एक उन्नत भाषा नहीं है। अंग्रेजी शिक्षा तथा उस भाषा में पठन-पाठन का काम देश के सर्वत्र होता है। इसीलिए वहाँ की सरकारी भाषा भी अंग्रेजी ही है लेकिन वहाँ की सरकार आइरिश भाषा को उन्नत बनाने की प्रचेष्टा कर रही है।

२२ मार्च, १९८८ कलिकाता

विषयसूची

बंगलादेश की कई उन्नयनमूलक परिकल्पनाएँ

बंगलादेश बहुत ही गरीब देश है। आन्तर्जातिक बाजार में कच्चा चमड़ा और कच्ची जूट बेचता है। वास्तव में इस देश में कोई धातव खनिज नहीं है, केवल पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस जैसे कुछ अधातव खनिज मिलते है। इसलिए ये थोड़ी सी चीजों को लेकर बंगलादेश आज एक अनुन्नत तथा उद्धृत्त देश है। इस प्रकार के देशों के लिए आन्तर्जातिक क्षेत्र में विनिमय पद्धति से व्यवसाय ही सबसे अधिक श्रेय है।

विषयसूची

बंगलादेश अगर कच्ची जूट तथा कच्चा चमड़ा के बदले इस जूट और चमड़ा से उत्पन्न वस्तुएँ तैयार करता, तो क्या यह विशेष लाभवान होता ? सटीक रूप से जूट शिल्प तैयार करने में बहुत अधिक मूलधन की जरूरत होती है। आज जब नानान प्रकार के कृत्रिम धागों ने जूट का स्थान दखल कर लिया है, तो क्या ऐसी परिस्थिति में काफी रूपये खर्च करके जूटशिल्प तैयार करना उचित होगा ? इसके अलावे आजकल कृत्रिम चमड़े भी विभिन्न प्रकार के मिल रहे है तथा ये कृत्रिम चमड़े साधारण चमड़ों की तुलना में बहुत अधिक टिकाऊ भी होते हैं। इसीलिए आज जूट की जगह पर कृत्रिम धागे आ रहे हैं, और साधारण चमड़ों के बदले कृत्रिम चमड़े आ रहे हैं। इसी प्रकार से कृत्रिम वस्तुएँ जूट और चमड़े का स्थान दखल कर रहे हैं।

विषयसूची

भारत की अभिज्ञताएँ बता रहीं हैं, जूट शिल्प एक रूग्न शिल्प है। क्योंकि यह शिल्प कृत्रिम धागों के साथ प्रतियोगिता में खड़ा नहीं हो पा रहा हैं। आज के समय में भारत के बहुत सारे जूट की खेती करनेवाले लोगों ने जूट की खेती करना ही छोड़ दिया है। लेकिन भारत सरकार मुआबषा (Subsidy) देकर कितने दिन तक जूट शिल्प को जिन्दा रख सकेगी ? यह निश्चित है कि अनन्तकाल तक सरकार इस प्रकार सें Subsidy देकर शिल्प को जीवित नहीं रख सकती है।

थाइलैण्ड भी जूट का उत्पादन करता है। इसीलिए अगर बंगलादेश जूट का उत्पादन बरकरार रखना चाहता है तो उसे थाइलैण्ड के साथ पल्ला देकर चलना पड़ेगा। थाइलैण्ड की जूट बंगलादेश की जूट से उत्कृष्ट है। इसके अलावे यद्यपि थाइलैण्ड कृषिभित्तिक देश है, फिर भी वह मोटामुटी रूप से उन्नत देश है,

अनुन्नत नहीं। इसीलिए अगर थाइलैण्ड आज जूट का बाजार खोता है, तो उसके बदले दूसरे चीज का उत्पादन कर सकेगा। लेकिन अगर बंगलादेश को जूट का बाजार खोना पड़ता है, तो उसके पास कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि यह एक अनुन्नत देश है।

पहले अंग्रेज लोग भारत की जूट ले जाकर स्काटलैण्ड के डाण्डी में जूट से निर्मित वस्तुओं का निर्माण करते थे। उस समय भारत में कोई जूट मिल नहीं था। भारत छोड़ने के बाद अंग्रेजों के लिए डाण्डी के जूट मिलों में कच्ची जूट की आपूर्ति करना मुस्किल हो गया क्योंकि तब तक भारत अपनी जूट मिलें तैयार कर ली थी। इसीलिए अंग्रेजों ने अपनी प्रचेष्टा से जूट मिलों को दूसरे वस्तुओं के उत्पादन के लिए कारखानों को रूपान्तरित कर दिया। ठीक इसी प्रकार मञ्चेस्टर भारतीय कच्ची रूई ले जाकर सूती कपड़े बनाता था। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद

मञ्चेस्टर के कपड़ा मिलों को चालु रखने के लिए भारत से कच्ची रूई मिलना बन्द हो गया।

और एक उदाहरण देखा जाए। पहले भारत नील की निर्यात करके वैदेशिक मुद्रा अर्जन करता था। जब पश्चिमी जर्मनी में कृत्रिम नील का आविष्कार हुआ तब से भारत से नील की निर्यात बन्द हो गई। क्योंकि उस समय भारत का नील का बाजार नहीं रह गया। आज नील के पौधे भारत में जहाँ-तहाँ पैदा होते हैं. लेकिन आज कोई इन सबों के बारे में खोज खबरें नहीं रखते हैं। इसीलिए इतिहास यही बताता है कि किसी बाहरी देशों से कच्चामाल की आपूर्ति के भरोसे शिल्प या कारखाना खोलने के लिए बहुत अधिक रकम का मूलधन लगाना उचित नहीं है।

वर्तमान समय में जपान इसका व्यतिक्रम है। फिर भी जो सब देश जपान को कच्चामाल आपूर्ति करता है, अगर उन देशों की जनता राजनैतिक दृष्टिकोण से सचेत हो जाए और उन कच्चे मालों को आधार बनाकर अपने ही देशों में कारखाने वगैरह बनाना शुरू कर दें तो अवश्य ही जपान को मुस्किल होगा। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है, कि उड़ीसा के पाराद्वीप बन्दरगाह से काफी मात्रा में मैंगनीज और कच्चा लोहा जपान को आपूर्ति की जाती है। अगर इस इलाके की गरीब जनता राजनैतिक रूप से सचेतन हो जाए और वे अपना शिल्प-कारखानें निर्माण के लिए माँगे उत्थापित करें, उस समय जपान में कच्चे माल की निर्यात बन्द हो जाएगी।

जपान उनके इस्पात कारखानों के जुगान देने के लिए, बाहरी देशों से रद्दी (Reject) तथा टुटी फुटी लोहा को खरीदता

है। जब भी सम्भव होता है, जपान के लोग इस्पात का विकल्प व्यवहार करके इस्पात के उपयोग को बचाने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है रेल के बगियों में वे लोग साधारणतः इस्पात का व्यवहार करता ही नहीं है। फिर भी उनकी रेलगाड़ियाँ दुनिया में सबसे अधिक द्रुतगामी (तेज चलनेवाली) है। रेंगुन में एक बहुत बड़ा reject Iron (टुटा-फुटा) लोहे का एक यार्ड है, वहाँ से ये सब लोहे जपान में निर्यात किया जाता है। पाराद्वीप जपान को कोयला भी निर्यात करता है। सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि, जपान बाहर से कच्चामाल की आयात करता है फिर भी दुनिया में सबसे सस्ता इस्पात का निर्माण करता है। वास्तव में जपान एक अपवाद (व्यतिक्रमी है, क्यों कि यह एक उन्नत देश है और कारीगरी विदया में विशेष अग्रगामी देश है।

उड़ीसा भारत में सबसे अधिक पिछड़े राज्यों में एक है। देश के निर्बोध नेताएँ देश के लौह खनिज तथा कोयला की निर्यात करते जा रहे हैं। इसके बदले उनलोगों के लिए उचित होता उड़ीसा के हीराकुँद में छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के कारखाने बनाना, अभी तक भी देश की अवस्था उस परिस्थिति में नहीं पहुँचा है, जहाँ से लौटने का कोई पथ नहीं है। भारत के लिए उनके अपने कच्चे मालों के उपर आधारित शिल्प तथा कारखाने बनाकर आगे बढ़ने का समय अभी भी है।

मान लो, बंगला देश जूट का उत्पादन बन्द करके, धान का उत्पादन बढ़ा देने पर तब क्या होगा ? तब बंगला देश खाद्य के मामले में स्वयंसम्पूर्ण हो जाएगा। लेकिन वाणिज्यिक आदान-प्रदान के लिए दूसरा कोई कच्चा माल न रहने के कारण, देश उन्नति नहीं कर पाएगा। व्यवसायिक आदान-प्रदान के अलावें

कोई भी देश उन्नत नहीं हो सकता है। अगर वाणिज्यिक योगायोग ही नहीं रहेगा तो बंगला देश को लाल मिर्च, दाल तथा तेलहन की तरह एकान्त प्रयोजनीय वस्तुएँ कहाँ से प्राप्त होगा ? ये सभी बस्तुएँ अभी भारत से जा रहा है। बंगला देश आज इन सभी जरुरी समस्याओं के सम्मुखीन है।

तो बंगलादेश के लिए बचने का उपाय क्या है? कोई कोई कहते हैं कि जूट को कृत्रिम धागों तथा ऊन के साथ मिलाकर अर्ध-पाट-शिल्प है (Semi-Jute-mill) का निर्माण करना। कोई-कोई सलाह देते हैं कि जूट के पौधों के काण्ड का रस से उत्कृष्ट न होते हुए भी साधारण किस्म के नाइलन तैयार किया जा सकता है। इन सब चिन्ता-भावनाओं के सम्बन्ध में सबसें अच्छी बात जो कहा जाता है, वह है, ये सब खराबों में अच्छा है।

जूट की खेती के लिए जो समय है, वह है, सर्दी के अन्त से वर्षा के अन्तिम तक। अगर जूट के बदलें कुछ करना है तो देखना पड़ेगा कि इन समयों पर उपजता हैं, इस प्रकार दूसरा कोई अनाज मिलता है या नहीं। क्योंकि केवल तिल की खेती की जा सकती है। रेड़ी की खेती नहीं की जा सकती है, क्यों कि रेड़ी वर्षा ऋतु का फसल नहीं है, यह शीत का फसल है। अगर वैज्ञानिक कौशल या पद्धति से वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु में व्यापक स्तर पर रेड़ी की खेती करने का किसी प्रकार रास्ता खोज कर निकाला जाय, तो वह बंगलादेश के लिए काफी लाभदायक साबित होगा। क्योंकि लुब्रिकेण्ट (Lubricant) के रूप में आन्तर्जातिक बाजार में रेड़ी बीज के तेल का काफी माँग है। लुब्रिकेन्ट के रूप में गढ़ा तेल तैयार करने के लिए इसे आसानी से घना किया जा सकता है। लेकिन यह एक दूसरा समाधान नहीं यह एक दीर्घ मियादी समाधान है। चूँकि अभी जूट का कोई विकल्प नहीं मिल रहा है, इसलिए तुरन्त इसे बन्द कर देना किसी बुद्धिमान का काम नहीं

होगा। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद ही जूट की खेती राज्य के अधीन था। अर्थात् पश्चिम बंगाल सरकार का ही दायित्व था कि जूट शिल्प को उन्नत बनाया जाय। तत्कालीन मुख्यमन्त्री विधानचन्द्र राय ने जूट शिल्प को केन्द्र के हाथों में लेने के लिए दबाव डाला। क्योंकि उन्होंने समझ गया था कि भविष्य में जूट-शिल्प को लेकर समस्याएँ उत्पन्न होगीं। जो भी हो, उसदिन कम्युनिष्ट लोगों ने इसकी तीव्र विरोधिता की थी। लेकिन अन्त तक जूट शिल्प को केन्द सरकार के अधीन ही रख लिया गया। आज केन्द्र सरकार भी जूट शिल्प को स्वस्थ बनाने के लिए प्रयोजनानुसार भर्त्तकी (मुआबजा) नहीं दे पा रही है। अगर यह जूट-शिल्प आज राज्य के अधीन होता तो यह शिल्प राज्य के लिए कितनी बड़ी समस्या उत्पन्न करती ?

विषयसूची

आज बंगलादेश जिस सामाजिक अर्थनैतिक समस्या का सम्मुखीन है, उसके समाधान के लिए स्वस्थ परिकल्पना तथा उचित उन्नयनमूलक कर्मसूची के रूपायण की व्यवस्था अपेक्षित है। लेकिन ये सभी स्थानीय कच्चा माल की जुगान के ऊपर निर्भर करके ही करना होगा। किसी जगह की उचित परिकल्पना के लिए उस स्थान के सम्पर्क में विशेष ज्ञान अवश्य ही रहना चाहिए। परिकल्पना के स्थान से दूर बैठकर, कुछ बिना समझे ही परिकल्पना करने के लिए बैठ जाना उचित कदम नहीं होगा।

बंगलादेश के लिए किस प्रकार की उन्नयनमूलक परिकल्पना ग्रहण करना उचित होगा? कोई-कोई ढाका जिला में नारियल-शिल्प चालु करने की सलाह देते हैं। ढाका जिला की मिट्टी काफी उपजाऊ है। परन्तु वहाँ की मिट्टी में नमक का हिस्सा कम है। अच्छे नारियल उत्पादन के लिए यह एक अच्छी इलाका

नहीं है। बल्कि यहाँ पर ताड़ के पेड़ अच्छे होते हैं। नारियल-शिल्प बंगलादेश के नोआखली जिला में निर्माण किया जा सकता है। नारियल की खोली तथा उसके छिलके से प्लास्टिक बनाया जा सकता है। मैमनसिंह जिला भी नारियल की खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन यहाँ पर बड़े जात का नारियल उत्पन्न होता है। यशोर जिला में सबसे अच्छा नारियल उत्पन्न होता है। इस यशोर जिला के साथ भारत के जो जिले युक्त हैं, जेसे नदीया, चौबीस परगणा यहाँ पर भी नारियल शिल्प लाभदायक सावित होंगे और इसके साथ इन सभी जगहों पर प्लास्टिक शिल्प का भी निर्माण किया जा सकता है।

बंगलादेश का प्राकृतिक सम्पद क्या क्या है? बंगलादेश में खनिज सम्पद बहुत कम ही है और इसीलिए लौह आधारित (Ferous) शिल्प निर्माण का कोई अवसर नहीं है। इसीलिए पूरे

विषयसूची

अर्थ-नीति को ही गैर-खनिज (Non-minerals) सम्पद-आधारित परिकल्पना के उपर ही निर्माण करना होगा। फिर भी कुछ Non-ferous या लौहरहित शिल्प तैयार किया जा सकता है। क्योंकि बंगालदेश में पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस का जुगान है।

कोई भी शिल्प निर्माण के पहले परिकल्पनाकारियों को सबसे पहले यथेष्ट परिमाण शक्ति आपूर्ति के सम्बन्ध में निश्चित होना पड़ेगा। बंगलादेश में जल-विद्युत उत्पादन का कोई सम्भावना नहीं है। क्योंकि यहाँ की नदियाँ Delta स्तरीय है। जलविद्युत का निर्माण नहीं पर सम्भव होता है, जहाँ◌ा◌ँ पर नदियाँ पर्वतीय स्तर पर है तथा नदियों में बहाव तेज है। बंगलादेश में दो प्रकार की वैद्युतिक शक्ति उत्पादन की जा सकती है-एक महासागरीय ज्वार-भाटे के सहारे, दो सौरशक्ति के सहारे।

नोआखाली जिला के बाखरगञ्ज अनुमण्डल में, जहाँ पर मेघना नदी समुद्र में गिर रही है और ब्रिटिश त्रिपुरा जिला के चाँदपुर अनुमण्डल में जहाँ पर डाकातोआ नदी समुद्र में गिर रही है। इन्हीं दो जगहों पर महासागरीय ज्वार-भाटाओं को काम में लगाया जा सकता है। ये नदियाँ जहाँपर जाकर समुद्र में गिरती है, वहाँ पर इन नदियों के प्रभाव से विशाल तरंगे उत्पन्न होती है। इन सभी स्थानों पर काम में लगाने के लिए इस प्रकार ज्वार-भाटा से उत्पन्न शक्ति काफी सस्ता होगा।

सौर शक्ति को भी काम में लगाया जा सकता है। लेकिन शक्ति के इस स्रोत को अभी भी काम में लगाने की व्यवस्था की उन्नति नहीं हुई है। भविष्य में इसका महत्व क्रमशः बढ़ता ही रहेगा।

विषयसूची

तापविद्युत (Thermal Power) शक्ति उत्पादन का वैसा कोई सुविधा यहाँ पर नहीं है। मैमन सिंह तथा चट्टग्राम जिला में एक प्रकार का कोयला मिलता है जो पूर्णरूप से रूपान्तरित नहीं हुआ है। इस कोयला को उत्कृष्ट कोयला में रूपान्तरित होने के लिए हो सकता है और भी आठ से दस लाख वर्ष लग जाएगा। उस समय धरती पर अदमी ही नहीं रहेगा। अगर कोई बाहर से कोयला लाकर तापीय शक्ति उत्पादन की परिकल्पना करें तो वह कोई बुद्धिमान का काम नहीं होगा।

काफी मात्रा में जैव-गैस (Biogass) का उत्पादन किया जा सकता है। जैव-गैस का उत्पादन बढ़ाकर बंगलादेश में जैव-सार का जो चिरन्तन समस्या है उसका भी समाधान किया जा सकता है। जैव-गैस प्रकल्प से उत्पन्न खाद एक उत्तम प्रकार का प्राकृतिक जैव-खाद है, जो मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को काफी

मात्रा में बढ़ा सकता है। यह खाद खास करके सब्जी, दाल और कटहल उत्पादन के लिए उत्तम है।

बगीचे की खेती भी विशेष रूप से बढ़ाना होगा। लेकिन यहाँ की मिट्टी मटर, सरसों, अरहर तथा आम की खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। यहाँ के आम अवश्य ही बड़े-बड़े होते हैं लेकिन काफी वर्षा के कारण यहाँ के आमों में सहज ही कीड़े लग जाते हैं। जो भी हो यहाँ की मिट्टी धान, मसूर दाल, केला, सुपारि तथा कटहल की खेती के लिए बहुत ही अच्छा है। बंगलादेश भींगी मौसम के देश है। इसलिए यहाँ पर भूमध्यसागरीय तथा क्रान्तीय जलवायु का फसल अच्छा होगा। ठण्डे मौसम के फल अंगुर, पिस्ता आदि अच्छे नहीं होंगे।

पहले बंगलादेश मछली उत्पादन में स्वयंसम्पूर्ण था। लेकिन अभी उसमें कमी आ गयी है। इसका कारण यह है कि जो सब हरे पेड़-पौधे सड़कर मछलियों के. खाद्य का जुगान देता था, उसका अभाव हो गया है। वृक्ष-छेदन अर्थात निर्विचार से पेड़-पौधे कटने के कारण ही यह समस्या उत्पन्न हुई है। अतीत में बंगलादेश में 2400 वर्ग कि०मी० में जंगल था, अभी 1000 वर्ग कि०मी० में है कि नहीं इसमें भी सन्देह है। इसके अलावे कागज बनाने के लिए नदियों के असपास में जो झाड़ियाँ या पेड़पौधे थे उसे काट लिया गया है। इसके फलस्वरूप नदियों के किनारे ढह कर नदियों की गहराई घटा दी है। आज अगर बंगलादेश मछली उत्पादन में स्वयं सम्पूर्ण रहता, तो मछलियों की हड्डियों से कैलसियम का उत्पादन होता। इसलिए बहुत जल्दी बंगला देश में व्यापाक रूप से वृक्षारोपण शुरू करने की जरुरत है तथा संरक्षित वनाञ्चल के लिए कुछ जमीन निर्दिष्ट करके रखने की जरुरत है।

विषयसूची

पूरे बंगलादेश में व्यापक रूप से अनारस-उत्पादन का 'प्रकल्प लिया जा सकता है। अनारस के लिए सलाना 60" इंच वर्षा की जरुरत है। बंगलादेश में सलाना औसत 80" इंच वर्षा होती है। लेकिन कुछ जिलों को छोड़कर वाकी जिलों में सलाना औसत वर्षा 65" इंच है। अनारस के पत्तों से दवाइयाँ तथा धागे तैयार किए जा सकेंगे। इन धागों से उत्तम किस्म की धोती तथा साड़ियाँ तैयार किए जा सकेंगे। यशोर जिला में लीची की खेती हो सकती हैं। केवल राजशाही जिला में तूंत सिल्क उत्पन्न किया जा सकेगा और एण्डि सिल्क कहीं भी उत्पन्न किया जा सकता है। बंगलादेश में रूई अच्छी होती है। इसलिए बंगलादेश में रूई की खेती करना बुद्धिमानों का काम होगा।

जो जमीन वर्त्तमान में जूट की खेती के लिए व्यवहृत हो रहा है, उन जमीनों को तूंत-सिल्क उत्पादन के लिए व्यवहार किया

जा सकता ह। तूंत के पेड़ की लकड़ियों से खेलने की वस्तुए तैयार कर विदेशों में निर्यात किया जा सकता है क्योंकि अन्यान्य देशों में इसकी माँगे है। तूंत की लकड़ियों से रेयन (Rayon) प्राप्त किया जा सकता है। अगर तूंत की लकड़ियों को ठीक से पकाया जाय तो यह लोहा जैसा मजबूत होता है। शाल की लकड़ियों का उत्पादन व्यापक रूप से किया जा सकता है। सगावन की खेती बुद्धिमानों का काम नहीं होगा। क्योंकि इस लकड़ी के बनने में 80 साल का समय लग जाता है। वहाँ पर शाल के लकड़ी को लगता है मात्र 25-30 साल। बैर के पेड़ों की भी खेती की जा सकती है। इससे तसर सिल्क तथा लाह उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन लाह की खेती करके लाह शिल्प का निर्माण भी बुद्धिमानों का काम नहीं होगा। क्योंकि आज के समय में लाह का स्थान प्लास्टिक ने दखल कर लिया है। वर्त्तमान में इसका अच्छा बाजार नहीं है।

केले की खेती व्यापक रूप में की जा सकती है। बीची केला तलाबों के किनारे अपने आप पैदा होते हैं। ज्यादं फलनशील, उत्तम किस्म के चूने हुए केले की भी खेती की जा सकती है। केले का चीपस् तथा सुख केले भी तैयार की जा सकती है। फल के रूप में केले की खेती की जा सकती है। केले के पौधे की खाल को जलाकर सोडियम कार्बोनेट अथवा कपड़ा धोनेवाला सोडा तैयार किया जा सकता है।

आज पूरा बंगलादेश परिकल्पनाविहीन रूप से चल रहा है। स्वभावतः ही यहाँ के मनुष्य उत्तेजित हो उठा है। इनलोगों का ध्यान दूसरे तरफ मोड़ देने के लिए सरकार इनकी अज्ञता का सुयोग लेकर इस देश को इसलामिक राज्य करने जैसा अर्थहीन विषय को लेकर वहाँ की जनताओं की विभ्रान्त करना चाहती है।

विषयसूची

आज बंगलादेश के उचित परिकल्पना की जरुरत है। जबतक देश के भोटदाताएँ शिक्षित नहीं हो जाते हैं, तबतक यथोचित परिकल्पनाएँ भी सम्भव नहीं है। और तबतक यह विश्रृंखला चलता ही रहेगा। मैं यह नही कह रहा हूँ कि जनता को राजनैतिक शिक्षा से शिक्षित करदो-यह करना तुम लोगों के लिए सम्भव नहीं भी हो सकता है। कम से कम तुम लोग इन्हें राजनैतिक दृष्टिकोण से सचेत कर दो।

१३ फरवरी, १९८९, कलिकाता

विषयसूची

त्रिपुरा का अर्थनैतिक उन्नयन

सभ्यता के ऊषालग्न से ही त्रिपुरा बंगाल का अबिच्छेद्य अंग है।प्राचीनत्व के विचार से राढ़ के बाद ही इसका स्थान है। गण्डोयानालैण्ड के अन्तर्गत एक ही मिट्टी, एक ही जल, एक ही मनुष्य और एक ही भाषा लेकर बंगाली समाज यहाँपर प्रागैतिहासिक काल से ही वसवास करता आरहा है। पाँच सौ वर्ष पहले भी त्रिपुरा का नाम था 'श्रीभूम'। त्रिपुरा नाम बहुत पुराना नहीं है। वर्त्तमान त्रिपुरा, नोयाखाली, पर्वतीय त्रिपुरा, कछाड़, मणिपुर, चट्टग्राम, पर्वतीय चट्टग्राम और आराकान राज्य का कियदंश को लेकर था 'श्रीभूम'। भारतीय प्राचीन कागज पत्रों में श्रीभूम को

विषयसूची

'उपबंग' कहकर भी उल्लेख किया गया है। श्रीभूम या उपबंग का आदिम अधिवासी सभी बांगाली थे। व्यतिक्रम थे टिपरा लोग। प्राय साढ़े पाँच सौ वर्ष पहले मु-चांग-फा के नेतृत्वे में सुदूर ब्रहम देश से आगत टिप्रा उपजाति के लोग श्रीभूम में आकर स्थायी रूप से वसवास करना शुरु किया था। बाद में वे लोग स्थानीय हिन्दु राजा को युद्ध में पराजित करके त्रिपुरा राज्य का निर्माण किया। उसी समय से मु-चांग-फा का अधीनस्थ श्रीभूम त्रिपुरा नाम से अभिहित होकर आ रहा है। क्योंकि उस समय यह त्रिपुरा टिप्राओं के शासनाधीन था। चैतन्य महाप्रभू इसी समय वैष्णव-धर्म के प्रचार के लिए श्रीभूम गए थे। मु-चांग-फा तथा राजपरिवार के सभीलोगों ने श्री चैतन्य के निकट वैष्णव धर्म में दीक्षा प्राप्त की और बंगला भाषा तथा संस्कृति को अपनी भाषा तथा संस्कृति के रूप में स्वीकार की तथा व्यक्तिगत नामों को भी बदलकर बंगला नाम ग्रहण करना शुरू किया। मु-चांग-फा बंगला नहीं जानते थे फिरभी राजभाषा के रूप में उन्होंने बंगला को ही स्वीकार किया।

श्रीभूम का जो अंश मु-चांग-फा ने दखल किया था उस अंश को छोड़कर श्रीभूम का अन्यान्य अंश मुगलकाल के शुरू में ही विच्छिन्न हो गया था। टिप्रा अधिकृत अंश का संशोधित नामकरण हुआ त्रिपुरा। टिप्रा जाति का शासनाधीन राज्य इसी अर्थ में संशोधित नाम हुआ त्रिपुरा।

ब्रिटिश जमाने तक त्रिपुरा की भाषा बंगला ही था। टिप्राओं की अपनी भाषा थी 'ककबरक'। विशेष क्या कहना यह भाषा वर्मा की उपजातीय भाषा है। इसलिए यह भाषा बहिरागत है। स्थानीय मिट्टी तथा मनुष्यों के साथ 'ककबरक' भाषा का कोई मिल नहीं है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकारी तथा गैरसरकारी काजकाम चलानें के मामले में बंगला भाषा को हटाकर बहिरागत अंग्रेजी तथा हिन्दी को ही स्थानीय अधिबासियों के उपर चढ़ाया गया है। और बामफ्रण्ट सरकार ने विभेदपन्थी राजनीति को त्रिपुरा

की मिट्टी पर प्रयोग करने के लिए ७० हजार टिपराओं की कथ्य भाषा- जो बहिरागत भाषा है-उसी ककबरक भाषा को १७ लाख बंगालियों के माथे पर चढ़ा दिया है। सभ्यता के इतिहास में इस विभेदनीति का कोई तुलना नहीं है। शताब्दियों से इतिहास के स्वाभाविक नियमानुसार संस्कृति तथा अन्यान्य क्षेत्रों में तैयार जो बन्धन, वह मित्रता तथा एक्य बोध, कलुषित राजनीति के जघन्य प्रयोग से आज दिगन्त में विलीन होता जा रहा है- जिसका अवश्यम्भावी परिणति हुआ त्रिपुरा का सार्विक विपर्यय।

प्राचीन हिन्दु-बौद्ध-पठान-मुगल यहाँ तक कि ब्रिटिश जमाने में भी त्रिपुरा अपनी अर्थनीति पर आत्मनिर्भर था। १९४७ में बंग-विभाजन के माध्यम से इस आत्मनिर्भर अर्थनीति की जड़ में कुठाराघात किया गया। रेडक्लिफ, रोयेदाद के अनुसार त्रिपुरा का कृषिज समृद्ध अञ्चल पूर्व पाकिस्तान के अधीन हो गया और

जंगलाकीर्ण पर्वतीय अञ्चल भारत युनियन के लिए निर्दिष्ट हुआ। भारतीय युक्तराष्ट्र के ढाँचा में पर्वतीय अनुन्नत जंगली इलाका को लेकर वर्त्तमान त्रिपुरा राज्य की परिचिति प्राप्त है जो आर्थिक रूप से विपर्यस्त है।

स्वतन्त्रता के बाद त्रिपुरा अवहेलना, वञ्चना तथा शोषण का शिकार हुआ है। भारत के पूँजीवादियों का स्वार्थ में त्रिपुरा राज्य को केन्दीय सरकार की करूणा के दान पर निर्भर करके चलना पड़ता है। इसलिए उसका अस्तित्व को बचाकर रखना ही एक समस्या है। अभी त्रिपुरा राज्य के प्राय 17,75,000 लोगों की चरम दरिद्रता राज्य के राजनैतिक नेताओं के हाथों का एक हथियार बन चुका है, जिसे राजनेता लोग अपना राजनैतिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए व्यवहार कर रहा है। चरम आर्थिक अनिश्चयता तथा राजनैतिक हिंसा को त्रिपुरा में जानबुझकर प्रोत्साहित किया

गया है। और यह किया गया है वहाँ के लोगों की जाग्रत राजनैतिक चेतना को रोकने के लिए। त्रिपुरा के लोगों को बहुत सारे दर्दनाक तथा हिंस्र घटनावलियों के बीच से गुजरना पड़ा है और इसका कारण है राजनैतिक नेताओं का षड्यन्त्र। उसके अलावे स्वशासित जिला परिषद के कानुन के माध्यम से 7,00,000 उपजातियों के बीच त्रिपुरा का प्राय 70% जमीन वितरित कर दिया गया है। जिसके फल स्वरूप 17,75,000 बंगाली वञ्चित हुआ है। त्रिपुरा में आज की जो परिस्थिति है वह केन्द्रीय सरकार की सुदूरप्रसारी बंगाली विरोधी नीति तथा कम्युनिष्टों की राष्ट्र विरोधी और विच्छिन्नतावादी षड्यन्त्र की ही परिणति है।

त्रिपुरा की वर्त्तमान आर्थिक तथा राजनीतिक अनिश्चयता के होते हुए भी इस अञ्चल का भविष्य काफी उज्ज्वल है,

विषयसूची

क्योंकि यह राज्य प्राकृतिक सम्पदों से समृद्ध है। त्रिपुरा का भूचित्र ठीक एक गमले की जैसा है- बाहरी सीमाना अन्दर के हिस्सा से ऊँचा है। इस विचार से इसकी भोगोलिक बनावट अयरलैण्ड जैसी है। दोनों में मुख्य अन्तर है, त्रिपुरा का पहाड़ और मिट्टी के नीचे का कठिन स्तर ग्रेणाइट से निर्मित है, इसलिए त्रिपुरा की जमीन पथरीली है परन्तु अयरलैण्ड की जमीन वैसी नहीं है। यद्यपि अयरलैण्ड बहुत उन्नत नहीं है, फिर भी त्रिपुरा का सामाजिक अर्थनैतिक उन्नयन परिकल्पना रचना करने के लिए बहुत क्षेत्रों में अयरलैण्ड मडेल को ही अपनाना उचित होगा।

प्राचीन काल में त्रिपुरा के विशाल जंगलों में हाथी और गेण्डों का भरमार था और वह था त्रिपुरा के मध्यांश में, राज्य के राजधानी सहित अन्याय शहर तथा कृषि योग्य जमीन जंगल के चारों और बाहरी सीमाना में था। मध्यांश की मिट्टियाँ काजुबादाम,

विषयसूची

अनानास, तथा केले की खेती के लिए काफी उपयोगी है। साधारण रूप से त्रिपुरा की मिट्टी ग्रेणाइट पत्थरों के साथ संलग्न चिटाही मिट्टी है जो खेती के लिए आदर्श मिट्टी है, खास करके संतरों के लिए। त्रिपुरा के सीमान्त में बंगला देश संलग्न इलाका बृष्टिच्छाया अञ्चल में आता है। इसीलिए त्रिपुरा में खेती की प्रगति की काफी सम्भावना है। जो भी हो ग्रेनाइट पत्थरों के चलते यहाँ पर आमन धान अच्छा न होने पर भी आउस धान की खेती अच्छी ही होगी। आउश धान के बाद जमीन पर मिरचाई की खेती करनी चाहिए जो एक अर्थकरी फसल है। क्योंकि बंगलादेश में इसकी माँगें बहुत अधिक है। आउश धान काटने के बाद जब जमीन थोड़ी भींगी रहती है तो उसमें लाल मिर्च का बीज छिटक देना चाहिए। लाल मिर्च की खेती में गेंहू के तरह ही सिंचाई की जरूरत होती है। जहाँ पर पानी का अभाव है वहाँ पर छोटे साइज की चने की खेती की जा सकती है। अयरलैण्ड की तरह काफी मात्रा में लाल छिलका वाले आलु का उत्पादन किया जा सकता

है। आयरलैण्ड के लोग तो आलु और परीज खाकर ही रहता है। त्रिपुरा में आलु का उत्पादन इतना अधिक हो सकता है कि, त्रिपुरा को आलु का जुगान देकर वह पुरे असम को आलु खिला सकता है। इसीलिए त्रिपुरा में आलु के प्रक्रिया करण (Processing) के लिए बहुत सारे शिल्प का भी निर्माण किया जा सकता है।

ऊँची जमीनों पर जैसे आलु, अनानास, और काजुबदाम की खेती हो सकती है, उसी पकार नीचली जमीनों पर केले की खेती अच्छी होगी। सभी प्रकार की आदियाँ सफेद पीला और काला उसकी भी खेती हा सकती है। बड़े आकार के कच्चू भी अच्छी तरह से हो सकती है परन्तु कच्चू को पूर्ण अवस्था प्राप्त होने में लगभग एक साल का समय लग जाती है। मिजोरम के बाद विश्व में त्रिपुरा में ही दूसरे उत्तम जाति के बाँस उत्पन्न हो सकता है। खोखला बाँस कागज निर्माण के लिए सर्वोत्तम है। और किस-

किस क्षेत्र में मिश्र खेती हो सकती है यह भी तुमलोगों को जानना पड़ेगा। ईख की तुलना में सुगर बीट की खेती अधिक परिमाण में करना चाहिए, क्योंकि साल में बीट की खेती जहाँ पर चार बार होती है, वहाँ पर ईख के लिए साल भर समय लग जाता है। सुगर वीट से चीनी तैयार होगी लेकिन गुड़ नहीं बनेगा। सुगर बीट एक अर्थकरी फसल है। गुड़ ईख से ही बनाया जाएगा और इनके छिलके कागज निर्माण के लिए व्यवहार किया जाएगा। सुगर बीट के बीज तैयार करनी होगी ठण्डा इलाका में जिसके लिए हिमालय प्रदेश तथा कश्मीर सबसे उत्तम जगह है। जो भी हो अपने ही जगहों पर बीज उन्पन्न करना सबसे अधिक अच्छा होगा। त्रिपुरा में कृषिभित्तिक तथा कृषि निर्भर दोनों ही प्रकार के शिल्प का निर्माण किया जा सकता है।

त्रिपुरा में अलकोहल, दवाइयाँ, औषधीय पौधे तथा सिल्क ये सभी उत्पादित किया जा सकता है। त्रिपुरा में निम्नमान के कोयले भी पाए जाते हैं। एक समय त्रिपुरा सारागोसा समुद्र का अंश था, इसलिए वहाँ पर तेल भी पाए जा सकते हैं।

त्रिपुरा की उन्नति के लिए तुमलोगों को निम्नोक्त विषयों के सम्पर्क में सामूहिक ज्ञान रखना पड़ेगा- मिट्टी की अवस्था, नदी व्यवस्था, कृषि-फलकी खेती-शिल्प सम्भावना, सिंचाई, शक्ति-उत्पादन तथा आपूर्ति, खनिज सम्पद और संस्कृति। यदि ठीक से सामाजिक-अर्थ नैतिक परिकल्पना तैयार किया जाय तो त्रिपुरा का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल होगा।

जुलाई, १९८६, कलिकाता

विषयसूची

बिहार का अर्थनैतिक उन्नयन

मनुष्य विच्छिन्नरूप से रहनेवाला जीव नहीं है। हर मनुष्य के अन्दर विश्वतोमुखी भावना है। जागतिक और मानसिक आभोग (Pabula) की एषणा नव्यमानवतावाद से आती है, और प्राउट के अन्दर इसकी सम्पूर्ण निश्चितता रहना होगा। नव्यमानवतावाद विश्वमानवतावाद का ही नामान्तर है। किसी भी मनुष्य को एक निर्दिष्ट स्थान पर बाँधकर रखना उचित नही है। हर मनुष्य विश्ववादी है। प्राउट एक वैवहारिक तत्व है। जल सम्पद, मिट्टी,

विषयसूची

शरीर, मन, मन का काम आदि सभी पर प्राउट ध्यान रखता है। और इस मामले में प्राउट विश्व के उन्नत-अनुन्नत सभी जीवों को सामुहिक रूप से, और प्रत्येक के साथ बन्धुत्त्वपूर्ण सम्पर्क रख कर ही वैसा करता है। प्राउट और नव्य-मानवतावाद दोनों मिलकर इस धरती को सभी समस्याओं से मुक्त करेगा।

इसके लिए एक स्वास्थ्यप्रद तथा स्वच्छ अर्थव्यवस्था की जरूरत है, और उसके लिए उपयुक्त परिकल्पना का' रहना भी जरूरी है। इस परिकल्पना के अन्दर ये विषय अन्तर्भुक्त रहेंगे - जनसंख्या, स्थानीय परिस्थिति, सामाजिक-अर्थनैतिक सम्भावनाएँ, मनुष्यों के भावावेगमूलक उत्तराधिकार, कच्चे माल की सहजलभ्यता इत्यादि- ये सब नहीं रहने पर अर्थनैतिक उन्नयन सम्भव नहीं है। एक शक्तिशाली अर्थनीति में स्थानीय अञ्चल से ही कच्चामाल आता है। बाहर से आयात किये गए कच्चे मालों

के उपर निर्भर करके शिल्प स्थापन हमेशा कमजोर ही रह जाता है। एक दुर्बल अर्थव्यवस्था ही बाहरी कच्चामाल के उपर निर्भरशील रहता है।

बिहार का बरौनी तैल शोधनागार एक दुर्बल शिल्प है, क्योंकि वह असम से मँगाया गया कच्चा तेल पर आधारित है। अगर असम में किसी प्रकार अस्वाभाविक परिस्थिति तैयार हो जाय या देश अगर खण्ड-बिखण्ड हो जाय, तो वह तैल शोधनागार भी बन्द हो जाएगा। इसलिए इस प्रकार तैल-शोधनागार का निर्माण बेवकुफी का काम हुआ है। यह कोई स्वास्थ्यप्रद अर्थनैतिक संरचना का निदर्शन नहीं है। इस प्रकार का शिल्प दुर्बल, मुर्खता तथा निर्बुद्धिता का उदाहरण छोड़कर कुछ भी नहीं है। किसी अञ्चल की अर्थनीति और वहाँ के मनुष्यों का सामाजिक जीवन इन दोनों के बीच सामञ्जस्य रहना चाहिए।

विषयसूची

केवलमात्र बृहत शिल्प की स्थापना करना उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार के शिल्प में स्थानीय कर्मसंस्थान का अवसर बहुत कम ही रहता है।

विहार में अनेक प्रकार का स्वास्थ्यप्रद शिल्प तैयार हो सकता है। उदाहरणस्वरूप उत्तर विहार में ईख और सुगर बीट से घनीभूत अलकोहल का निर्माण हो सकता है, और उसके वर्जित अंश को कागज शिल्प में व्यवहार किया जा सकता है। मिट्टी के नीचे का खनिज इन्धन प्राप्त समाप्त हो रहा है, इसके बदले घनीभूत अलकोहल का व्यवहार होना चाहिए। इस प्रकार के इन्धन से मोटर गाड़ियाँ चलायी जा सकेगी।

तीव्र और सुसंबद्ध सामाजिक-आर्थिक उन्नति के लिए विहार को पाँच सामाजिक आर्थिक अञ्चल में विभाजित करना

होगा - मिथिला, मगध, नागपुरिया, अंगदेश और भोजपुरी। मगध, नागपुरी और अंगैदेश ये तीन सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल सम्पूर्ण रूप से विहार के अन्दर है। मिथिला और भोजपुरी अञ्चल विहार के बाहर भी है। इन प्रत्येक अञ्चल की विशिष्टता के सम्पर्क में एक संक्षिप्त आलोचना किया जाय।

मिथिला

मिथिला अञ्चल में भारत के आठ जिले तथा नेपाल के चार जिले अन्तर्भुक्त है। इस सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल की सीमाना है-उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूर्व में अंगदेश और पश्चिम में काली-कोशी नदी। मिथिला के प्रथम कवि ने प्राय ९०० वर्ष पहले प्रथम मैथिली साहित्य की रचना की। उनका नाम था यतीश्वर ठाकुर और उन्हें वर्णरत्नाकर के नाम से पुकारा जाता था।

विषयसूची

विहार के मिथिला में मैथिली ब्राह्मण, कायस्थ और डोगमाया लोग मैथिली भाषा में बातें करते हैं। डोग माया लोग भूमिहार भी नहीं है और मैथिली भी नहीं है। वे लोग केवल मैथिली में बातें करते हैं। राजपुत, यादव, अन्यान्य कायस्थ जैसे अम्बस्थ कायस्थ, श्रीवास्तव कायस्थ और कुर्मी तथा कोईरी लोग अंगिका भाषा में बातें करते हैं। मैथिली ब्राह्मण लोग अपने घर में मैथिली बोलते हैं परन्तु घर के बाहर अंगिका में बातें करते हैं। डोगमाया लोग भी वही करते है। इसीलिए मैथिली वहाँ कि जनगण की भाषा नहीं है।

पासवान और पासी लोग भी अंगिका में ही बातें करते हैं, मैथिली में नहीं। पासियों का दो सम्प्रदाय है- त्रिसुनिया और व्याध पासी। जोलोग मधुसराइ अञ्चल में रहते हैं वे त्रिसुनिया पासी हैं

और वे अंगिका में बातें करते हैं। जो लोग मगधाञ्चल में रहते है, वे व्याघ पासी हैं, और वे लोग मगही भाषा में बातें करते हैं। त्रिसुनिया पासियों के शरीर का रंग काला होता है, तथा वे सीधीसाधा रूप से बाते करते हैं। व्याध पासियों का भी रंग काला होता है। लेकिन उतना काला नहीं जितना कि त्रिसुनिया पासी लोगा होते हैं।

सभी जातियों के लोग मैथिली बोलते हैं लेकिन अब्राह्मण मैथिली, अ-मैथिली कायस्थ और अ-डोगमायाओं की भाषा अंगिका से प्रभावित है।

मुजफ्फरपुर के चारों ओर की मिट्टी काफी उपजाऊ और हल्का दो आँस मिट्टी जो फल की खेती, खास करके उष्ण अञ्चल का फल और भूमध्यसागरीय रसदार फल, तथा दलहन

के लिए काफी अच्छा है। नाइट्रोजन युक्त मिट्टी ठण्डे मौसम के अनाज के लिए अच्छा नहीं है, फिर भी जूट की खेती के लिए अच्छा है। जो भी हो जूट शिल्प का कोई भविष्य नहीं है, इसलिए इसे उत्साहित करना लाभदायक नहीं होगा। इसके बदले रेमि सिल्क शिल्प तथा कृत्रिम सिन्थेटिक तन्तु शिल्प को विकसित करने के लिए जोर देना चाहिए। यह एक उद्धृत श्रम इलाका होने की वजह से यहाँ के लोग उत्तर से दक्षिण विहार में चले जाते हैं।

विहार में कभी भी दो-तीन तैल शोधनागार की स्थापना नहीं करना चाहिए। क्योंकि आर्थिक रूप से वह कभी भी लाभप्रद नहीं होगा। इसके अलावे यद्यपि वही पर नेपाल सीमान्त में तेल का भण्डार है, कोई इस्पात शिल्प का निर्माण नहीं करना चाहिए क्योंकि उसके लिए आकरिक लोहा (Red hematite) और कोयला यथेष्ट परिमाण प्राप्त नहीं होगा। जो भी हो लेकिन स्थानीय

कच्चेमाल पर आधारित विभिन्न स्पास्थप्रद शिल्प का निर्माण किया जा सकेगा। उदाहरण स्वरूप मैनें पहले ही कह चूका हूँ कि सुगर बीट से काफी उच्चमान का घनीभूत अलकोहल इन्धन प्राप्त किया जा सकेगा जो खनिज तेल का विकल्प होगा। यह इसलिए प्रयोजन है क्योंकि विश्व में तेल का भण्डार क्रमशः घटते आ रहा है। इसके अलावे मजबूत बाँस का शिल्प का निर्माण किया जा सकेगा। बाँस के अन्दर या बाहर जो गाँट होता है, उसे निकाल देने पर, बाँस का पाइप जो इस्पात जैसा ही मजबूत होता है, उसका निर्माण किया जा सकता है। हिमालय के तराई अञ्चल में काफी मात्रा में बाँस उत्पन्न होता है लेकिन मुजफ्फरपुर में अभी भी कोई बाँस शिल्प का निर्माण नही किया गया है। अगर इस शिल्प का सही रूप दिया जाय तो विश्व का बाजार दखल कर ले सकता है। तुमलोगों के लिए उचित होगा कि जनसाधारण के समक्ष जाकर इन सारे विषयों पर अच्छी तरह से व्याख्या करना।

मगध, नागपुरी, राढ़ अञ्चल

प्राय चार हजार वर्ष पहले मगही समग्र भारत का सबसे गुरुत्वपूर्ण भाषा थी। मगही 5,000 वर्ष पहले की पुरानी भाषा है और इसकी अपनी विशिष्टताएँ अन्य भाषाओं में अनुपस्थित है। मगही के चार कथ्य रूप है। औरंगाबाद, नालन्दा का मध्य मगही, मुँगेरिया और मगरीबध मैथिली। मगही लगभग तीन करोड़ मनुष्यों की भाषा है और विहार के विस्तृत अञ्चल में इसका व्यवहार होता है।

पटना, विहारशरीक और गया बहुत बड़े शहर है, जिनकी जन संखाएँ 10,00,000 से भी अधिक है। समग्र विहार की जनसंख्या आठ करोड़ है।

विषयसूची

मगध का भूचित्र किस प्रकार है? वहाँ की मुख्य नदियों के विभिन्न स्तर समूह ही किस प्रकार है? बरसात में फल्गु और सोन नदियों से काफी मात्रा में पानी बह जाता है। मिथिला के समतल स्तर पर की मिट्टी बहुत नरम है। और इसलिए मिथिला की नदियाँ हमेशा उनके गतिपथ का परिवर्तन करती रहती हैं। मिथिला में किसी भी नदी का डेल्टा स्तर नहीं है- इनके पर्वतीय स्तर हैं नेपाल में। समतल स्तर मिथिला में और Delta स्तर बंगाल में। इसलिए इन नदियों के नियन्त्रण के लिए बंगाल तथा नेपाल की सहयोगिता की जरूरत है। कोयल नदी का नियन्त्रण के लिए मगध और कौशल अञ्चल के पारस्परिक सहयोगिता अपेक्षित है। मगध तथा कौशल की समस्याएँ एक ही प्रकार की है।

बंगाल की खाड़ी से आया हुआ बादल भारत के वनोच्छेदन के कारण अरब सागर में चला जाता है। इस रूप में यह

बादल अरब सागर के उपर वर्षा करता है, भारत में नही। इसी लिए अरब सागर की गहराई बढ़ रही है, लेकिन बंगाल की खाड़ी का पानी अधिक नमकीन होता जा रहा है। आज यही हो रहा है। इसलिए मगध का बादल भी अरब सागर की ओर चला जा रहा है। इसके फलस्वरूप भूमिक्षरण बढ़ रहा है और जमीन का अंश घटता जा रहा है। वर्त्तमान में पृथ्वी का दो-तिहाई पानी ओर एक तिहाई जमीन है, लेकिन बनोच्छेदन के कारण पृथ्वी के सर्वत्र पानी का हिस्सा बढ़ रहा है, इस लिए जमीन का अंश घटता रहेगा।

नदियों को किस प्रकार से नियन्त्रण करना होगा? नदियों के नियन्त्रण के लिए तीनों स्तरों के ही विशेषज्ञों को लेकर शक्तिशाली बोर्ड का गठन करना होगा। इस बोर्ड के द्वारा नदी परिकल्पनाएँ भी सफल रूप से रूपायित होगा। आन्तर्जातिक कानुन के अनुसार कोई भी देश अपने इच्छानुसार नदियों का पानी

छोड़ नहीं सकता है, तथा इच्छानुरूप व्यवहार भी नही कर सकता है। पर्वतीय स्तर अवश्य ही समतल स्तर के साथ विचार-विमर्श कर लेगा। ठीक उसी प्रकार समतल स्तर भी डेल्टा स्तर के साथ समझौता कर लेगा। उदाहरण स्वरूप नेपाल को अवश्य ही समतल तथा डेल्टा-स्तर के प्रतिनिधियों के साथ बात-चीत करना पड़ेगा। इन तीनों के बीच अगर सहयोगिता का अभाव होगा तो पर्बतीय स्तर से आया हुआ जल अथवा डेल्टा-स्तर में रोक कर रखा गया ज्यादा पानी समतल अंश के बृहत अंश को निमज्जित कर देगा। इस मामले में मिथिला अञ्चल की तुलना में मगध की स्थिति अच्छी है, क्योंकि इनकी नदियों का समतल स्तर मगध में ही है।

यद्यपि सिंहभूम जिला विहार में (वर्त्तमान झाड़खण्ड) में अवस्थित है, यह अञ्चल बंगालीस्तान सामाजिक-आर्थिक

अञ्चल के अन्तर्भूक्त होने चाहिए। इस जिला में लाल मिट्टी है और यह जिला पहाड़ और उपत्यकाओं से भरा हुआ है। इसकी उत्तरी हिस्सा पहाड़ श्रेणियाँ और नदी घाटियों के बीच अवस्थित है। जिसके अन्दर सुवर्णरखा उपत्यका आदि आ रहा है। ये पहाड़ ज्यादे पथरीली नहीं है इसलिए उन्नत खेती का अवसर है। नदियों का पानी ऋतुओं पर निर्भर करता है, यद्यपि ग्रीष्मकाल में भी पूर्णतः सुख नहीं जाती है। इस लिए इस हिस्से में जल-विद्युत न होने पर भी ताप विद्युत (Thermal Power) की सम्भावना है। झाड़खण्ड के उत्तर पश्चिमांश में जिलेबिया मोड़ तक और सुवर्ण रेखा नदी के उत्तर पूर्व प्रत्यन्त में कच्चा लोहा, वक्साइट, मैंगनीज और तम्बा मिल सकता है। सिंहभूम के दक्षिण में तम्बा का खान है, और थोरियम और यूरेनियम का भण्डार है।

सिंहभूम जिला में नदियों की संख्या बहुत अधिक होने पर भी सिंचाई की व्यवस्था बहुत अधिक नहीं हुई है। स्थानीय जनसंख्या में 60% महतों है। 200 वर्ष पहले मध्यप्रदेश से सन्थाल लोग यहाँ पर आए थे (बंगला 1176 साल, अंग्रेजी 1770 साल) में। यहा पर हो मुण्डा, सिंह मुण्डा तथा खमार मुण्डाएँ भी रहते हैं। सिंह मुण्डाएँ राँची के पूर्वांश से आए थे। समग्र राढ़ अञ्चल प्राचीन गण्डोयानालैण्ड का अंश है जिसके अन्दर आता है राँची, पुरूलिया, पश्चिम मध्यप्रदेश, पश्चिम बर्धमान, बाँकुड़ा, पश्चिम मिदनापुर, भञ्जभूम, सुन्दरगढ़ इत्यादि। यहीं पर प्रथम मानव प्रजाति का उद्भव हुआ था और प्रथम मानव का वासस्थान भी यहीं था। लेकिन दुःख का विषय है कि इस अञ्चल की उन्नति के लिए प्रयास नहीं किया गया है। इस जिला के सभी जगहों में प्रति व्यक्ति आय सबसे कम है। छोटानागपुर में लोहारदागा तथा पश्चिमांश में भी प्रतिव्यक्ति आय बहुत कम है। यद्यपि विष्णुपुर अनुमण्डल की अवस्था अपेक्षाकृत अच्छा है।

विषयसूची

कंसावती नदी को छोड़कर सभी नदियाँ आंशिक रूप से नियन्त्रित है।

सिंहमूम जिले में कौन-कौन से फल तथा अर्थकरी फसल हो सकता है? यहाँ की मिट्टी फल की खेती के लिए अच्छा है और कटहल अच्छा ही होता है। इससे अलकोहल तैयार किया जा सकता है। कटहल का बीज सुखाकर उससे आटा बनाया जा सकता है और उससे अच्छे किस्म की रोटियाँ बनायी जा सकती है। कटहल से भेजीमीट और गुड़ शिल्प का निर्माण हो सकता है। काजुबादाम तथा मौसम्बी की भी खेती हो सकती है। काजुबादाम एक अन्यतम उत्कृष्ट अर्थकारी फसल है। अगर पोधों पर हड्डियों का चूर्ण तथा पानी दिया जाय तो काजुवादाम में मिष्टत्व आ सकता है। इस अञ्चल में आता तथा सेव की भी खेती हो सकती है। चन्दन का पेड़ भी अच्छा होगा। खास करके जहाँ की मिट्टियाँ

लाल है, यद्यपि चन्दन का पेड़ तैयार होने में बीस साल का समय लगता है। महुआ का पेड़ भी अच्छा होता है। महुआ का फूल सुखाकर उससे आटा तथा रोटियाँ बनाई जा सकती है। इस अञ्चल में अनार की खेती भी अच्छी होगी, और अगर इसमें उपयुक्त खाद डाला जाय तो मीठा भी होगा। जमीनों पर सालाना दो अनाजें उगाई जा सकती है तथा गेहुँ की भी खेती हो सकती है। समतल अंश पर लाल छिलके का आलु भी होगा जिससे नानान प्रकार के प्रक्रियाकरण शिल्प का निर्माण हो सकता है। फूल की भी खेती हो सकती है जिससे निर्यास बनाया जा सकेंगा। लाल मिट्टी में गुलाब अच्छी होती होगी। औषधीय पौधे तथा छोटे जात का अंगुर भी होगा।

पटना जिला में आम और पपीता की खेती की अच्छी संभावनाएँ है। पपीता से पेपटोन (Peptone) जो पेट की बीमारी

विषयसूची

के लिए काफी उपकारी है, का निर्माण होगा। अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार का आम और वह कहाँ पर किस रूप से होगा? इसमें किस प्रकार का खाद का प्रयोग करना पड़ेगा ? तुमलोगों को इन सभी प्रश्नों का उत्तर जानना पड़ेगा।

मगध में गंगा पश्चिम से पूरब की और बह रही है। गंगा के एक तरफ मगध है तथा दूसरी तरफ है मिथिला। गंगा की तटीय इलाके की मिट्टी दोआँस मिट्टी है जो आम, लीची, केला तथा नींबू के लिए बहुत अच्छा है। पटना जिला में गंगा के दक्षिण के कुछ हिस्से (जिसका प्राचीन नाम पाटलिपुत्र है) और उत्तर के भी कुछ हिस्सों में दोआँस मिट्टी है। गंगा के दक्षिण में दस मील तक पटना की ओर आम की खेती के लिए काफी उपयुक्त है। दीघा अञ्चल (पटना जिला) इसी दस मील के व्यासार्ध में ही आता है। दस मील के बाहर की जमीन कर्दमाक्त है जिसमें आम की खेती

विषयसूची

अच्छी नहीं होगी। और भी जितनी दक्षिण की ओर जाया जाएगा मिट्टी का रंग भी लाल होता जाएगा। बेगुसराई की मिट्टी भी दोआँस मिट्टी है, जिसमें आम की खेती अच्छी होगी। मगध के गया और नवादा अञ्चल में आम की खेती अच्छी नहीं होगी क्योंकि वह खट्टा होगा तथा उसमें कीड़ें भी अधिक होंगी। पटना के उत्तरांश में लीची, आम, नींबू अच्छी होगी लेकिन इस मिट्टी में पपीता और अमरूद की खेती अच्छी नहीं होगी। अमरूद अगर होगी भी तो इलाहाबाद की तरह बड़े आकार का नहीं होगा। गंगा के दक्षिण में पपीता अच्छा होता है, इसलिए वहाँ पेपटोन शिल्प का निर्माण किया जा सकता है। पपीता छोटा होने पर भी मीठा होगा। गंगा की अववाहिकाओं में भी आम और लीची अच्छी होती है, इसी कारण से बंगाल के मालदह और मुर्शिदाबाद जिला में भी आम की खेती अच्छी होती है। खेती के लिए हमलोगों को जिन विषयों पर विवेचना करना होगा वे हैं- मिट्टी की प्रकृति, जलवायु, जलापूर्ति, किस प्रकार की जमीन है इत्यादि।

उदाहरणस्वरूप मिट्टी की जलधारण क्षमता के अनुसार जमीन का प्रकार भेद निम्नोक्त प्रकार है :-

(1) उँची और टाँड़ जमीन :- इस प्रकार की मिट्टी उपजाऊ नहीं होती है तथा इसमें जलधारण क्षमता बहुत कम होती है या होती ही नहीं है। अगर पानी और खाद की व्यवस्था की जाय तो इन जमीनों को उत्पादनशील बनाया जा सकता है, और उसमें फल, कुलथी तथा नींबू घास की खेती होगी। इस नींबू घास से उन्नत प्रकार के प्रसाधन शिल्प का निर्माण किया जा सकेगा। आनन्द नगर की जमीन इसी प्रकार टाँड़ जमीन है।

(2) अनुर्वर समतल भूमि :- इस प्रकार की जमीन में जलधारण की क्षमता होती है। इसीलिए इसे खेती लायक बनाना कठिन नहीं है। इस के लिए सिंचाई की जरुरत होती है। इस प्रकार

की जमीन में कुछ परिमाण आउस तथा आमन धान की भी खेती हो सकती है।

(3) साधारण अर्थात कनाली जमीन :- इस जमीन की जलधारण

क्षमता अनुर्वर समतल जमीन की तुलना में अधिक होती है, परन्तु बहाल जमीन से कम होती है।

(4) गीला तथा उर्वर जमीन अर्थात बहाल (बहियार) जमीन :- इस प्रकार की जमीन की जलधारण क्षमता बहुत अधिक होती है तथा समी प्रकार की खेती के लिए काफी उपयोगी होती है।

विषयसूची

क्रमशः उत्तम प्रकार की मिट्टी, गीली तथा उपजाऊ, उसके बाद का स्थान है साधारण तथा कनाली जमीन, उसके बाद अनुर्वर समतल जमीन, और टाँड़ जमीन की मिट्टी सबसे निकृष्ट मान का होता है। किस जमीन और मिट्टी को किस रूप में जोतना पड़ेगा इस सम्बन्ध में कर्षकों का ज्ञान साधारणतः कम होता है। मैंने पहले ही कह चूका हूँ भञ्जभूम, सिंहभूम, केउञ्झड़, झाड़ग्राम, पुरुलिया, पूरबी राँची, धनबाद इत्यादि अञ्चल की मिट्टी कठिन लाल मिट्टी होने की वजह से वे फल की खेती के लिए आदर्श मिट्टी है अगर उस मिट्टी में उपयुक्त परिमाण में खाद का प्रयोग किया जाए। दुमका की मिट्टी राढ़ के अन्यान्य अंश की मिट्टी की तुलना में अलग है क्योंकि इसमें लाल मिट्टी का अंश कम है। सठीक रूप से खाद का प्रयोग करने पर देवघर जिला में आम की खेती हो सकती है। पटना में विशेष करके उत्तरांश में एण्डी की खेती हो सकती है। समतल जमीन धान के फसल के

लिए अच्छा है। जहाँ पर अपेक्षाकृत सुखी जमीन है गेंहू की खेती अच्छी होगी।

नदी का पानी आसानी से जलमग्न तथा जलसंलग्न मिट्टी को काटकर रास्ता बना ले सकता है। लेकिन अनुर्वर समतल भूमि और कठिन लाल मिट्टी को काटना कठिन होता है। इसीलिए कोई बड़ा पुल निर्माण करने के पहले दोनों तरफ की कठिन मिट्टी पर उसका बुनियाद तैयार करना होगा। मोकामा के पास गंगा के ऊपर जो राजेन्द्र सेतु का निर्माण किया गया है उसमें मोकामा अंश की जमीन समतल है, लेकिन विपरीत अंश की जमीन जलमग्न तथा नरम है, जिस का अर्थ हुआ कि किसी भी समय वह पुल पानी के स्रोत में बह सकता है।

अगर कर्षक सम्प्रदाय समवाय प्रथा का अवलम्बन करे तो उससे लोग अधिक उपकृत होंगे। उदाहरणस्वरूप आड़ तैयार करने में जो खण्ड-खण्ड जमीन नष्ट होता है, समवाय प्रथा से खेती करने पर आड़ नहीं रहने के कारण जमीन का सठीक उपयोग होगा। और इस प्रकार खेती लायक जमीन का परिमाण बढ़ जाएगा। एक ही स्तर के जमीनों को इस प्रकार से समवाय खेती के अधीन लाना पड़ेगा। लेकिन जमीन ऊँचा-नीचा होने पर इस प्रकार एकत्रीकरण संभव नही हैं। ऊँचा नीचा जमीन तथा जिस जमीन पर क्षुद्रनदी उपत्यका है उन सभी स्थानों में कम खर्च में छोटी-छोटी सिंचाई परिकल्पनाएँ शुरू की जा सकती है, जो कुछ ही हजार रूपए में ही हो जा सकता है। यह खर्च संमवाय व्यवस्था में काफी आसानी से किया जा सकता है। इस के अलावे समवाय प्रथा में मिश्रखेती तथा पर्यायक्रमिक खेती अच्छी तरह से हो सकती है। इस तरह से आनन्दनगर में सालभर चार फसल उगाया जा सकता है। इसके पहले मैंने बता चूका है कि कौन सा खाद कैसी जमीन के

लिए सर्वोत्कृष्ट होगा। खेती के लिए कौन सी खाद प्रयोग करनी होगी यह जमीन की प्रकृति पर निर्भर करती है। अनुर्वर जमीन पर मौसम के अनुसार रेशम की खेती (sericulture) विकसित किया जा सकता है। विहार में एण्डि तथा मुँगा सिल्क की खेती अच्छी होगी लेकिन तूंत-रेशम का सिल्क अच्छा नहीं होगा। एण्डि सिल्क सुनहरा तथा मुँगा सिल्क लाल किस्म के होते है।

स्टैण्डर्ड नागपुरी गुमला अञ्चल की भाषा है, राँची इलाके की भाषा बंगला और मगही भाषा के द्वारा प्रभावित है। मगही, भोजपुरी और नागपुरी भारत सरकार के द्वारा स्वीकृत नहीं है। मैथिली कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा भी स्वीकृत है। अंगिका भाषा साहित्य एकडेमी, विहार सरकार तथा केन्द्रीय सरकार किसी के द्वारा स्वीकृत नहीं है।

पलामू जिले की मिट्टी की समस्या तथा पथरीली जमीन की क्या स्थिति है? इस जिले की मुख्य नदियाँ कया-क्या है? पलामू जिला छोटानागपुर के उत्तर पश्चिम से शुरू है। पलामू के पश्चिम में सोन नदी की अववाहिका में सोन नदी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पश्चिम की ओर बह रही है। जिले के बीच में कोयल नदी बह रही है।

एक समय पलामू गण्डोयाना का मध्यांश था। इसीलिए यहाँ की शिलाएँ पाललिक शिलाएँ है। पलामू जिला के उत्तर और मध्य पश्चिम में दामोदर उपत्यका अवस्थित है। दामोदर उपत्यका में सर्वत्र कोयले का भण्डार, प्राचीन कठिन शिलाएँ, रूपान्तरित शिलाएँ, टंगस्टन, कठिन धातुएँ, कच्चा लोहा और लाल हेमाटाइट का भण्डार हैं। पलामू मगही भाषी इलाका है। लातेहार

विषयसूची

तथा गढ़वा जिला भी मगही भाषी है। मध्यप्रदेश की सोन नदी के अपरांश भी मगही भाषी है।

पलामू का इतिहास और वृत्तान्त बहुत सुन्दर है। यह उराँव जातियों का प्राचीन वासस्थल है। ये कुरूक भाषा में बातें करते हैं, जो द्राबिड़ गोष्ठी की भाषा है जैसे- तामिल, तेलेगु मलयालम आदि। इस अञ्चल में राजपूत राजाओं का राजत्व था लेकिन उनको हटाने के बाद इस अञ्चल में बहिरागतों के साथ खून का मिश्रण शुरू हुआ। पठान युग तक पलामू स्वतन्त्र था। मुगल काल में पलामू मुगल साम्राज्य के अधीन था और उन्हें बंगाल के नवाबों को सलामी देना पड़ता था। लेकिन वास्तव में वे स्वतन्त्र ही थे। ब्रिटिशों के जमाने में जिला का मुख्यालय हजारीबाग में स्थानान्तरित हुई।

हजारीबाग जिले का अधिकांश आदमी मगही भाषी है। यहाँ की सबसे बड़ी नदी दामोदर है। उत्तर और मध्य प्रत्यन्त शिल्प इलाका होने की वजह से यहाँ शिल्प संभावनाएँ काफी है। इस जिला के कोडरमा में अबरख का अंश सब से अधिक है लेकिन वर्तमान में कोडरमा एक जिला बन गया है। दामोदर उपत्यका में कोयले का भण्डार है।

हजारीबाग नाम क्यों हुआ ? रातु गोष्ठीभुक्त हजारीलाल सिंह देव एक बहुत बड़े जमींदार थे, उन्हीं के नामानुसार उस शहर का नाम हजारीबाग हुआ है। वे छोटानागपुर के शिशनाथ के हाथों युद्ध में पराजित हुए। हजारीबाग जिला में जमीन के अन्दर खनिज पदार्थ है, यहाँ पर वनाञ्चल और खेती की उन्नति करना चाहिए।

विषयसूची

नागपुरी तथा लोहारदगा जिला के निम्नांश की समस्याएँ क्या है? इस निम्नांश अञ्चल में सिंचाई की समस्या का समाधान कैसे होगा ? पानी कहाँ से आएगा ? नेतरहाट के समीप पानी का कुछ स्त्रोत है। यहाँ पर अच्छी लाल मिट्टी भी है। लेकिन वनोच्छेदन के कारण इस जगहों पर पानी का अभाव है। मगध अञ्चल भी इसी वनोच्छेदन के कारण क्षतिग्रस्त है। इसीलिए उन्नयन परिकल्पनाओं के मध्य में व्यापक रूप से वनसर्जन अत्यावश्यक है।

लोहारदगा जिले में मिश्रित मिट्टी है। राँची जिला से कटकर इस जिला का निर्माण हुआ है इसलिए साइज में यह बहुत छोटा है। यहाँ का प्रधान आदिवासी है उराँव जो लोग अपनों के बीच कुरूक भाषा में बातें करते हैं और दूसरों के साथ नागपुरी अथवा सादरी में बातें करते हैं। ताना भगत गोष्टियों में ही कुरूक

भाषा का प्रचलन अधिक है। मुण्डाएँ सादरी में बातें करते हैं। यहाँ पर बक्साइट मिलता है, इसीलिए यहाँ पर अलमुनियम का कारखाना बनना चाहिए ? स्थानीय रूप से उत्पन्न कच्चेमाल से चलनेवाला कोई शिल्प प्राय है ही नहीं। वर्त्तमान में यहाँ पर साल में एक ही फसल उत्पन्न हो रहा है, इसीलिए यहाँ के लोग बहुत गरीब है। जनसंख्या के हिसाब से 65% आदिवासी है और 35% गैर-आदिवासी। गैर-आदिवासियों के अधिकांशों की जीविका लोहार का काम करना तथा व्यवसाय है।

अंगदेश

उड़ीसा का कौशल अञ्चल से भी अंगदेश पीछड़ा है। अंगदेश में कोई भी शिल्प नहीं है। और जन साधारण की भाषा अंगिका स्वीकृत भाषा भी नहीं है। जन साधारण की भाषा कभी

विषयसूची

भी अवदमित नहीं होना चाहिए। अगर तुम्हारी मातृभाषा की कोई स्वीकृति नहीं रहे तो तुम्हारी भी कोई स्वीकृति नहीं रहेगी। बिहार की पाँच मातृभाषाओं में किसी एक का भी भारत के संविधान में स्वीकृति नहीं है (सन् 2003 ई० में 92 वें संशोधन में मैथिली को स्वीकृति मिली)। और इसीलिए विहार के मनुष्यों को द्वितीय श्रेणी के नागरिक होकर रहना पड़ता है। दूसरी और देश के अनेक सामान्य भाषाएँ भी स्वीकृत है। भारत सरकार जातीय साहित्य एकडेमी, संगीत एकाडेमी और विहार सरकार किसी ने भी अंगिका भाषा की स्वीकृति नहीं दी है। सरकारी नेतृस्थानीय लोगों के लिए यह बहुत अच्छी बात नहीं है। **प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए। इसीलिए अंगिका भाषा में लिखित पाठ्य-पुस्तकें चालु करना होगा।**

अंगदेश संलग्न एक अंश में तीन अञ्चलों की जमीन सन्निविष्ट है- नेपाल, विहार, बंगला- जिन सभी स्थानों में लोग भोजपुरी, अंगिका, मैथिली और बंगला में बातें करते हैं। ब्रिटिशराज के प्रथम चरण में 1773 साल में पलाशी के युद्ध के बाद अंगदेश के इन अंगिका भाषी इलाकों को नेपाल के राज पृथ्वीराज शाह ने दखल कर लिया था। नेपाल के अंगिकाभाषी लोग मोरांग जिला में वसवास करता है जिनके प्रधान नगर का नाम विराटनगर है। नेपाल का अंगिकाभाषी इलाका अंगदेश के साथ संयुक्त होना चाहिए। यह एक भौगोलिक-आर्थिक आवश्यकता है। भागलपुर से हिमालय अञ्चल तक रेल-संयोग की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

अंगदेश का भूनिम्नस्थ सम्पद की क्या स्थिति है ? गोड्डा जिले का पश्चिमांश में चूनापत्थर, डलोमाइट, चीनी मिट्टी, और

कोयला है। पूर्वांश में डलोमाइट नहीं है। केवल कोयला है। जमालपुर के पार्श्ववर्ती इलाकों में कच्चा लोहा मिल सकता है यद्यपि अधिक मात्रा में नहीं। सम्प्रति जमुई जिले में स्वर्णभण्डार का पता चला है और लालमाष्टिया में कोयले का भण्डार है। अंगदेश में कोयला से उत्पादित तापविद्युत काफी सस्ते में प्राप्त होगा। अभी वहाँपर बाहर से कोयला खरीदकर लाने की जरूरत नहीं है। समतल इलाके की उच्च-नीच जमीन पर सौर-विद्युत का निर्माण किया जा सकेगा।

अंगदेश के उत्तरांश में उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था नहीं है फिर भी जगह-जगह पर जलमग्न जमीन है। यहाँ की जमीनों को सुसंबद्ध जल परिकल्पना के अन्दर अंगीभूत करना चाहिए। उदाहरण स्वरूप दक्षिण में जहाँ पर पानी का अभाव है, उत्तर अंगदेश से अतिरिक्त जल वहाँ पर पहले ले जाने की व्यवस्था

विषयसूची

होनी चाहिए। अगर असम के दूरवर्ती स्थान से विहार में तेल लाया या सकता है, तो उत्तर से दक्षिण की ओर पाइप लगाकर पानी ले जाने की व्यवस्था क्यों नहीं किया जा सकता है?

उत्तर में कोशी नदी की तटवर्ती इलाका जलमग्न रहता है। वास्तव में समग्र कोशी अञ्चल ही प्राय जलमग्न अवस्था में ही रहता है। इस नदी के द्वारा वाहित पलल मिट्टी जमीन की उर्वरता शक्ति को नष्ट कर देता है। इसीलिए बरसात के दिनों में नदी का पानी सिंचाई के लिए व्यवहृत नहीं होना चाहिए। नहर या नाला के माध्यम से पानी ले जाने का अर्थ पानी का अपचय करना नहीं होता है। कोशी नदी का पानी अगर गंगा में गिरकर बंगाल की खाड़ी में चला जाता है, वह अपचय या व्यर्थता छोड़कर कुछ भी नहीं है।

अंगदेश में खेती की काफी सम्भावनाएँ हैं और वहाँ पर अनेक प्रकार के कृषि-निर्भर (agro-industries) तथा कृषि आधारित शिल्प (agrico-industries) का निर्माण किया जा सकता है। जमीनों से जहाँ पर तीन अनाजें प्राप्त किया जा सकता है वहाँ पर वर्तमान में केवल मात्र एक ही फसल उत्पन्न होता है। बाँका जिला के दक्षिण में भी ठीक यही अवस्था है। सम्प्रति जमुई, देवघर और बाँका जिले के कुछ हिस्सों को काटकर चन्दन कटारिया नाम का एक नया जिला तैयार किया गया है जो मगध, अंगिका और बंगाल के मिलन विन्दु पर अवस्थित है। यह एक सुखा जिला होने के वाबजूद भी यहाँ की जमीन काफी उपजाऊ तथा खेती के लिए उपयुक्त है। अंगदेश का मुख्य शिल्प कृषि निर्भर तथा कृषि आधारित होना चाहिए। अंग देश के दक्षिण प्रत्यन्त में चूना पत्थर तो है ही, गोड्डा जिला के पश्चिमांश में चूना पत्थर और चीनी मिट्टी मिलेगी। इस लिए वहाँ पर सिमेण्ट का भी

विषयसूची

कारखाना हो सकता है। चावल का भूसा और चूना पत्थर मिलाकर भी सिमेण्ट तैयार किया जा सकता है।

२००० वर्ष पहले दिनाजपुर कैवर्तों का मुख्य आवास स्थल था। वहाँ से लोग पुर्णिया के साथ अन्यान्य स्थानों पर फैल गए लेकिन वे लोग अभी भी घर में बंगला भाषा में ही बातें करते हैं। उनके शरीर का रंग बहुत काला तो नही है। लेकिन कुछ हद तक मटिया रंग के होते हैं। उनके मुँह गोलाकार होते हैं, वे लोग ज्यादे लम्बे नहीं होते हैं और अधिकांश लोग ही कृषिकार्य करते हैं। पहले वे लोग पुर्णिया के अन्यतम प्रधान जन समुदायों में एक था। वेलोग शादी-व्याह में बंगाली रीति का ही अनुसरण करता है।

पूर्णिया जिला में चार बंगलाभाषी जन समुदाय है- कायस्थ, हाड़ी, डोम और तथाकथित ऊँचे जात के सद्गोप (हाड़ी

तथा डोम लोग schedule castes के रूप में परिगणित होते हैं)। ये लोग अपने घरों में बंगला तथा अंगिका मिश्रित बंगला भाषा में बातचीत करते हैं। यद्यपि कुछ केवर्त्त विश्वास पदवी का व्यवहार करता है, फिर भी अधिकांश लोगों की पदवी मण्डल है ।

सद्गोप छोड़कर भी और कुछ गोष्ठियाँ हैं, जो लोग बंगाल से आए हुए है और अभी भी शादी व्याह में बंगला रीति का अनुसरण करते हैं। राढ़ अञ्चल से बहुत सारे गोप सम्प्रदाय के लोग विहार में आए थे (वर्तमान, वीरभूम और मुर्शिदाबाद से) जिससे कि उन अञ्चलों में मुसलमानों की संख्या अधिक न हो, क्योंकि वे लोग लाठी चलाने में निपुण थे। इस गोष्ठी को घोसि कहा जाता है, और इनके पदवी हैं घोष।

विषयसूची

मैं अंगदेश, मगध, नागपुरी, और कौशल अञ्चल में एक विस्तृत उन्नयन परिकल्पना, एक आदर्श परिकल्पना), का एक सुसंबद्ध तकमा (Map) चाहता हूँ। मैं ने पहले ही कह चूँका हूँ कि दक्षिणांश छोड़कर अंगदेश की भूमि प्राय समतल है। बाकी तीन सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चलों में मिश्रित भू-चित्र हैं। मगध समतल भी है और ऊँचा -नीचा भी। नागपुरी और कोशल की भूमि ऊँची-नीची तो है, साथ में यहाँ पर उपत्यकाएँ भी काफी है। इन सब के प्रति इंच जमीन को व्यवहार करो, हरेक जल विन्दुओं को काम में लगाओ।

भोजपुरी

भोजपुरी अञ्चल में गोरखपुर सह अनेक जिले हैं। भोजपुरी में तीन लिपियों का व्यवहार हैं। पहली नागरी लिपि जो

इलाहाबाद के पश्चिम में व्यवहृत होती है। 800 साल पहले मैक्समूलर ने नागरी रीति से वेद लिखा। आगे चलकर जिसका नाम दिया गया देवनागरी। दूसरी लिपि है सारदा लिपि जो इलहाबाद के उत्तर-पश्चिमांश में व्यवहृत होता हैं, वह 1300 वर्ष पुरानी है। तीसरी लिपि का नाम है कुटिला लिपि जो इलाहाबाद के पूरब में व्यवहृत होता है। यह उड़िया, बंगला, मैथिली, भोजपुरी, अंगिका आदि भाषाओं की भी लिपि है, जो 1100 वर्ष पुरानी है।

कृष्ण की मातृभाषा थी शैरसेनी प्राकृत। बाद में इसी से ब्रजभाषा का जन्म हुआ। यह भाषा इलाहाबाद के पश्चिम में व्यवहृत होता है। रहीम, सुरदास आदि इसी भाषा की कवि थे। ब्रज के अग्रवाल सम्प्रदाय मूलरूप से ब्रज अञ्चल से ही गया हुआ है। वे माड़ोयारी नहीं है। इलाहाबाद के मुसलिम सम्प्रदाय के

अधिकांश लोग अवधी भाषा में बातें करते है, यद्यपि सिया सम्प्रदाय के लोग ऊर्दू में बातें करते हैं।

भोजपुरी अञ्चल में जो तीन बड़े शहर हैं- बनारस, गोरखपुर और छपरा- इनमें से किसी में भी शिल्प का कोई अस्तित्व नहीं है। स्वभावतः ही इस अञ्चल का समस्त सम्पद बहिरागतों के नियन्त्रण में है। सभी प्रकार के शोषण के खिलाफ संग्राम करना होगा और वहाँ के लोगों को इस मामले में सचेतन करना पड़ेगा।

गोरखपुर और देवरिया जिले की कृषि सम्भावनाएँ एक समान नहीं है। देवरिया गोरखपुर की तुलना में नदी सम्पद में अधिक समृद्ध होते हुए भी देवरिया जिला में जूट की खेती अच्छी होगी। जूट की रेशे के साथ ऊल मिलाकर उससे अच्छे किस्म के

विषयसूची

जूट-ऊन का वस्त्र तैयार होंगे। नेपाल संलग्न इलाके में भी जूट की खेती अच्छी होगी।

कृषि निर्भर शिल्प तैयार करने के लिए परिवहन और बाजार की व्यवस्था इन दोनों पर भी ध्यान देना होगा। उदाहरणस्वरूप किसी बड़े शहर के दश मील के व्यासार्ध के अन्तर्गत अगर फल की खेती की जाय, तो स्थानीय किसान सम्प्रदाय आर्थिक रूप से अधिक लाभवान होंगे।

तुमलोगों को तुम्हारे देश तथा समग्र विश्व के सम्पर्क अच्छी तरह से जानना होगा। इन सबों के रहस्यों को जान लो। मातृभाषा के लिए संग्राम करना अपनी मर्यादा की रक्षा का संग्राम है। हर आदमी अपनी-अपनी मातृभाषा में बातें करेंगे और उनके विकाश भी करेंगे। तुमलोग देश का कल्याण और उन्नयन का

काम करते-करते अपनी मातृभाषा की उन्नति के लिए भी कोशिश करते चलोगे।

२१ अप्रैल १९८९, कलिकाता

चक्रनेमी (मास्टर युनिट)

प्रारम्भिक अवस्था में मास्टर युनिटें शुरू की गयी थी समाज के उनसब पीछड़े और दलित श्रेणी के भाग्य की उन्नति के लिए जो लोग इस उन्नतिशील जगत् के साथ ताल मिलाकर चलने का अवसर नहीं पाता है। जब आनन्दमार्ग ने जीवन के सभी दिशाओं को स्पर्श करना शुरू किया तब निश्चित किया गया था कि आनन्दमार्ग को क्षुद्र संस्करण के रूप में मास्टर युनिटें स्थापित होंगे। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न स्नायु केन्द्रं विभिन्न अंग प्रत्यंगों को नियन्त्रित करता है और वे मन के द्वारा नियन्त्रित होते हैं, ठीक उसी प्रकार ये मास्टर यूनिट समाज के स्नायुकेन्द्र के रूप में परिगणित होंगे। मास्टर यूनिटों में आनन्दमार्ग के सभी विभागों से, सभी शाखा - प्रशाखाओं से सक्रिय प्रतिनिधित्व तथा अंश ग्रहण करना होगा। जो लोग वैसा करने में व्यर्थ होंगे, उनके अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

आनन्दमार्ग का ये क्षुद्र संस्करण समूह (अर्थात मास्टर यूनिटें) विस्तृत होती रहेंगे तथा बृहदाकार (Maxiature form) रूप धारण करेंगे और सारे विश्व में फैल जाएँगे। मास्टर यूनिटें उनके सभी प्रकार का सेवा कार्य विस्तारित रूप से करते रहेंगे, विशेष रूप से शिक्षा-संस्कृति-अर्थनैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नयन के क्षेत्र में। सर्वप्रथम सभी मनुष्यों के लिए, उसके बाद सभी जीवित प्राणियों की सामग्रिक उन्नति के लिए, जात-पात, गोष्ठी, वर्ण, धर्म तथा जाति सत्ता निर्विशेष में काम करता जाएगा। मानवता के मामलें में कोई कृत्रिम भेद-विभेद नहीं रहता है। केवल मानवता ही उसका मूल वैशिष्ट्य होता है।

सालों में जनसाधारण की जीवनयात्रा का मान बहुत हद तक उन्नत कर डालेंगे। हमलोगों को शीघ्र ही जन साधारण के

लिए सार्विक सेवा का व्यवस्था करना होगा। प्राउट भी इन सर्वात्मक सेवा जीवनधारा के साथ संश्लिष्ट है, ये सभी सामाजिक सेवा है। हमारा आध्यात्मिक दर्शन इन जीवनधाराओं के उपर है। (अर्थात सामाजिक सेवा तथा कर्म हमेशा परिवर्तनशील है लेकिन अध्यात्म दर्शन वैसा नहीं है)। अतः आध्यात्मिक दर्शन के केन्द्र में रखकर जितना अधिक सम्भव हमलोगों को मास्टर यूनिटें शुरू करना होगा। सर्वात्मक परिषेवा ही प्राउट तथा मास्टर यूनिटों के जीवन के चलने का पथ होगा।

एक आदर्श मास्टर यूनिट के लिए कौन-कौन सी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं? इसके पाँच प्रधान कार्यधाराएँ हैं जो प्राउट के पाँच न्यूनतम प्रयोजनीयता के साथ सम्पर्कित है। प्रथमतः उन्नत कृषि तथा वैज्ञानिक पद्धति से कृषि की सहायता से सालभर खाद्य तथा पर्याप्त स्थानीय कच्चामाल का उत्पादन करना ही होगा

विषयसूची

जिससे साल भार खाद्य की आपूर्ति की जा सके। और ये कच्चामाल विभिन्न शिल्प तथा कृषिभित्तिक शिल्प का मूल बूनियाद होगा - जैसे डाइरी फार्म, उद्यान शिल्प, रेशम शिल्प इत्यादि। इस प्रकार के शिल्पों के लिए बाहर से आयात किए गए कच्चेमाल पर निर्भर नहीं किया जा सकता है।

द्वितीयतः वस्त्र-वयन के लिए पर्याप्त परिमाण रेशों तथा तन्तु जातीय द्रव्यों का उत्पादन करना होगा। उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है भीण्डी, अनानास, सुगर बीट, केला, तुलसी, रूई, शन, शिमल का पेड़ वस्त्र तैयार के लिए व्यवहृत हो सकते हैं।

यूनिटों में स्थापित करना होगा। अभी तुरन्त उच्चतर शिक्षा प्रतिष्ठानें तैयार करने की जरूरत नहीं है।

चतुर्थतः, साधारण तथा विशेष औषधालय (Medical unit) स्थापित करना होगा। विशेष औषध केन्द्रों में कुछ दिनों के लिए अक्षम तथा विकलांग लोगों को रखा जाएगा क्योंकि मास्टर यूनिटें बड़ा अस्पताल चला भी सकता है और नहीं भी चला सकता है। इन औषधालयों में विकल्प चिकित्सा व्यवस्था पर जोर देना पड़ेगा।

पञ्चमतः मास्टर यूनिटों में अति दरिद्र व्यष्टियों के लिए गृह निर्माण प्रकल्प लेना होगा। दरिद्रों के लिए यह विशेष प्रकल्प अविलम्ब लेना चाहिए।

पृथ्वी के (प्रत्येक देश के) हर जिले में, हर प्रखण्ड में मास्टर यूनिट शुरू करने की आवश्यकता है। मास्टर यूनिटें आनन्दमार्ग की बृहत्तम संरचनाएँ होंगी। सभी मास्टर यूनिटें

आनन्दनगर का एक-एक क्षुद्र संस्करण होगा। और ये सब आनन्दमार्गियों का प्रधान कर्मकेन्द्र होगा। मास्टर यूनिट के लिए न्यूनतम पाँच एकड़ की जमीन जरूरत होगी। मास्टर यूनिट का संस्कृत नाम है चक्रेनमी जिसका अर्थ होता है चक्र का प्राणकेन्द्र। मैं चाहता हूँ सभी चक्रनेमियाँ सभी रूप से अथनैतिक दृष्टिकोण से स्वयं सम्पूर्ण हो क्योंकि अर्थ के लिए अध्यात्मवादियों को दूसरों पर निर्भरशील नहीं होना चाहिए।

कुछ साधारण विषय हैं जिन्हें चक्रनेमि में रूपायित करना होगा :

(1) प्राथमिक, उत्तर-प्राथमिक तथा उच्चतर विद्यालय

(2) निम्न, उच्च, उच्चतर श्रेणी के छात्र-छात्राओं के लिए

अनेकावास (Hostel)

(3) छोटे तथा बड़े लड़के-लड़कियों के लिए शिशु सदन तथा छात्रसदन

(4) औषधालय (Medical unit)

(5) कुटीर शिल्प

(6) दुग्ध उत्पादन खलिहान (डेरी फार्म, Dairy farm)

(7) वृक्षरोपण

इन साधारणं विषयों को छोड़कर भी चक्रनेमियों में और भी कुछ विशेष व्यवस्ताएँ रखनी होगी-

(1) आटा तैयार करने के लिए गेहूँ पीसनेवाला मशीन

(2) पावरोटी तैयार करने कि लिए बेकारी (Bakery)

(3) बीज भण्डार

(4) सुलभ बीज वितरण केन्द्र। ये केन्द्र अच्छे किस्म के बीज संग्रह करेंगे तथा सुलभ मूल्य में आपूर्ति करेंगे। हर प्रकार के अनाज कटने के अन्त में किसानों से बीज खरीदा जा सकता है, बाजार से भी खरीदा जा सकता है या बीज उत्पादन भी किया जा सकता है। लेकिन ये केन्द्र साधारण जनताओं को अवश्य ही सुलभ मूल्य से अच्छे किस्म का बीज उपलब्ध कराएँगे।

वितरण हेतु निम्नलिखित पद्धति से पेड़ों के पौधे तैयार किए जाएँगे। सबसे पहले, पौधों को डेढ़ फुट (1'6") तक बढ़ने देना होगा। उसके बाद उन पौधों को मिट्टी से उठा कर उनके जड़ को आधा घण्टा पानी में भिंगो कर रखना पड़ेगा। इसके बाद हरेक पौधे का मुख्य जड़ को पौधे के एक इंच नीचे काट देना होगा, और उसके बाद शेष जड़ को पौधे के साथ 10 मिनट पानी में भींगाकर रखना पड़ेगा। इसके बाद उस पौधे को किसी जमीन पर गाढ़ देना

विषयसूची

पड़ेगा या वितरण हेतु पैक करना होगा। इस प्रकार से तैयार किए गये पौधों के पेड़ें साधारण बीज के पेड़ों से बहुत बड़ा होगा और मीठा फल देगा। लेकिन कलम किए हुए पेड़ों के फल जैसे उतने अच्छे नहीं होंगे।

(6) रेशम की खेती तथा सिल्क के कपड़े बुनने का केन्द्र ।

(7) जैव गैस उत्पादन केन्द्र । इसका अर्थ हुआ यहाँ पर डेइरी फार्म (Dairy-farm) रखना ही होगा। जल कुम्भी भी जैव-गैस उत्पादन के लिए बहुत अच्छा है।

(8) मक्खन उत्पादन, मधुमक्खी पालन, एक आदर्श कृषि प्रशिक्षण केन्द्र (Farm Training Centre), एक परिवेश सहायक कानन (sanctuary)।

हमलोगों के सभी चक्रनेमियों में केवल जैव सार जैसे पत्तों से तैयार खाद, गोबर, नीम का खाद, निम स्प्रे इत्यादि व्यवहार करना होगा। किसी भी रूप मे रासायनिक खाद का व्यवहार नहीं किया जाएगा। हमलोगों के चक्रनेमियों के कर्मसूचियों में प्राच्य की महत्तम भावनाएँ तथा पाश्चात्य की कर्म चञ्चलताएँ मिले हुए रहेंगे।

अर्थनैतिक शोषण के तीन रूप

विषयसूची

मार्क्स ने उद्धृत्त मूल्यसृष्टि को शोषण का उत्स के रूप में माना था। मास् के अनुसार उद्धृत्त मूल्य को पूँजीपतियाँ आर्थिक मूल्य में रूपायित करता है और वही मुनाफा के रूप में सञ्चित होता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का दीर्घ विश्लेषण करके मार्कस् ने अन्ततक इस सिद्धान्त में पहुँचा था कि मुनाफा ही शोषण है। क्योंकि श्रमिक श्रेणियों के उत्पादित सम्पद में श्रमिकों की न्याय संगत माँगों को अस्वीकार करके और उससे उनलोगों को वञ्चित करके वह मुनाफा तैयार की जा रही है, इसीलिए वह शोषण है। उद्धृत्त मूल्य सृष्टि को बन्द करके शोषण को खत्म किया जा सकता है- मास् ने ऐसा ही विचार प्रकट किया है। विप्लवोत्तर कम्युनिष्ट राष्ट्र रूस, चीन, भियतनाम सबने मार्कस् के इस शोषण तत्त्व को परित्याग किया है। उनलोगों के विचार से मुनाफा शोषण नहीं है

तथा अर्थनीति में उदवृत्त मूल्य सृष्टि राष्ट्रीय समृद्धि का ही अपरिहार्य अंश है। उनलोगों ने ऐसा ही बिचार प्रकट किया है। शोषण की संज्ञा तथा व्याख्यान में मार्कस् की प्रचेष्टा को प्रथम कहकर माना जाय तो वह प्रचेष्टा भी बहुत बड़ी त्रुटियों से मुक्त नहीं हो सका है। क्योंकि मार्कस् ने केवल अर्थनीति के दृष्टिकोण से विचार-विश्लेषण किया है।

शोषण की त्रुटिहीन संज्ञा तथा, विश्लेषण एकमात्र प्राउट के दृष्टिकोण से ही मिलना सम्भव है। उसी दृष्टिकोण से ही कहा जा रहा है- एक निर्दिष्ट भौगोलिक सीमा में अवस्थित वहाँ की जनगोष्ठी का दैहिक, मानसिक तथा आत्मिक विकाश को स्थम्भित करके, उस अञ्चल के प्राकृतिक सम्पद के साथ-साथ स्थानीय जनगोष्ठी का श्रम तथा मानसिक सम्पद का अबाध लुण्ठन ही शोषण है। प्राउट केवल अर्थनैतिक शोषण की बातें नहीं

करता है। प्राउट के दृष्टिकोण से अर्थनैतिक शोषण छोड़कर भी मानसिक तथा आध्यात्मिक शोषण भी होता है। अर्थनैतिक शोषण का भी कई एक पर्याय या भाग हैं। जैसे-(1) औपनिवेशिक शोषण (2) साम्राज्यवादी शोषण (3) फैसिष्ठ शोषण। इनके हरेक के साथ हरेक का नीतिगत तथा चरित्रगत सादृश्य के साथ वैसादृश्य भी है। औपनिवेशिक शोषण के क्षेत्र में शोषकवर्ग पहले एक बाजार को कब्जा करता है। उसके बाद वहाँ के कच्चेमालों को एकतरफा रूप से उठा लेता है तथा अपने अञ्चल में कारखानों में विक्रीयोग्य वस्तुओं का निर्माण करके फिर उसी बाजार में उन सभी बस्तुओं को बेचता है। इस व्यवस्था में वे लोग दोनों तरफ से लुटने का अवसर प्राप्त करता है। कच्चामाल इकट्ठा करने के समय वे लोग स्थानीय अधिवासियों को ठगता है और उत्पादित पण्य सामग्री को फिर से उसी बाजार में ऊचित मूल्य से अधिक दामों में बेचता है। औपनिवेशिक शोषकवर्ग बजार को

कब्जे में रखने के लिए स्थानीय शिल्पोत्पादन व्यवस्था को सम्पूर्णरूप से ध्वंस या पंगु कर देता है।

औपनिवेशिक शोषण

बंगाल में ब्रिटिश शासन काल का प्रथम भाग था औपनिवेशिक शोषण का युग। ब्रिटिश पूँजीपतिवर्ग बंगाल में अर्थनैतिक बाजार को कब्जा करने के लिए सुपरिकल्पित रूप से बंगाल के शिल्पों को ध्वंस कर दिया और बंगाली शिल्पी तथा कारीगरों को ब्रिटिश पूँजीपतियों के द्वारा निर्मित कलकारखानों में काम करने के लिए बाध्य किया। जो लोग घर में बैठकर काम करते थे, ब्रिटिश पूँजीपति द्वारा परिचालित इस्ट इण्डिया कम्पनी उनलोगों से शपथ करवा लेते थे कि वे कारीगर केवल कम्पनी के निकट से ही कच्चामाल खरीदेंगे और उस कच्चामाल से

उत्पादित वस्तु वे लोग कम्पनी के निकट ही बेचेंगे। ब्रिटिश कम्पनी लुटकर कच्चामाल संग्रह करता था। कारीगरों के निकट उसी कच्चामाल को वे लोग अधिक दाम में बेचता या फिर कारीगरों से प्रस्तुत सामग्रियों खरीदने के समय वास्तव मूल्य से एक चौथाई मूल्य देकर जबरदस्ती ले लेता था। फिर कम्पनी उन सामानों को बेचने के समय वास्तव मूल्य से अधिक दाम पर बेचता था। जो सब कारीगर इस शठता के जाल में फँसना नहीं चाहते थे उनके कमर में रस्सी बाँधकर प्रकाश्य में कोड़ा लगाते थे। बंगाल के तन्तुबाय बर्ग भविष्य में कभी भी जैसे मञ्चेस्टर में निर्मित शिल्प के साथ प्रतियोगिता न कर सके उसके लिए वहाँ के तन्तुबायों के बृद्धाङ्गुष्ट (अंगुठा) को काटकर उनके शिल्प नैपूण्य को हमेशा के लिए ध्वंस कर दिया गया। इस प्रकार से वे लोग पलाशी युद्ध के मात्र 10 साल के अन्दर बंगाल का रेशम, सूती, चीनी, नमक, रंग, यन्त्रपाति, जहाज निर्माण शिल्प इत्यादि सबकुछ ध्वंस कर दिया। जो सब विभिन्न कारीगर वंश परम्परा से

विभिन्न शिल्प में नियुक्त था, उनलोगों को अपनी रोजी रोजगार के स्वाभाविक रास्ते से उठाकर सभी को खेती की ओर धकेल दिया। इसका नीट परिणाम हुआ छियात्तर का भयावह मन्वन्तर। इस प्रकार से बंगाल प्रधानतः कच्चामाल आपूर्ति करनेवाला देश बन गया तथा इंग्लैंड में निर्मित वस्तुओं को बेचने का एक विशाल बाजार बनकर रह गया। इसी को कहा जाता है औपनिवेशिक शोषण।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के 70 साल बाद भी बंगाल तथा दुनिया की छाप्ती से औपनिवेशिक शोषण की समाप्ति नही हुई है। बल्कि भारतीय पुँजीपतियों के द्वारा यह शोषण और भी गहरी तथा व्यापक हो गया है। वर्त्तमान में भारतीय पुँजीपति वर्ग पश्चिमबंगाल तथा उसके आस पास के इलाकों को कच्चामाल की आपूर्ति का स्त्रोत के रूप में ग्रहण किया है। इन सभी इलाकों से बंगाल का

खनिज, कृषिज तथा वनज सम्पत्तियाँ उचित दाम से बहुत कम दाम में पूँजीपति वर्ग संग्रह करके गुजरात, महाराष्ट्र, पञ्जाब, राजस्थान इत्यादि अपनी इलाकों के कारखानों में निर्मित वस्तुओं में रूपान्तरित करके उसी वस्तु को बंगाल के बाजार में दोगुणे दामों में बेचते हैं। वर्तमान में बंगाली के उदयास्त जीवनयात्रा का प्रत्येक नित्य प्रयोजनीय वस्तुएँ बाहर से उत्पादित होकर पश्चिम बंगाल के बाजार में आता है, परन्तु सभी वस्तुओं के लिए सामग्रियाँ तथा कच्चा माल का जुगान देता है पश्चिम बंगाल। ठीक इसी व्यवस्था के आस-पास पश्चिम बंगाल के अपने शिल्पों को ध्वंस प्राय तथा पंगु कर दिया गया है, जिसके कारण किसी भी रूप में भारतीय पूँजीपतियों के आपनी इलाकों में उत्पादित वस्तुओं के ताथ प्रतियोगिता न कर सके। पञ्जाब तथा हरियाणा को चर्मशिल्प का इकलौता केन्द्र के रूप में विकसित किया गया है। लेकिन इन दोनों राज्यों में पशु चर्म एक दम लभ्य नहीं है। तराई, डुयार्स तथा सुन्दरवन के गहन वन्य इलाकों से कच्चामाल के रूप

में पशु चर्म संग्रह करके अपने कारखानों में उस पशु चर्म से खेल सामग्रियाँ तथा चर्मशिल्प से सम्बन्धित वस्तुओं का उत्पादन करके उन सभी वस्तुओं को पश्चिम बंगाल के बाजार में लाया जाता है। पश्चिम बंगाल में अपनी बाजारों में बेचने के लिए कोई चर्मशिल्प केन्द्र नहीं है। बाटानगर में उत्पादित जूतों के कुछ हिस्से पश्चिम बंगाल में रखकर सभी सामग्रियाँ विदेशों के बाजार में बेचने के लिए निर्यात किया जाता है। खेल सामग्रियों के उत्पादन में भी एकही स्थिति है। पश्चिम बंगाल इनलोगों के लिए कच्चामाल आपूर्ति कारक 'परदेश' तथा उनके अपने इलाकों में उत्पादित सामग्रियों को खलास करने का एक विशाल बाजार है। उन सभी भारतीय औपनिवेशिक शोषकों का जैविक मनस्तत्त्व है 'परदेश में आया है, जितना ही सके लुट लो।' विशेष क्या कहना औपनिवेशिक शोषण का सब कुछ अर्थनैतिक शोषण है।

साम्राज्यवादी शोषण

इसके बाद साम्राज्यवादी शोषण। साम्राज्यवादी शोषण के क्षेत्र में शोषकवर्ग राजनैतिक तथा अर्थनैतिक नियन्त्रण क्षमता को परिपूर्ण रूप से अर्थनैतिक शोषण के काम में लगाता है। वास्तव में बंगाल के उपर साम्राज्यवादी शोषण का युग शुरू हुआ है मुगल सम्राट अकबर के जमाने से। आइन-इ-अकबरी में उल्लेख है कि बंगाल को मुगलवाहिनी में 23,301 संख्यक अश्वारोही, 8,01,159 संख्यक पदातिक, 4400 संखक नावें, 4260 कमानें तथा 108 हाथियाँ जुगान देना होता था। युद्ध में जो नुकसान होता था वह बंगाल को पूरा करना पड़ता था। विशाल मुगल सेनाओं को भोजन की व्यवस्था बंगाल ही करता था। युद्ध का खर्च का एक विशाल अंश बंगाल की गरदन पर चढ़ाया जाता था। दाक्षिणात्य में मराठाओं को कब्जा में लाने के लिए औरङ्गजेब

विषयसूची

को विपुल सैन्यवाहिनी का भोजन तथा युद्ध सामग्रियों का खर्च बंगाल को ही चुकाना पड़ा था। उस खर्च को चुकाने के लिए बंगाल के घरों में हाहाकार पैदा हो गया था। मुगल सम्राटों के शोषण के फलस्वरूप बंगाल में कई बार दुर्भिक्ष तथा हाहाकार पैदा हो गया था और मुगल सम्राटगण स्थानीय राजाओं के मदद से इन सभी विद्रोहों को निर्मम रूप से दमन करके आया है।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण

मुगल काल के अवसान के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण का आगमन हुआ। उस शोषण का प्रथम चरण था खुले आम लुटतराज का युग। क्लाइव स्वयं मिरजाफर के निकट वार्षिक तीन लाख रूपए का जायगीर छोड़कर 23 लाख

रूपए नगद लिया था। कम्पनी और कर्मचारीगण तीन करोड़ रूपए लिया था। इसके अलावे भी देशीय राजाओं के महल का सम्पद लुट कर ब्रिटिश लोग विपुल परिमाण अर्थ लुट किया था। भारत छोड़ने के वक्त क्लाइव ने विपुल परिमाण अर्थ साथ में ले गया था।

साम्राज्यवादी शोषण का परिपूरक हुआ राजनैतिक शोषण। ब्रिटिशों का राजनैतिक शोषण शुरू हुआ बंगाल के बृहत्तम सीमा को खण्डित करके पार्श्ववर्ती इलाकों में मिलाकर बंगाली जनगोष्ठी की मूल संख्या को घटा कर। जिन इलाकों को अलग करके संलग्न राज्यों के साथ मिलाया गया था, उन सभी इलाकों के जातीय सम्पदों के अधिकार से भी बंगाल के जन समुदाय को वञ्चित किया गया। उन सभी इलाकों के बंगाली जन समुदाय कई पीढ़ियों के बाद अबंगाली कहकर बंगाल के मूल भूखण्ड से अलग हो गए। भारत भूखण्ड के और किसी भी इलाकों

विषयसूची

में ब्रिटिश प्रशासन 'फुट डालो, शासन करो' इस नीति का प्रयोग नहीं किया। बंगाल में अर्थनैतिक शोषण को चिरस्थायी करने के लिए ब्रिटिशों ने राजनैतिक अत्याचार का पथ अवलम्बन किया। बंगाल की जनता क्षमतासीन व्यष्टियों की स्वेच्छाचारिता में अभ्यस्त था। लेकिन इस प्रकार कोई व्यवस्था उनलोगों ने नहीं देखा था, जिसने उनके व्यवसाय, वाणिज्य, रोजी-रोजगार तथा जीवनधारा को रोक दिया था।

इन्ही सबों का संयुक्त परिणाम हुआ छियत्तर का मन्वन्तर-जिसमें कुछ ही दिनों में बंगाल के शिल्पी, कारीगर तथा कर्षक समुदाय मिलाकर प्राय एक करोड़ आदमी ध्वंस हो गया। छियत्तर के मन्वन्तर के बाद मात्र 20 साल के अन्दर ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति ने उसकी राजनैतिक अर्थनैतिक शक्ति प्रयोग करके बंगाल का रूई, रेशम, वस्त्रवयन, चीनी, नमक, लोहा,

यन्त्रपाति, रंग, जहाज शिल्प सब कुछ को ध्वंस कर दिया। बहुत पुराना विख्यात वस्त्र शिल्प तथा व्यवसा-वाणिज्य का उल्लेख योग्य केन्द्र तथा दो लाख निवासियों का समृद्धशाली शहर ढाका की रोशनाई समाप्त हो गयी। ढाका की जनसंख्या 40 हजार हो गई। शिल्प रहित होकर बेकार कारीगर समुदाय ढाका छोड़कर जीवनधारण के लिए गाँत्र देहातों में जाकर खेती का काम करने लगे। ये सब भूमिहीन खेत मजदूर के रूप में खेती के काम में लग गए। इसी प्रकार से शिल्पनगरी मुर्शिदावाद, पण्डुवा तथा अन्यान्य शहरों की समृद्धि भी म्लान हो गयी। शिल्प-प्रधान बंगाल के गाँव-देहातों में असंख्य बेकारों की सृष्टि हुई। वे सभी जाकर खेती में भीड़ जमाए।

बंगाल के शिल्पों को परिपूर्णरूप से ध्वंस करने के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शोषण बंगाल के कृषि क्षेत्र में भी प्रवेश

विषयसूची

किया। 1779 साल से ब्रिटिश शोषकों ने जोरपूर्वक बंगाल के किसानों को धान के खेतों में नील की खेती करवाना शुरु किया। उस समय यूरोप में रंग की माँगें काफी बढ़ गई थी। लेकिन जिस खेत में एकबार नील की खेती की जाती है उस खेत में 2-3 साल तक धान की खेती नहीं की जा सकती है। किसानों ने इस नुकसान को मानकर नील की खेती करने में अस्वीकार किया। फलस्वरूप उन लोगों के उपर भयावह अत्याचार पीड़न तथा हत्या का सिलसिला शुरू हुआ। प्राय अस्सी वर्ष तक लगातार अत्याचार-शोषण तथा बंगाल के किसानों के विद्रोह के पटभूमि पर नील की खेती समाप्त हुई। नील की खेती के साथ ही ब्रिटिशों की दृष्टि बंगाल के जूट और चाय की खेती पर पड़ी। बंगाल से अर्थ संग्रह के रूप में मुख्य उपायों के हिसाब से अंग्रेजों न इन दो कृषिज पण्यों को प्रधान अवलम्बन के रूप में हासिल किया।

1793 में लर्ड डलहौजी नें चिरस्थायी बन्दोवस्त के मारफत ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में इंगलैण्ड के प्राचीन क्षयिष्णु तथा पचनशील जमिदारतन्त्र की एक नकली व्यवस्था को कायम किया। इस व्यवस्था में जमीन्दार को जमीन का वास्तविक मालिक बनाकर उन्हीं के हाथों में काफी राजनैतिक तथा अर्थनैतिक क्षमता प्रदान किया गया। ख्याल खुशी के मूताबिक मालगुजारी का निर्धारण, कर्षक उच्छेद, कर्षकों के स्थावर तथा अस्थावर सम्पत्तियों की कुर्की, कर्षकों का विचार तथा हत्या करने का भी अधिकार जमीन्दारों को दिया गया था। इन सबों के बदले जमीन्दारों को वर्ष के अन्त में एक निर्दिष्ट परिमाण रूपये ब्रिटिश सरकार के पास पहुँचाना पड़ता था। वे रूपये निश्चित समय के अन्दर ट्रेजरी में जमा न होने पर जमीन्दारों की जमीन्दारी नीलाम कर दी जाती थी। कोई भी जमीन्दार नहीं चाहता था कि उनकी जमीन्दारी नीलम हो जाय। अनावृष्टि, अतिवृष्टि या अन्यान्य प्राकृतिक दुर्योगजनित जो भी कारण हो किसानों को अर्थमूल्य में

मालगुजारी देना ही पड़ता था। जमीन्दारों का लक्ष्य होता था सरकारी भुगतान के बाद मुनाफा कमाना। लेकिन दूर-दराज गाँवों में जाकर स्वयं उपस्थित रहकर मालगुजारी वसुलना मुस्किल होता था। इसलिए जमीन्दारों ने मारफत मालगुजारी वसुलने की व्यवस्था शुरू की। वह आदमी पुनः एक श्रेणी के लोगों के उपर इसका भार देकर निश्चिन्त रहता था। इस प्रकार जमीन्दार और किसानों के बीच प्राय पचास से भी अधिक स्तर तैयार हो गया था। प्रत्येक स्तर परवर्ती निम्न स्तर से जो माल गुजारी संग्रह करता था उसका कुछ हिस्सा अपने पास रखकर शेष अर्थ उनके उपरवाले को देता था, और इसी तरह से स्तर परम्परा में समस्त भार किसानों पर पड़ता था। मध्यस्वत्त्व भोगी ये दलाल किसानों से मालगुजारी संग्रह करता था लेकिन इसके बदले कोई प्राप्ति रसीद नहीं दी जाती थी। फलस्वरूप किसानों के शोषण तथा लुट की कोई सीमा नहीं थी। और उसी व्यवस्था के साथ सामञ्जस्य

बरकरार रखने के लिए कर्षक समाज गरीबी के सर्वेंशाष स्तर पर उतर चुका था।

किसानों के अभाव का सुयोग लेकर जमीन्दार तथा उनके दलालों को छोड़कर भी और एक अन्य प्रकार की शोषक गोष्ठी की उत्पत्ति हुई। ये लोग ऊँचे व्याज दर में लोगों को कर्ज देता था। किसान जमीनों को बन्धक देकर कर्ज लेता था। बन्धकी जमीन का अधिकांश ही किसान छोड़वा नहीं सकता था। जमीन महाजन के हाथों में चला जाता था। किसान जमीनों को खोकर खेतमजदूर में परिणत होता था। केवल बंगाल में ही एक विपुल संख्यक किसान भूमिहीन होकर खेतीहर मजदूर में रूपान्तरित हो चूका था।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति के उपरान्त 1947 में बंगाल विभाजन के माध्यम से शुरू हुआ भारतीय साम्राज्यवादी

शोषण का युग। स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रथम चरण में क्षुद्र पश्चिम बंगाल भारत के अन्यान्य राज्यों की तुलना में अधिक अग्रसरमान राज्य था। पश्चिम बंगाल का आञ्चलिक आय अन्यान्य राज्यों के आञ्चलिक आय से अधिक था। उस समय भी पश्चिम बंगाल की अर्थनीति में बहुत सारे बंगाली शिल्पपति विराजमान थे। बहिरागत शोषकवर्ग उनके परिकल्पनानुसार पश्चिम बंगाल के शिल्प तथा वाणिज्य के विशेष-विशेष क्षेत्र से बंगाल के शिल्पपतियों को हटाना शुरू किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही साथ बंगाल-वञ्चना का काम निश्चित परिकल्पना माफिक शुरू हो गया। स्वाधीनता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही जूट के माध्यम से वैदेशिक मुद्रा अर्जन के स्वार्थ में खेती की जमीन जूट की खेती में रूपान्तरित हो गयी। इसके फलस्वरूप किसान वर्ग दो तरफ से मार खाया। धान की खेतों से उनकी आय बन्द हो गयी तथा दूसरी ओर जूट उत्पादन का खर्च तथा बजार दर भी किसानों को नहीं मिली। बहिरागत शोषकवर्ग इसमें दो तरफा फायदा हासिल किया।

पहला, वे लोग समग्र जूट को विदेशों में निर्यात कर वैदेशिक मुद्रा का पुरा का पुरा हिस्सा आत्मसात कर गया। और दूसरा, अपनी इलाकों में उत्पन्न अप्रयोजनीय धान को वे लोग पश्चिम बंगाल में धकेल दिया। दूसरी तरफ पश्चिमबंग में कुल अस्सी जूट मिल हैं। इन सभी जूटमिलों के मालिक हैं बहिरागत पूँजीपतियाँ। ये लोग करोड़ों रूपए मुनाफा अर्जन करते थे। केन्द्रीय सरकार बंगाल की जूट को निर्यात करके साल में करोड़ों रूपए की आमदनी करती है और जूट से निर्मित वस्तुओं पर नानाविध टैक्स, शुल्क आदि बाबद और भी कोई करोड़ रूपए प्राप्त करती है। केन्द्र को 20 प्रतिशत वैदेशिक मुद्रा प्राप्त होता है बंगाल की जूट से। बंगाल में जूट की खेती करनेवाले किसानों को उनके द्वारा उत्पादित सम्पद से अर्जित वैदेशिक मुद्रा का विन्दुमात्र लभ्यांश भी नहीं मिलता है। केन्द्रीय सरकार बहुत ही कम कीमत पर महाराष्ट्र तथा गुजरात को रूइ बेचती है। बंगाल के किसानों को उससे बहुत ही अधिक दामों में उसे खरीदना पड़ता है। फलस्वरूप बंगाल में सूती तथा ताँतवस्त्र

उत्पादन में अधिक खर्च पड़ता है। चीनी के क्षेत्र में भी वही स्थिति है। बंगाल का खनिज सम्पद लोहा, कोयला इत्यादि जब दूसरे राज्यों में बेचा जाता है तो बिना मुनाफा का ही उसे बंगाल राज्य को देना पड़ता है। लेकिन दूसरे राज्यों से तेल तथा अन्यान्य प्रयोजनीय वस्तु खरीदने के लिए बंगाल को अधिक मूल्य देना पड़ता है।

बहिरागतों के शोषण से बंगाल का 90 प्रतिशत आज गरीबी रेखा से नीचे उतर गया है। बंगाल की अर्थनैतिक ढाँचा आज सम्पूर्ण रूप से विध्वस्त है। फिर भी बंगाल से हर रोज 10 करोड़ रूपए बहिरागत शोषकों के मारफत बंगाल के बाहर चला जा रहा है। बंगाल का अपना शिल्प-उद्योग समूह आज प्राय निर्मूल हो चूका है। व्यवसा-वाणिज्य समेत बंगाल के महत्त्वपूर्ण शिल्पाञ्चल समूह भी बहिरागत शोषकों के हाथों में है। बंगाल के

एक करोड़ से भी अधिक कर्मक्षम युवक कर्महीन हो चूका है और दूसरे तरफ नौकरी के क्षेत्र में 60% लोगों को बंगाल के बाहर से लाया गया है।

फासिस्ट शोषण

आर्थिक शोषण का चरम तथा भयावह रूप हुआ फासिष्ट शोषण। साम्राज्यवादी शोषक वर्ग उनके शोषण को तर्क तथा तथ्यों के सहारे खड़ा करने के लिए वे लोग' सवसे पहले जातीय समर्थन प्राप्त करने के लिए सचेष्ट होते हैं। इसके लिए वे लोग एक तत्त्व को प्रतिष्ठित करता है। वह तत्त्व हुआ जातीयतावाद। जातीयतावाद का सेन्टिमेण्ट दे कर वे लोग उनके शोषण को तर्कसिद्ध तथा नियम तान्त्रिक कहकर प्रतिष्ठा करना चाहता है। साम्राज्यवादी ब्रिटिश शक्ति उनके शोषण को तर्क सिद्ध करने के

लिए जातितत्त्व का आश्रय लिया था। ब्रिटिशों का अनुसरण करके इटली का मुसौलिनी, जर्मनी का हिटलर एक ही रास्ते से अग्रसर हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब कम्युनिष्ट साम्राज्यवाद प्रतिष्ठित हुआ तब सोवियत रूस का नेता यूसूफ स्टैलिन ने 'दास-जाति' के एक नायक तन्त्र के तत्त्व का प्रचार किया। ठीक उसी प्रकार कम्युनिष्ट चीन का नायक माओ से-तुंग ने भी 'चीना-जाति तत्त्व' का प्रचार किया साम्राज्यवादी शक्ति फासिष्ट शक्ति में रूपान्तरित होने के साथ-साथ ही जनगोष्ठी के उपर मानसिक, सांस्कृतिक शोषण का जाल विस्तृत होने लगता है। प्रधानतः अर्थनैतिक शोषण को बाधाहीन तथा चिरस्थायी करने के लिए ही मानसिक शोषण की शुरूआत होती है। इसी लिए इसे एक शब्द में मानसिक अर्थनैतिक शोषण कहा जाता है।

फासिष्ट शोषकवर्ग उनके शोषण को बरकरार रखने के लिए सबसे पहले प्राकृतिक सम्पदशाली एक दुर्बल जनगोष्ठी को चून लेता है। फासिष्टों का कुर-दृष्टि जिस जनगोष्ठी के उपर निबद्ध होगा वे लोग पहले ही कोशिश करेगा उनके अपना निजस्व सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से हटाने का। इस प्रयोजन हेतु फासिष्ट शक्ति हमेशा ही उस जनगोष्ठी के उपर एक अन्य भाषा तथा सांस्कृतिक परिवेश को चढ़ा देना चाहता है, जिसके फलस्वरूप उस जनगोष्ठी के अन्तर्भुक्त व्यष्टि मानस आसानी से अपने को प्रकाश नहीं कर पाता है, उनके अन्दर एक प्रकार पराजित मनोभाव तैयार होने लगता है। वही पराजित मनोभाव उनके तेज को, संग्रामशीलता को ध्वंस कर के उनकी मानसिकता को सम्पूर्णरूप से विनष्ट कर देता है। तीव्र अर्थनैतिक शोषण के लिए फासिष्ट लोग इस पटभूमि को निपुणता के साथ

व्यवहार करता है। फासिष्ट शोषण का प्रधान लक्ष्य हुआ प्राकृतिक सम्पद को अबाध रूप से लुटने के लिए जरूरत पड़ने पर एक जनगोष्ठी को इतिहास के पन्नों से सदा के लिए विलुप्त कर देना।

भारत में ब्रिटिश शासन काल में बंगाल का जनसाधारण फासिष्ट ब्रिटिशों के इस क्रुर मानसिक शोषण का शिकार हुआ था। मानसिक शोषण के क्षेत्र में ब्रिटिशों ने प्रधानतः तीन पद्धतियों का आश्रय लिया था। ब्रिटिश विरोधी मुक्ति-संग्राम, विद्रोह-विप्लव में व्यस्त ब्रिटिश शोषकों ने बंगाली की मानसिकता और प्राणशक्ति को ध्वंस करने के लिए ही मानसिक शोषण शुरू किया था। द्वितीय पद्धति में बंगाली जनगोष्ठी की मूल संख्या को घटाने के लिए बंगाल को खण्डित करके पार्श्ववर्ती राज्यों के साथ संयुक्त कर दिया। वहाँ पर बंगाली जनगोष्ठी का एक बृहत् अंश स्थानीय संस्कृति तथा ऐतिह्य के साथ मिलकर बंगाल के मूल जीवन-धारा

से विच्छिन्न हो गया। अभी एक ही नीति अनुसृत हो रहा है। उद्वास्तु नीति में ही पूँजीपति फासिष्टों का कुत्सित शोषण का भी मनोभाव पकड़ में आ गया। 1949 साल के अन्दर ही केन्द्रीय सरकार ने पश्चिमी पाकिस्तान से आगत पञ्जाबी उद्वास्तुओं का पूनर्वासिन सुसम्पन्न कर दिया। परन्तु पूर्वी पाकिस्तान से आगत उद्वास्तुओं के लिए सम्पूर्ण विपरीत नीति प्रयोग किया गया। बंगालियों की उद्वास्तु समस्या को अभी भी जिन्दा रखा गया है। केवल मात्र आत्मविश्वास, सामर्थ्य तथ्रा कठिन परिश्रम के उपर निर्भर करके विपुल संख्यक बंगाली उद्वास्तु त्रिपुरा, विहार, असम तथा उड़ीसा में अस्तित्त्व रक्षा के लिए संग्राम करता जा रहा है। 1981 साल में भी पश्चिम बंगाल के विभिन्न शहरो में रास्ते रास्ते पर असहाय सम्बलहीन यायावर की तरह आश्रय तथा जीविका की खोज में बंगाली उद्वास्तु गोष्ठी घुम फिर रहा है।

बंगाली जनगोष्ठी की मूल संख्या को घटाने के साथ ही उनके प्राणशक्ति को ध्वंस करने की अपचेष्टा सामिल है। मानसिक शक्ति विकाश का सबसे अधिक शक्तिशाली माध्यम हुआ भाषा-साहित्य। इसीलिए अपनी भाषा तथा संस्कृति से उत्खात करने की चेष्टा हुई मानसिक शोषण की एक विशेष पद्धति। समग्र पूर्व भारत में बंगाल की जनगोष्ठी के उपर यह सांस्कृतिक अन्याय अबाध रूप से चल रहा है। बंगाली जनगोष्ठी के जातीय चरित्र की नैतिकता तथा दृढ़ता को शिथिल करने के लिए राज्य के सर्वत्र शराब, जुआ, अफीम, सट्टा, गाँजा, चरस, पतितालय, केबरे इत्यादि दूषित घाव की तरह फैलाकर रखा गया है। इसी के साथ पूरे बंगाल में दूषित घाव की तरह फैला दी गयी है यौन आवेदनमूलक अपराध प्रवण चलच्चित्र तथा अश्लील साहित्य का विपुल प्रचार।

विषयसूची

बंगाल के कारखानों में तथा ग्रामीण उत्पादनक्षेत्रों में चरम पूँजी तान्त्रिक शोषण चला रहा है। सामन्ततान्त्रिक समाज व्यवस्था का सर्वशेष उच्छिष्ट के रूप में अभी भी जोतदारवर्ग गाँवों में उनका शोषण बरकरार रखा है। उन्हीं के बगल में पूँजीपति वर्ग तथा बेनामी विपुल सम्पत्ति के मालिक वर्ग अपना स्थान बना लिया है। जो सब भूमिहीन कर्षक साल भर जमीन पर खट कर जीवित रहना चाहता है उनका अस्तित्व तथा सामाजिकी निरापत्ता का सब कुछ निर्भर करता है जोतदारों के ख्याल-खुशियों पर। जोतदार किसी भी समय अपने हाथों से खेती करने के बहाने किसानों के हाथों से जमीन छीन ले सकता है।

जोतदारों के बगल में ही भूखे भेड़िये की तरह जाल विछाकर महाजन लोग बैठे रहते हैं। पश्चिम बंगाल के हर गाँव और कस्बे में ये लोग घूस चूके हैं। जहाँ पर वे लोग नहीं घूस पाए है,

वहाँ पर उनके दलाल लोग सक्रिय हो चूके हैं। सुदखोर महाजनों के साथ जमीन का कोई सम्पर्क नहीं रहता है। ये लोग गरीब किसानों को अधिक व्याज पर रूपए उधार देते हैं। खेती शुरू करने के पहले खेती का प्राथमिक सामग्रियाँ गरीब किसानों के पास नहीं होते हैं। इसी लिए वे लोग महाजनों के निकट से दादन लेने के लिए वाध्य होते हैं। महाजन किसानों को 100 रूपए दादन देकर व्याज समेत किसानों से 200 रूपये वसूलते है। लैकिन महाजन लोग 200 रूपए नगद नहीं लेते हैं। वे रूपए के बदले अनाज इकट्ठा करने के समय बहुत ही कम कीमत पर 200 रूपए का धान या आलु की खेती करनेवालों से आलु वसुलते हैं। इस व्यवस्था में किसान दो तरफा क्षतिग्रस्त होते हैं। प्रथमतः व्याज-सहित दोगुणा अर्थ वापस करना पड़ता है। और द्वितीयतः अनाज कटने के समय तत्कालीन बाजार दर पर ही परिशोध करनेवाले धान का परिमाण का हिसाव करना पड़ता था। लेकिन उस समय धान का बाजार-मूल्य सस्ता होता है। सारा मामला सुन्दर ढंग से सम्पन्न होता है

मध्यवर्ती दलालों के माध्यम से जो लोग अपना भी लभ्यांश रखता है। इस प्रकार से बंगाल के कर्षक सम्प्रदाय जो धान उत्पन्न करते हैं महाजनों का कर्ज चुकाने में ही उनके सम्पूर्ण उत्पादित खाद्य चार-पाँच महीने में ही समाप्त हो जाता है। शेष सात-आठ महीनों के लिए फिर से महाजनों के द्वारस्थ होना पड़ता है। क्योंकि शेष महीनों का खर्च चलाने के लिए किसी किसान के पास कुछ रहता ही नहीं है। पहले लोटा बरतन बन्धक देना शुरू करता है। उसके बाद खेती की जमीन महाजनों के हाथों में सौंपना पड़ता है। व्याज सहित किसानों का कर्ज बढ़ता ही जाता है, और ऐसी अवस्था में पहुँच जाती है जब कर्ज का परिमाण बन्धकी जमीन के विक्रयमूल्य के बराबर हो जाता है। इस अवस्था में महाजन किसान के हाथों से जमीन छीन लेता है। किसान भूमिहीन होकर परिवार समेत पहले गाँव और कस्बों में फिर शहरों के फुटपाथ पर भिखारी के रूप में भीड़ जमाते हैं।

विषयसूची

ग्रामीण अर्थनीति में पूँजीतान्त्रिक शोषण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हुआ दलालवर्ग। ये लोग बंगाल के किसानों की गरीबी तथा अभाव का अवसर लेकर किसानों को उत्पादन के क्षेत्र में क्रमशः पूँजीपति-निर्भरशील बनाने की कोशिश करते हैं। उदाहरणस्वरूप पश्चिम बंगाल में पूँजीपतियों का प्रधान कर्मकेन्द्र है कलकत्ता। पश्चिम बंगाल के विभिन्न अंशों में इन लोगों का शाखा केन्द्र बना हुआ है। उत्तरबंग में शिलिगुड़ि बीरभूम का साँईथिया, पुरुलिया जिला में पुरूलिया सदर तथा मिदनापुर शहर हुआ अ-बंगाली पूँजीपतियों का प्रधान कर्मकेन्द्र । इन कई केन्द्रों से दलालों का मारफत वे लोग पश्चिम बंगाल के समग्र ग्रामीण अर्थनीति को नियन्त्रित कर रहा है। किसान वर्ग केवल खेती की सामग्रियों के लिए ही नहीं, बल्कि उत्पादित फसल के विक्रय के लिए भी उन सभी दलालों के उपर असहाय रूप से निर्भरशील रहते हैं। ये दलालवर्ग इस अवसर को सम्पूर्ण रूप से उपयोग करते हैं। बहुत

बार अशिक्षित किसानों की अक्षरहीनता का अवसर लेकर कम रूपए देकर अधिक रूपए के कागज पर हस्ताक्षर करा लेता है।

भारत का समाज पूंजीतान्त्रिक समाज है। लेकिन इस की प्रशासनिक व्यवस्था वैश्यशासित गणतान्त्रिक है। भारतवर्ष की शासन व्यवस्था, समाज व्यवस्था, तथा अर्थनैतिक व्यवस्था को पूँजीपति वर्ग नियन्त्रित तथा परिचालित कर रहा है। वोट के माध्यम से राजनैतिक दलों के प्रतिनिधिगण जो सरकार बनाती है उस सरकार के सामने प्रशासन व्यवस्था में टिके रहने का प्रश्न ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में प्रकट होता है। उस कोशिश के दरम्यान राजनैतिक स्वार्थसिद्धि का उद्देश्य ही मुख्य स्थान रखने के कारण सरकार जो कानुन बनाती है उसमें पूँजीपतियों तथा शोषकवर्गों का ही स्वार्थ रक्षित होता है। कानुन की रक्षा के नाम पर शोषकों का ही स्वार्थ रक्षित होता है। कानुन

की सुरक्षा के नाम पर शोषकां की स्वार्थ रक्षा का दायित्व आमलातन्त्र तथा पुलिशों के उपर निर्भर करता है। राजनैतिक नेतावर्ग उस स्वार्थ का हिस्सेदार बनने के लिए मारामारि करने लगता है।

महाजनी शोषण, कलुषित राजनीति, दरिद्रता का अभिशाप, लम्बे समय से ढोते ढोते बंगाल के किसान वर्ग निश्चित ध्वंस के कंगार पर उतर चुके हैं। किसी भी कीमत पर इसके चंगुल से अपने को मुक्त करने का दायित्व आज बंगाल के किसानों को ही लेना पड़ेगा। लेकिन प्रश्न है इसके लिए क्या उपाय है? चरम रक्तक्षयी संग्राम का पथ ही क्या मुक्ति का एक मात्र दिशा निर्देशिका है? या कोई दूसरा उपाय भी है? में सोचता हूँ शुभ बुद्धि का विकास करके शक्ति सम्प्रयोग के पथ को अभी भी परिहार

किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति करना होगा।

प्रथमतः, अभी केन्द्रीय अर्थनीति व्यवस्था को वातिल करके विकेन्द्रित अर्थनीति (decentralised Economy) की व्यवस्था की शुरूआत करना तथा' ब्लाकभित्तिक अर्थनैतिक परिकल्पना का आश्रय लेकर ग्राम-उन्नयन को वढ़ावा देना होगा। औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी शोषण बन्द करने का यही एक अमोघ विधान है।

द्वितीयतः, अर्थनीति के सभी स्तरों पर समवाय व्यवस्था का प्रसार करना जिससे श्रमिक तथा किसानों का उत्पादित वस्तुओं के उपर खबरदारी करने का अवसर किसी को न मिले।

तृतीयतः, महाजनी शोषण बन्द करने के लिए अविलम्ब महाजनी दादन व्यवस्था को रद्द कर बैंको के मारफत किसानों को अग्रिम ऋण-दान की व्यवस्था चालु करना होगा।

चतुर्थतः सभी राज्यों में अस्थायी वासिन्दाओं को अर्थात फ्लोटिंग पपुलेशन को तुरन्त स्थायी अथवा settled होना पड़ेगा या उस राज्य को छोड़ना पड़ेगा। दोनों में से किसी एक को चूनना पड़ेगा।

अन्त में मैं एक ही बात करना चाहता हूँ, इतिहास की अग्रगति के चक्कों को कोई भी पीछे की ओर घुमा नहीं सकते हैं, भवितत्व के. दुर्वार स्रोत को भी कोई रोक कर नहीं रख सकता है। मनुष्यों की उन्नत शुभबुद्धि ही समस्त मानवीय समस्या का एकमात्र समाधान है।

विषयसूची

बंगाल के कई अञ्चलों के उन्नयन के सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य

समतट

प्राचीन बंगाल पाँच अञ्चलों में विभक्त था- राढ़, समतट, बंग, बरेन्द्र तता मिथिला। वर्तमान में मिथिला विहार के अन्तर्गत हो चुका है।

विषयसूची

बंगाल की खाड़ी का विशाल तटवर्ती इलाका जहाँ पर कोई पहाड़ नहीं है लेकिन जो अञ्चल पद्मा तथा भागीरथी नदियों के बालुमिश्रित दोआँश मिट्टी से निर्मित है और जिसके बीच असंख्य जलाशय, जो खाल-बिल और शाखानदियों से समृद्ध हैं, संस्कृत में उस अञ्चल को कहा जाता है समतट, कथ्य बंगला में कहते हैं बागड़ी। यह इलाका प्राकृतिक सम्पद और समृद्ध कृषि सम्पद से परिपूर्ण है। इसीलिए समतट को कहा जाता था सोणार बांगला (सोने का बंगाल)। इसी के कारण विख्यात औपन्यासिक वङ्किमचन्द्र ने लिखा था- सुजलां सुफलां मलयज शीतलां मातरम्।

स्वास्थ्य, सम्पद, वाचनिकता और सरलता से पूर्ण इस समतट के अधिवासी गण 'सोणार मायेर सोणार सन्तान'। फिर इसी

कारण से ही सोणार सन्तानेरा (सोने का पुत्रगण) सर्वदा अपराजेय जाति के रूप में विवेचित होते आ रहे है। विगत 5000 सालों से समतट के बंगाली लोग दुर्धर्ष तथा असम साहसिक नौ-विद्या में निपुण के रूप में परिचित होते आ रहें हैं। मुगल सम्राट अकबर बाध्य होकर इन लोगों के युद्ध-क्षमता को सम्मान देते थे। ऐसा है कि ब्रिटिश सरकार भी इनके युद्ध निपुणता से डरते थे। इसीलिए साम्प्रदायिक मनस्तत्त्व प्रयोग करके बंगाल को द्विखण्डित किया गया और इसी तरह से पूर्वी बंगाल तथा पश्चिम बंगाल के बीच एक विभाजक रेखा तैयार हो गयी।

भारत के अन्यान्य अञ्चलों से आगत पूँजीपति वर्ग बंगाल की छाती पर लगातार अपशासन तथा शोषण चलाते आ रहे हैं। समतट का प्रचुर कृषिज सम्पद, वन सम्पद, और जल सम्पद इन नव्य औपनिवेशवादी तथा साम्राज्यवादियों के द्वारा

निष्ठुरता के साथ शोषित होते आ रहे हैं। भारत के वैदेशिक मुद्रा का 36% इसी समतट के प्राकृतिक सम्पद से ही आता है। लेकिन दुःख की बात है कि इसका एक प्रतिशत भी स्थानीय इलाका के उन्नयन के लिए खर्च नहीं किए जाते हैं। समतट की ग्रामीण अर्थनीति बहिरागतों के द्वारा चरम भाव से शोषित हुई है। समतट की आबादी का 60% काफी गरीब हैं, वे अशिक्षित हैं, अपुष्टि और बेकारी का शिकार है। इस अञ्चल के 77% लोग केवलमात्र कृषि पर निर्भरशील है। इसीलिए वे लोग तीव्र गति से आर्थिक विनाश की ओर आगे बढ़ रहे हैं। मास्वादी लोगों ने समतट की इसी आर्थिक दुर्दशा तथा असहायता को ही उनकी स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयोग किया है।

भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के बाद समतट का जातीय सम्पद और श्रम सम्पद स्थानीय जनताओं के कल्याण के लिए

व्यवहृत नहीं किया गया है। बल्कि बहिरागतों की निहित स्वार्थपूर्तियों के लिए व्यवहृत हो रहा है। समतट के आर्थिक उन्नयन के लिए किसी भी सरकार ने कोई आर्थिक परिकल्पना का निर्माण नहीं किया। क्योंकि तथाकथित गरीबों के मसीहा लोग पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों के स्वार्थ को अनदेखी नहीं करना चाहते हैं। इसीलिए एक समय की अपराजेय शक्ति यह समतट, विशाल प्राकृतिक सम्पदों से समृद्ध होते हुए भी, पूँजीपति और कम्युनिष्टों के शोषण के चंगुल में फँसकर तीव्र गति से ध्वंस की ओर अग्रसर हो रही है।

हर साल काफी मात्रा में कृषि उत्पादन की सम्भावना रहते हुए भी यहाँ के लोग दो जून की रोटी की जुगाड़ में सिर पटकते हैं। लम्बी अवधि तक इनलोगों की गरीबी के कारण जनसंख्या के एक बहुत बड़ा हिस्सा रास्ते में भीख माँगने के लिए मजबूर होते

हैं। अपने दलगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए राजनीतिविदों ने गाँव के लोगों के लिए काम के बदले अनाज प्रकल्प चालु किया है। छात्र तथा युवाओं को भी इस प्रकल्प में सामिल किया जा रहा है। वास्तव में जन साधारण के एक निश्चित हिस्से को तथा गरीब वर्ग के लोगों के बेकार भत्ता के नाम पर, इज्म् के नाम पर विभ्रान्त किया जा रहा है। वे लोग आदमियों को शारीरिक तथा आर्थिक कामों में नियोजित करके रख रहा है, और इसी तरह से इतने दिन तक समाज में विप्लव की मानसिकता को रोककर रखा है।

समतट को इस प्रकार असामाजिक तथा अमानविक शक्ति के निकट समर्पण करने देना उचित नहीं है और इस प्रकार अवाञ्छनीय परिस्थिति को चलने देना भी उचित नहीं है। इन सबों के विरोध में समतट के लोगों को खड़ा होना पड़ेगा। महाप्रभु श्री चैतन्य, रवीन्द्रभाथ, वंङ्किमचन्द्र, मधुसुदन, वाघायतीन, और

सुभाषचन्द्र के इस समतट को और उसके गौरवमय एतिह्य तथा संस्कृति को इस अवलुप्ति के कगार पर धकेल देना उचित नहीं होगा। बंगाल का कोई भी आदमी इसे नहीं होने देना चाहेगा। इसीलिए समतट के लोगों को जगना पड़ेगा तथा वास्तव सत्य को समझना होगा, और आर्थिक स्वनिर्भरता अर्जन हेतु उन्हें स्वयं आगे बढ़कर आना पड़ेगा। उन्हें मिलित रूप से माँगे पेश करना पड़ेगा : समतट के हम चौदह करोड़ बंगाली एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेंगे। हमलोग सम्मिलित रूप से हमारे आशा-आकाङ्क्षाओं की पूर्ति करूँगा। हमें शोषण मुक्त बंगाल चाहिए। हमें चाहिए एक स्व-निर्भर सामाजिक-अथनैतिक अञ्चल जिसका नाम होगा 'बंगालीस्तान'।

1984, कलिकाता

बृहत्तर बंगला

प्राय 5000 साल पहले अष्ट्रिक, मंगोलियन, और निग्रो रक्त के संमिश्रण से उत्पन्न बंगाली जन समुदाय की सृष्टि हुई थी। उस समय बंगाल की भाषा संस्कृत थी। इसलिए बंगला भाषा की भी पथ निर्देशक भाषा हुई संस्कृत । प्राय 1200 वर्ष पहले बंगला भाषा में एक रूपान्तरण हुआ था। उस समय बंगाल कहने का मतलब था वर्तमान पश्चिम बंगाल, नेपाल का झाँपा जिला, विहार का पूर्वी हिस्सा, सम्पूर्ण बंगलादेश और वर्मा, मेघालय का समतल भाग, प्रागज्योतिषपुर का कुछ हिस्सा तथा असम का बरपेटा, कामरूप और नवगाँव। बृहत्तर बंगाल का यही इलाका था। आज बंगाली कहने पर दो प्रकार की अभिव्यक्तियाँ प्रकट होती है- भारतीय बंगाली और बंगला देशी बंगाली। इन दोनो के बीच एक संहतिकरण या मिश्रण अवश्य ही होना चाहिए।

भारत की स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय भारतीय नेताओं की मूर्खता के कारण ही बंगलादेश का निर्माण हुआ। असम और मेघालय को भी उनलोगों ने इसी तरह से विभाजित किया था। बृहत्तर बंगला आज निभिन्न रूप से विभाजित हो चूका है। और इस परिस्थिति को चलने देने का मतलब हुआ बंगाल के अधिवासियों की अनैक्यता । इसलिए इस समस्या का समाधान के लिए बंगाली जनसाधारणों के बीच एकता का होना अत्यन्त जरुरी है। भारतीय नेताओं की बेवकुफी के कारण ही लर्ड कर्जन के समय बंगाल का विभाजन हुआ था। 1912 में फिर से बंगाल एक हुआ था लेकिन असम तथा उड़ीसा का कुछ हिस्सा बंगाल के बाहर रह गया। उस समय बंगाल के नेताओं ने कोई विरोध नहीं किया। बंगाल के सभी हिस्सों को पुनः बृहत्तर बंगाल का एक सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल में लाकर एक बंगाल का निर्माण

करना होगा। बंगाल वासियों की एकता ही इस राजनैतिक विभाजन को बदल सकता है।

बृहत्तर बंगाल के पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम के लोग काले तथा उत्तर और उत्तर-पूर्व के लोग अधिक पीले होते है। इस बंगाल के मनुष्यों की शिरा-धमनियों में बह रही है एक ही रक्त-धारा।

पहले ही में ने कह चूका हूँ कि बंगाल या बृहत्तर बंगला या बंगालीस्तान का सामग्रिक अञ्चल क्या था। अब ये टुकड़े-टुकड़े और खण्डित बंगाल कैसे एक होगा? इस समग्र अञ्चल में एक ही प्रकार की सामाजिक-अथनैतिक बिषमता है। बंगलादेश में कोई सुसंगत उन्नयन परिकल्पना न रहने के कारण वहाँ की जनता अभाव-अभियोग और प्राकृतिक दुर्योग का शिकार हो रहा है। उदाहरण-स्वरूप अधिकांश स्थानों पर केवल एक ही फसल होता

है और बाकी समय जमीन खाली पड़ा रहता है। बंगलादेश की जनताओं के जीवनयापन के भाव को बढ़ाने के लिए एक सुसंगत परिकल्पना की जरूरत है। भारत का आर्थिक मान जिस प्रकार बढ़ेगा, उसी के साथ बंगलादेश में भी अधिकतर द्रुतता के साथ उसी प्रकार होना चाहिए। भारत, बंगलादेश, पश्चिमबंगाल तथा त्रिपुरा में आर्थिक स्वयम्भरता लाना ही पड़ेगा।

अब प्रश्न हुआ, क्या बंगलादेश और त्रिपुरा के मनुष्यों को पश्चिम बंगाल की बीच ले आना ही पड़ेगा? नहीं, मामला ऐसा नहीं है। असली बात यह है कि त्रिपुरा और बंगालदेश के मनुष्यों की आर्थिक उन्नति के लिए काम करना जिससे इन लोगों की दीर्घस्थायी सामाजिक-अर्थनैतिक प्रगति सुनिश्चित किया जा सके। बंगलादेश में प्रयोजन है एक गठनमूलक सामाजिक-अर्थनैतिक-आन्दोलन। इसके अन्दर कारीगरी शिक्षा, खेती की उन्नति और

विषयसूची

उस प्रकार का आन्दोलन जो मनुष्यों को भावजड़ता (dogma), कुसंस्कार इत्यादि से दूर ले जाएगा। सभी धर्मीय मतबादें ही इन सबों को प्रोत्साहित करता है। शिक्षा कभी भी भावजड़ता प्रचार का वाहन नहीं हो सकता, शिक्षा सभी प्रकार भावजड़ताओं से मुक्त रहेगा। इन्दोनेशिया के बाद ही बंगलादेश की जनता सह्य की सीमा में पहुँच चुके हैं, और विक्षोभ की आग में फुफकार दे रहा है। चूँकि त्रिपुरा और बंगलादेश में अधिक विषमता है, इसलिए इनलोगों की प्रगति की बातें अधिक सोचना पड़ेगा। धुबड़ी, बरपेटा, गोवालपाड़ा इत्यादि बंगाली अध्युषित जिलाओं को छोड़कर असम की अर्थनैतिक उन्नति कुछ हद तक सन्तोषजनक है।

बंगलादेश की उन्नति के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? बंगलादेश का मुख्य कच्चामाल हुआ

कच्चा जूट और चमड़ा। जूट के विकल्प का उपयुक्त विकास करना ही पड़ेगा। खास करके ढाका जिला के नारायणगञ्ज ब्लक जो जूट का बहुत बड़ा उत्पादन केन्द्र है। इसके अलावे भी मिश्रित खेती तथा पर्यायक्रम से (Crop-rotation) खेती की व्यवस्था करके जमीनों का सर्वाधिक उपयोग करना पड़ेगा। बंगलादेश में जो प्रतिकुलताएँ हैं उसमें से शिक्षा व्यवस्था, प्राकृतिक दुर्योग, अपूष्टि और आर्थिक उन्नति का अभाव है।

त्रिपुरा में दो प्रकार धान की खेती होती है- आउस तथा बोरो। असम की दो प्रधान नदी उपत्यकाएँ हैं- ब्रह्मपुत्र और बराक उपत्यका । बराक उपत्यका के करीमगञ्ज ब्लाक में बाँस का मान बहुत अच्छा है, इसे कागज शिल्प में व्यवहार करना चाहिए। इन इलाकों में मीठा आलु और सुगर बीट की भी खेती अच्छी होगी। यहाँ पर साल में चार फसल का उत्पादन होना चाहिए। अनानास

से परिधान के लिए कृत्रिम तन्तुएँ, दवाइयाँ, जैम-जैली प्रस्तुत करना चाहिए। केले के पौधे तथा केलों के पत्ते इत्यादि को भी काम में उपयोग करना चाहिए। केलों के पौधे को जलाकर सोडियम तथा सोडियम नाइट्रेट संग्रह करके साबुन शिल्प में व्यवहार करना चाहिए। असम तथा त्रिपुरा में कटहलें बहुत अच्छे होते हैं। इसके साथ शहद और प्राकृतिक पैराफिन का मोम तैयार हो सकता है।

त्रिपुरा की मिट्टी लाल है। इस मिट्टी में सिलेट के छोटे संतरें काजुबादाम तथा पपीते उत्पन्न हो सकते हैं। छोटे-छोटे शिल्पों का भी निर्माण होना चाहिए। त्रिपुरा के अमरपुर ब्लॉक प्राकृतिक रबर के साथ-साथ कृत्रिम रबर के उत्पादन को भी उत्साहित करना पड़ेगा। एक ही बात पानीसागर ब्लाक के जम्पुई पार्वत्य अञ्चल के लिए भी प्रयोग होगा। चीनाबादाम, अन्यान्य प्रकार के बादाम

विषयसूची

तथा सफेद तिल भी उत्पन्न हो सकते हैं। इस अञ्चल के तेल और प्राकृतिक गैस के व्यवहार की भी काफी सम्भावनाएँ हैं, और एक ही साथ में सौरशक्ति का भी उत्पादन करना होगा। सौरशक्ति हुई एक अन्यतम स्थायी शक्ति का स्रोत जो कभी समाप्त नहीं होगा। सौरशक्ति को बैटरी के अन्दर भरकर सौर-बैटरी तैयार की जा सकती है। त्रिपुरा को शक्ति स्रोत के लिए किसी बाहरी स्रोत के उपर क्यों निर्भर करना होगा ?

3 जनवरी, 1989, आनन्दनगर

गोर्खालैंड

विषयसूची

गोर्खालैंड आन्दोलन जो पश्चिम बंगाल के उत्तरांश के कुछ जिलों को माँग कर रहे हैं, वह आज चरम अवस्था में पहुँच चुकी हैं। गोर्खा, जो लोग राज्य के बाहर से आये हैं, वे लोग भारत के नागरिकत्व का सुयोग लेकर अभी एक पृथक राज्य की माँग कर रहे हैं। वे लोग नियमित रूप से आन्दोलन कर रहे हैं, हड़ताल का आह्वान कर रहा है, जातीय सम्पद को लुट रहा है तथा जला दे रहा है, मनुष्य की हत्या कर रहा है, और इसी प्रकार से वे लोग वहाँ की कानून व्यवस्था को अचला अवस्था में ले आया है। वास्तब में आँख के बदले आँख इस पैशाचिक आह्वान में आज देश का वह स्थान राजनैतिक स्लोगन से मुखरित हो रहा है। इसीलिए पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिला में कानुन तथा प्रशासन का प्राय कोई अस्तित्व ही नहीं है।

पश्चिम बंगाल की सरकार इस विच्छिन्नतावादी आन्दोलन को नियन्त्रण करने में पूर्णतः व्यर्थ है। इस सरकार का एकमात्र काम है इस आन्दोलन को केन्द्रीय सरकार के विरोध में ले जाना जिससे निर्वाचन में उनलोगों को सुविधा मिले। कम्युनिष्टों का लक्ष्य जो भी हो, पश्चिम बंगाल की जनता उनके इस स्वार्थपूर्ति के प्रयास को समझ चूके हैं। पश्चिम बंगाल के कानुन माननेवाले नागरिक वर्ग इस धर्षण, खून, पुलिसों की गोलीबारियाँ और इतना बड़ा सन्त्रास जो वर्तमान समय में भी संघटित होता जा रहा है, इस मामले में काफी उद्विग्न हैं।

वस्तुतः गोर्खालैंड की माँग एक विशेष जाति-गोष्ठी का कोई पृथक राजनैतिक आन्दोलन नहीं है, यह भारत के अविभक्त कम्युनिष्ट पार्टी तथा उनके दलालों के द्वारा प्राथमिक रूप से सृष्ट एक कृत्रिम मामला है। 1977 ई० में मार्क्सवादियों ने गोर्खाओं के

बीच एक आवेग पैदा कर उन लोगों के द्वारा गोर्खाओं का स्वशासन तथा गोर्खाली भाषा की स्वीकृति के नाम पर इस माँग को तीब्र रूप दे डाला था। उनलोगों का एकमात्र उद्देश्य था राजनैतिक क्षमता हासिल करना। वे निर्बोध था संकीर्ण विचारधारा वाले राजनैतिक नेताएँ उस समय समझ नही सके कि उन्हीं के द्वारा सृष्ट वह माँगे तथा आन्दोलन एक दिन उन्हों लोगों

के उपर भस्मासुर बनकर चोट करेगा। विस्मयकर रूप से वही कम्युनिष्ट लोग अपने द्वारा रोपित विषवृक्ष को दूसरों के उपर चढ़ाकर अपने कृतकर्म के दाय को हटाने की कोशिश कर रहे हैं। उनके स्वभावगत धूर्तता के सहारे वे लोग अभी भी पश्चिम बंगाल की जनता को भूल समझाने का प्रयास कर रहा है कि ये सब केन्द्रीय सरकार की मामले हैं। और वे लोग ही इस विच्छिन्नतावादी आन्दोलन के उत्साहदाता हैं।

विषयसूची

आज समय आ गया है कम्युनिष्ट पार्टी के इतिहास के विभिन्न समयों में कौन-कौन से घृणित काम किया है उसके और उन्हीं लोगों के द्वारा सृष्ट गोर्खालैण्ड आन्दोलन का मुखोटा खोल देना। 1947 ई० में साम्प्रदायिक तथा विच्छिन्नतावादी मुसलिम लीग के साथ हाथ मिलाकर यही कम्युनिस्ट पार्टी बंगाल विभाजन का स्लोगन दिया था। उसी समय वे लोग गोर्खाओं के लिए अलग भूखण्ड का भी स्लोगन दिया था। वास्तव में गोर्खालैंड शब्द 40 साल पुराना है और कम्युनिस्ट पार्टी ने माँग की थी कि सिक्किम, नेपाल का अंश विशेष और उत्तरबंग का दार्जिलिंग जिला के साथ कई जिलों को लेकर गोर्खालैंड बनाया जाय। यह होगा गोर्खाओं की अपनी वासभूमि। इस गोर्खालैड की माँग के माध्यम से वास्तव में गोर्खाओं के बीच एक मजबूत राजनैतिक आधार तैयार करना चाहता था लेकिन उस समय वह आन्दोलन कामयाब नहीं हुआ।

1977 ई० में कम्युनिष्ट लोग जब क्षमता में आये, मार्किन कम्युनिष्ट पार्टी ने इसी गोर्खालैंड की इसी पुरानी माँग को पुनर्जीवित किया, जो आज राज्य के उत्तरांश में एक चरम अव्यवस्था का रूप ले लिया है, विश्रृङ्खला तथा रक्तस्नान का स्थान बन चुका है। निरीह शान्तिप्रिय बंगाली आदिवासी जो लोग दार्जिलिंग में रहते थे अपने वासगृहों को छोड़कर भाग गये, और उद्वास्तु बनकर कुचविहार, जलपाइगुड़ि आदि जिलों में रह रहे हैं। इसी तरह से बंगाली सम्प्रदाय अपनी ही राज्य में उद्वास्तु में परिणत हो चूके है। लेकिन बहिरागत गोर्खालोग ही माँग कर रहे हैं कि बंगाली लोग दार्जिलिंग छोड़कर चले जाय।

दार्जिलिंग की मूल अधिवासी हूई लेपचा तथा भूटिया जो लोग कोच जाति के आन्तर्गत आते हैं। ये कोच सम्प्रदाय आदि

बंगाली है। कोच जातिभुक्त लोगों का एक अंश सिक्किम-भूटान में संकोच नदी के दोनों किनारे पर रहने लगा था, और उन्हीं लोगों का एक हिस्सा बरेन्द्र भूमि से आकर बंगाल के उत्तरांश के और उत्तर में पर्वत संकुल इलाकों में वसवास शुरू किया था। लेपचा भूटिया सम्प्रदाय हर समय बंगाली जीवन और संस्कृति के मूलस्त्रोत के साथ सम्पर्कित रहा है। दूसरी और गोर्खालोग सम्पूर्णतः बहिरागत है।

प्राय दो सौ वर्ष पहले बंगाल के बाहर से गोर्खा जन समुदाय जीविका की खोज में आकर दार्जिलिंग के पर्वताञ्चलों में रहना शुरू किया था। 1872 की जनगणना के रिपोर्ट के अनुसार उस समय उनलोगों की संख्या इतना ही नगण्य था कि उस रिपोर्ट में उन्हें रेकर्ड में सामिल ही नहीं किया गया था। केवल इतना ही उल्लेख किया गया था कि वे लोग बाहर से आए हुए जनगोष्ठी है।

विषयसूची

उस अञ्चल के उच्चतर पार्वत्य इलाकों में लेपचा और भूटिया लोग वास करते थे। और समतल भाग में रहने थे बंगाली लोग।

इसके अलावे जो लोग नेपाली कहकर अपना परिचय व्यक्त करते हैं और दार्जिलिंग इलाके में वसवास करते हैं, सन्गेगों के एक बहुत बड़ा हिस्सा गोर्खा नहीं है। नेपालियों में पन्द्रह गोष्ठियाँ होते हैं जैसे-तामांग, गुरूंग, नेवारी इत्यादि दार्जिलिं अञ्चल में वास करते हैं। वे लोग गोर्खा नहीं है और उनके भाषा भी गोर्खाली नहीं है। वास्तव में गोर्खाली बहुत ही छोटी एक गोष्ठी की उपभाषा है। मामला इस प्रकार है- जिस प्रकार भारतीय भाषा कहकर कोई भाषा को नहीं कह सकते हैं, क्योंकि भारत में कुल मिला कर 323 मुख्य या गौण भाषाएँ और उपभाषाएँ हैं, और ये सभी भारतीय भाषाएँ हैं। ठीक उसी प्रकार नेपाल में प्राय बत्तीस भाषाएँ और उपभाषाएँ हैं और उन. सभी भाषाओं में प्रत्येक भाषा

ही नेपाली भाषा है। उस हिसाब से गोर्खाली भाषा नेपाल का राजभाषा भी नहीं है। ये गोर्खाएँ एक छोटी सी उपजाति सम्प्रदाय होकर भी उनकी क्षुद्र स्वार्थ पूर्ति के लिए गोर्खालैंड नाम रखा था, और इसी प्रकार से दार्जिलिं पर्वताञ्चल में रहने वाले सरल तथा निरीह मनुष्यों को गलत तरीके से समझाना शुरू किया।

इस गोर्खालैण्ड आन्दोलन के पीछे कोई ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा आर्थिक यौक्तिकता नहीं है। लेपचा तथा भूटिया जो लोग वहाँ के सन्तान भूमिपुत्र हैं, वे लोग गोर्खाओं की तुलना में संख्या में अधिक हैं। इसीलिए जो लोग आज गोर्खालैंड गोर्खालैंड करके चिल्ला रहे हैं, वे लोग केवल मात्र उनके हाथों को कलङ्कित करके एक विपज्जनक राजनैतिक खेल में मतवाले हो चूके हैं। जिस प्रकार गोर्खाली भाषा संख्यालघुओं की भाषा हैं और उसे बृहदंश के उपर किसी भी रूप से चढ़ाया नहीं जा सकता

है, ठीक उसी प्रकार दार्जिलिं जिला में बसनेवालों में सबसे छोटी गोष्ठी गोर्खाओं को उस इलाके में दूसरों के द्वारा उसकायी गई राजनीति में प्रश्रय देना उचित नहीं है। लेकिन पीछले 40 सालों से यही राजनीति लालित पालित होने दिया जा रहा है। इस गोर्खालैंड के पीछे गोर्खा लोग ही हैं। ये गोर्खाएँ सिक्किम, भूटान और असम से उठकर इसी दार्जिलिंग जिला में एकत्रित हुए थे। पश्चिम बंगाल के वामफ्रण्ट सरकार ही जंगलों को साफ कर वहाँ पर उन्हें बसाये थे। और गोर्खाली भाषा को राज्य की भाषाओं में एक भाषा के रूप में स्वीकृति दिए थे। इसीलिए मार्किष्ट लोग ही उनलोगों को अपने वासभूमि के लिए उसकाया था। बंगाल के मार्किष्टों का विपज्जनक तथा घृणित राजनीति का यह मात्र एक नमुना है।

अब देखा जाय इस मामले में भारत का संविधान क्या कहता है ? अलिखित की तुलना में लिखित संविधान मनुष्यों के

विषयसूची

लिए अपेक्षाकृत अच्छा आश्रय है। भारत, फ्रान्स, तथा अमेरिका का संविधान लिखित है लेकिन इंगलैंड का संविधान अलिखित है, यद्यपि उनके साथ वहाँ के लोग अच्छी तरह से परिचित हैं। भारत के संविधान के अनुसार निश्चित उपजाति युक्त इलाकाएँ विशेष संविधानिक अधिकार प्राप्त है। अर्थात जहाँ पर गैर उपजाति के द्वारा उपजाति के लोग परिचालित होने की सम्भावनाएँ हैं, वही के उपजाति समुदाय इस संविधानिक अधिकार के अन्तर्गत आते हैं इस प्रकार कई उपजातिओं का उदाहरण हुआ-गारो, खासिया, कछारी इत्यादि जो लोग असम तथा मिजोरम के कुछ जिलों में वास करते हैं। भारतीय संविधान की यह व्यवस्था केवल मात्र उपजातिओं के लिए ही है, कोई दूसरे शुद्र गोष्ठियों के लिए नहीं। और यह सुविधा केवल मात्र पूर्वोत्तर भारत के क्षेत्रों के लिए ही प्रयोज्य है। दूसरे कोई अञ्चलों के लिए नहीं है। जो भी हो लेकिन इस प्रकार का संविधानिक अधिकार किसी भी देश में थोड़ी से समय के लिए ही प्रचलित रहना चाहिए।

विषयसूची

त्रिपुरा इस सांविधानिक सुविधा के अन्तर्भुक्त नहीं है। फिर भी कम्युनिष्ट पार्टी उस राज्य में इसका अपव्यवहार का अवसर लेना नहीं छोड़ा है। वे लोग वहाँ पर क्षमता का अपव्यवहार करके संख्या के बल पर विचार सभा में उपजाति पार्वत्य काउन्सिल बिल अनुमोदन करा लिया था। वस्तुतः यह कानुन भारत के संविधान विरोधी है, और भारतीय एकता के प्रतिकुल भी है।

बंगाल में भी उसी तरह दार्जिलिंग में आज का गोर्खा हिल काउन्सिल संविधान विरोधी है, क्योंकि गोर्खाएँ उपजातिभूक्त नहीं है। स्वार्थी कम्युनिष्ट नेताओं और गोर्खा प्रधानों के बीच यह समझौता या चुक्ति केवल कानुन विरोधी ही नहीं, असंविधानिक भी है। संविधान के अनुसार गोर्खाए कभी भी गोर्खाहिल काउन्सिल कानून में इसके अधिकारयुक्त नहीं हो सकता हैं। जिन

लोगों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किया था उनलोगों ने विश्वभ्रातृत्व के प्रति भी विश्वासघात किया है। इसीलिए सरकार और गोर्खाओं के बीच की यह समझौता उपजाति सम्बन्धित नहीं हो सकता है। और इसी दृष्टिकोण से ही यह कानुन विरोधी तथा संविधान विरोधी है। अगर सुप्रीम कोर्ट में इसका उचित विचार हो, तो वहाँ पर भी यह नहीं टिकेगा।

30 अगस्त, 1988, कलकत्ता

बंगाल के लिए कई उपयोगी उन्नयन कार्यक्रमें

विषयसूची

बंगाल के सामाजिक अर्थनैतिक सम्भावनाओं को क्रियान्वित करके उन्नयन के लिए बहुत कुछ करना है; लेकिन उसे करने के लिए तुमलोगों को स्थानीय इलाका तथा वहाँ की जनताओं के सम्बन्ध में अच्छी तरह से समझ लेना होगा। और उसी के साथ उस वास्तव ज्ञान को वैवहारिक रूप में कार्यान्वित करना होगा। बंगाल के प्रधान नगरें तथा शहरें क्या-क्या है? वहाँ पर दैनन्दिन पानीय जल की क्या व्यवस्था है? इसका उत्स-स्त्रोत मिट्टी के नीचे का जल है या बरसात का जल है? क्या इन शहरों के अधिवासियों में स्वास्थ्य की कोई समस्याएँ है? यहाँ की जनताओं का आय का स्त्रोत ही क्या है? क्या वह कृषि निर्भरशील है या शिल्प निर्भरशील या व्यवसाय पर निर्भरशील हैं? इस मामले में वीरभूम जिला, बाँकुड़ा जिला तथा दीघा अञ्चल की परिस्थितियों पर नजर डाल कर देखा जाय

वीरभूम जिला के उत्तर से दक्षिण में खास करके तारापीठ इलाका जहाँ पर ऊँची जमीन तथा निचली जमीन दोनों ही प्रकार की जमीनें हैं। लावपुर के निकट नानुर व्लक में ऊँची जमीन और मयुरेश्वर ब्लाक में नीची जमीन। इस ऊँची और नीची जमीनों की मुख्य विशिष्टता है कि दोनों जगहों पर वास करनेवाले मनुष्यों की ऊँचाई एक समान नहीं होगा। ऊँची इलाका में बसने वाले मनुष्यों की लम्बाई नीची इलाका में बसने वालों की तुलना में अधिक होती है। ठीक उसी प्रकार वीरभूम जिला के पूर्व में बसने वालों की लम्बाई पश्चिम में बसनेवालों की तुलना में अधिक होती है। वीरभूम जिला का पश्चिमांश पूर्वांश की तुलना में अधिक उन्नत हैं। ऊँची इलाकों में बसनेवाले लोग चर्मरोग से ज्यादे पीड़ित रहते है। 1856 ई० में सिउड़ी, रामपुरहाट, दुमका, देवघर और मुर्शिदादावाद जिला का कुछ अंश लेकर वीरभूम जिला तैयार हुआ था।

विषयसूची

प्राय 1200 वर्ष पहले उपबंग या श्री भूमि का पत्तन हुआ था जिसके अन्दर सिलेट, नोवाखाली, चट्टल, त्रिपुरा इत्यादि थे। पद्मा नदी की पूर्वीतट पर तथा मेघना नदी की पश्चिमी तट पर बंग या बराक था। पद्मा नदी के दक्षिण में था बरेन्द्रभूमि अञ्चल। बंगाल की मुख्य इलाके थी - राढ़, समतट, बंग, बरेन्द्र और मिथिला। सामुहिक रूप से इन पाँच इलाकों को 'पञ्चगौड़' यानी 'मीठा देश' कहा जाता था। 'पञ्च' शब्द का अर्थ होता है 'पाँच' और 'गौड़' शब्द का अर्थ हुआ 'मीठा'।

चैतन्यदेव ने जब त्रिपुरा के उपजातियों को बैष्णव धर्म में दीक्षित किया तब उनलोगों ने 'देव वर्मन उपाधि' ग्रहण की – 'देव' आया है चैतन्य देव से और 'वर्मन' शब्द का अर्थ हुआ 'उपजाति'। उत्तर त्रिपुरा के सलोमा प्रखण्ड की शिल्प संभावनाएँ किस प्रकार है? इस इलाके में नदी तथा छोटी नदियों की संख्या ही क्या है?

विषयसूची

प्रखण्ड का मुख्यालय है कैलाशहर। जल का प्रधान स्रोत है लंगतराई पहाड़ से निकली हुई धलई नदी। इसी लिए बरसात में नदी में काफी पानी रहता है लेकिन गरमी में पानी का अभाव हो जाता है।

अब दीघा के बारे में कुछ कहा जाय। पहले दीघा का नाम था दीर्घका-दीर्घ का अर्थ हुआ 'लम्वाई में बड़ा' और 'क' का अर्थ है 'भूमि'। इसी तरह से बना है आज का दीघा। दीघा के निकट जो राम नगर है उसका नाम करण हुआ है मिदनापुर जिला का शेष महाराजा रामनारायण हाता के नामानुसार से। उस समय जिला की राजधानी थी काँथी। राम नगर एकबार जबरदस्त आँधी के चक्कर में पड़ा था, उस समय अंग्रेजों ने जिला का मुख्यालय काँथी में स्थानान्तरित कर दिया था। लेकिन उनलोगों ने काँथी का नाम बदलकर कण्टाई कर दिया क्योंकि प्राय उसी तरह के नाम का

और एक जिला का मुख्यालय का नाम था (कॉदि)। दीघा सहित चारों और की इलाका प्रधानत : बौद्धमतावलम्बी था।

दीघा का समुद्रतट दुनिया में सबसे अधिक चौड़ी है। समग्र दीघा अञ्चल में समुद्र उपकुल के बराबर सामुद्रिक झाऊ इत्यादि लगाकर बृहत्रूप से वन सर्जन करना होगा। जिससे सामुद्रिक तुफान को रोका जा सकेगा। यहाँ पर नारियल की खेती तो अच्छी ही होती है। अगर तुम गाड़ी चढ़कर दीघा के समुद्र तटीय रास्ता को पकड़ कर पाँच मील जाओगे तो कुछ वनाञ्चल दिखाई देंगे। फिर भी समुद्र के आग्रासन को रोकने के लिए दीघा के समुद्र तट पर उस प्रकार से पत्थरों की दीवारे नही बनायी गयी है। आनुमानिक हर सात साल में एकवार भयंकर तुफान आकर पेड़ पौधों को धो पौंछ कर ले चला जाता है, जिसके फल स्वरूप पेड़ें अधिक लम्बा हो ही नही पाते हैं। अगर हर साल नियमित रूप से तटों के, किनारे

पेड़ें न लगाया जाय और पत्थरों की दीवारें न बनाया जाय तो भूमि क्षय और भी बढ़ जाएगा, तथा आँधी की तीव्रता रोकने का कोई उपाय ही नही रह जाएगा।

रेलवे लाईन को भोगराई तक ले जाना पड़ेगा जहाँ पर सुवर्णरखा नदी समुद्र में गिरती है। वर्त्तमान में भोगराई उड़ीसा के अन्तर्गत है। उस स्थान पर या दीघा के अन्य सुविधाजनक स्थान पर बन्दरगाह का निर्माण करना पड़ेगा जहाँ से नारियल, मछली, पान, सुपारी उच्च मान का कांजुबादाम इत्यादि निर्यात किया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप इस अञ्चल का सामाजिक अर्थनैतिक उन्नयन में तेजी आएगी। पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए दीघा के समुद्रतट बराबर मेरिन ड्राइव तैयार करना होगा और इसका उचित सौन्दर्याकरण करना होगा।

अब हमारे बाँकुड़ा जिला के सम्बन्ध में आलोचना किया जाय। बाँकुड़ा जिला को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम हुआ इन्दास प्रखण्ड छोड़कर विष्णुपुर अनुमण्डल। इस इलाके की जलधारण क्षमता अधिक नहीं है। जमीनें एकदम समतल भी नहीं है और तरंगायित भी नहीं है। आमन धान अच्छा होता है लेकिन आउस तथा बोरो धान अच्छा नहीं होता है।

दूसरा हुआ इन्दास प्रखण्ड। वहाँ की जमीने समतल होते हुए भी मिट्टी की जलधारण क्षमता कम है। यहाँ की मिट्टियाँ सीमान्तवर्ती बर्द्धमान जिला की तरह है। इसीलिए इस प्रखण्ड की कृषि परिकल्पना बर्द्धमान जिला के साथ सामुहिक रूप से करना होगा। इस इलाके के लोगों की प्रधान जीविका खेती है।

तीसरा है खातरा महकुमा (अनुमण्डल) तथा जिले का शेषांश। यहाँ की जमीने तरंगायित है तथा इधर-उधर फैली हुई है झोपड़ियाँ। बहुत जल्दी पानी नीचे चला जाता है और अन्यान्य हिस्से की तुलना में मिट्टी की जलधारण क्षमता और भी कम है। इस इलाके में उपयुक्त सिंचाई-व्यवस्था की जरुरत है। यहाँ की कृषि संभावनाएँ वहुत कम होने पर भी यह इलाका प्राकृतिक सम्पद से समृद्ध है। उदाहरणस्वरूप इस इलाके की दक्षिणांश में कोयले का विशाल भण्डार है। अबरख के रूप में तम्बा भी मिलेंगे। इसके संलग्न पुरुलिया जिला के मानभूम इलाका में भी तम्बा का भण्डार है। पुरुलिया और बाँकुड़ा के संयोगकारी रास्ता के दक्षिण में नानान प्रकार के खनिज सम्पद हैं। इन सब खनिज सम्पदों के उपर निर्भरशील विभिन्न प्रकार का शिल्प का निर्माण करने के लिए उपयुक्त परिकल्पनाएँ तैयार करना होगा।

बाँकुड़ा जिला की मिट्टी फल की खेती के लिए बहुत अच्छी है। इसलिए इससे भी सम्बन्धित शिल्प के लिए भी उपयुक्त रूप से परिकलपनाएँ बनाकर उसे कार्यान्वित करना होगा। जैसे अंगुर, मीठी नींबू, पपीते, अमरूद इत्यादि यहाँ पर अच्छा होता है। तालडेंगरा प्रखण्ड के चारों और की मिट्टियाँ लौकी उत्पादन के लिए काफी उपयोगी है। इन सबों की स्मरण रखकर उपयुक्त उन्नयन परिकल्पनाओं की रचना करनी होगी।

आराकान पर्वतमालाओं के बराबर स्थानीय मनुष्यों की भाषा बंगला है, कवि सैयद महम्मद आलावल बंगला देश के अधिवासी थे। उन्होंने ही इस स्थान पर बंगला भाषा का प्रवर्त्तन किया था।

अभी हाबड़ा जिला में रेशम शिल्प विलकुल अच्छी अवस्था में नहीं है। अधिकांश रेशम मालदा जिला से आती है। इस जिला में आम को लेकर कोई शिल्प का निर्माण नहीं हुआ है। इस जिला के आमता प्रखण्ड में एक बृहत उपजाऊ इलाका है जो धान की खेती के लिए काफी उपयुक्त है। आमता अनुमण्डल में कोई नया बृहत या मध्य आकार का शिल्प का निर्माण हो सकता है, क्या ? इस इलाके की नदियाँ कैसी है? क्या पानी के कोई चिरस्थायी स्रोत है ? इस प्रखण्ड का सामग्रिक सामाजिक अर्थनैतिक परिस्थिति क्या है? इन सारा मामलों पर विचार करके ही उचित परिकल्पना का निर्माण करना होगा।

उड़ीसा के केउन्झड़ इलाके के बादामपहाड़ में कच्चा लोहा (Iron-ore) का भण्डार है। पहले उस इलाके के महाराजा ने इस आकरिक लोहा के परिवहन के लिए एक नेरो गेज (Narrow

विषयसूची

Gaudge) लाइन का निर्माण करा दिया था। आज टाटा कम्पनी अभी भी आकरिक लोहा ढोने के लिए उस रेलवे लाइन का व्यवहार कर रहा है। इस इलाके में काफी बाबुई घास का जंगल है जिससे लोग रस्सियाँ तैयार करते है। इस बबुई घास को कागज शिल्प में भी व्यवहार किया जा सकेगा। भञ्जभूम के महतो सम्प्रदाय की मातृभाषा को अवदमित किया जा रहा है।

किसी अञ्चल के शिल्प संभावनाओं को विकशित करने के लिए तुमलोगों को जिन सब विषयों पर विचार करना होगा वे है- शक्ति-उत्पादन, जलाधार का निर्माण, जनताओं की साधारण समस्याएँ, जमीन और मिट्टी की अवस्था, मिश्रित खेती की सम्भावनाएँ, कच्चामाल की सहज लभ्यता, स्थानीय शिल्प का निर्माण।

10 फरवरी 1989, कलकत्ता

बंगाल का मूल अधिवासी

बंगालीस्तान का मूल अधिवासी हुआ उत्तरबंग का राजवंशी, राढ़ का महतो इत्यादि, चट्टग्राम तथा त्रिपुरा के चाकमा, मिदनापुर और चौबीस परगना के माहिष्य, बीरभूम का सद्गोप, यशोर तथा खुलना का नमःशुद्र और बर्धमान का उग्रक्षत्रिय। इन आदि बंगालियों को कहना चाहिए जात बंगाली।

ये जनसमुदाय आदि बंगाली है, इसका प्रमाण है कि उनके वासस्थानों के संलग्न गाँवों में और वही सब जगहों पर वे लोग गोष्ठी बद्धरूप से रहते हैं। ये मूल अधिवासी गाँवों में एक साथ रहते हैं। वे एक-दो विच्छिन्न गाँवों में नहीं रहते हैं। इन जन समुदायों के कुछ लोग दूरवर्ती गाँवों में भी नहीं रहते है। इससे यही

प्रमाणित होता है कि स्थानीय मनुष्य निर्दिष्ट इलाकों में संघबद्ध होकर रहते हैं। इसके विपरीत ब्राह्मण तथा कायस्थों को भी कुछ-कुछ गाँवों में मिलेगा और उनकी संख्याएँ भी एक-एक गाँव में अधिक नहीं होती हैं। इसीलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वे लोग बंगाल के मूल अधिवासी है। वे लोग बंगाल के विभिन्न अंशों से आए हैं या वे लोग बंगाल के बाहर से आए हैं।

तुम जब कभी बंगाल के कोई उन्नयन परिकल्पना बनाओगे तुम्हें जात बांगाली के स्वार्थ की रक्षा करनी होगी, क्योंकि उन्ही लोगों की संख्या अधिक हैं। वेलोग उपकृत होने पर ही बंगालीस्तान उपकृत होगा।

बंगाली जनसमुदाय का मूल नाम था 'कैवर्त्त' जिसका अर्थ हुआ 'मछली पकड़ने वाला सम्प्रदाय' । माहातो नाम आया है 'महात्मा' शब्द से। ये पाँच मूल अधिवासीगण tribal यानि आदिवासी नहीं है।

बंगाल में छोटे-छोटे बहुत सारे ऐसी गोष्ठियाँ हैं जो लोग अ-संस्कृत भाषा में बातें करते हैं। उदाहरण स्वरूप इन्दो-टिबेटान या इस प्रकार कोई अन्यान्य भाषा। जो लोग अ-संस्कृत भाषा में बातें करते हैं उन्हे ही आदिवासी कहा जाता है। और जात बंगाली लोग संस्कृतज भाषा में बातें करते हैं।

मानव समाज एक और अविभाज्य है। इसीलिए बंगालीस्तान कभी भी विश्वमानवता के विरोध में नहीं जाएगा। यह अत्यावश्यक है। तुम जहाँ पर वास करते हो वहाँ का स्वार्थ तो

विषयसूची

अवश्य ही देखना पड़ेगा, लेकिन तुम विश्वमानवता की भाव धारा को कभी भी क्षुण्ण नहीं होने दोगे। मूल बात यह है कि तुमलोग कभी भी विश्लेषणात्मक रास्ते पर नहीं चलोगे। समस्त उपभाषाएँ या उनकी शाखा भाषाएँ (dialects and subdialects) एक दिन मूल भाषा के साथ मिलकर एक हो जाएँगे। यही हुआ संश्लेषण का पथ।

21 फरवरी 1989, कलकत्ता

बंगाल के सामाजिक-अर्थनैतिक सम्भावनाएँ

विषयसूची

बंगाल का सबसे गरीब जिला है राढ़ का बाँकुड़ा और पुरुलिया। उसकी तुलना में नदीया, मुर्शिदाबाद, जलपाइगुड़ि, कोचविहार, (करिमगञ्ज) प्रभृति अन्यान्य जिलाएँ आर्थिक अवस्था में कुछ परिमाण स्वच्छल हैं। राढ़ अञ्चल में बाँकुड़ा तथा पुरुलिया की अवस्था सबसे अधिक मर्मान्तिक है। यहाँ के लोग साल में कम से कम चार महीने एक प्रकार के घास का बीज खाकर जिन्दा रहता है।

अर्थनैतिक तौर पर बंगाल को स्वनिर्भर करने के लिए सवसे पहले दो चीजें जरूरत है (१) खाद्य के लिए आत्म निर्भर करना (२) आर्थिक फसलों के उत्पादन के व्यापक रूप से कार्यान्वित करना। ये दो चीजें पाँच प्राथमिक माँगो की पूर्ति के लिए एक गुरुत्वपूर्ण कदम है। ये पाँच प्राथमिक माँगे हैं (१) खाद्य

के मामले आत्मनिर्भर बनाना (२) कपड़े के मामले में आत्मनिर्भरता (३) मकान निर्माण हेतु प्रयोजनीय उपकरणों में आत्मनिर्भरता (४) रोग निवारण तथा चिकित्सा हेतु उपयुक्त दवाइयों का उत्पादन (५) शिक्षा सामग्रियाँ हेतु आत्म-निर्भरता लाना।

"खाद्य उत्पादन

खाद्य-आत्मनिर्भरता के प्रश्न पर बंगालीस्तान की मुख्य समस्या है- (१) वृष्टिपात की स्वल्पता (२) शीतकालीन वृष्टिपात का अभाव (३) जल निष्कासन व्यवस्था की कमी।

व्यापक रूप से वृक्षच्छेदन के कारण प्रयोजन की तुलना में वृष्टिपात का परिमाण बहुत अधिक घट गया है। इस के कारण अनाज का उत्पादन नहीं के बराबर हो गया है। नदियों में भी पानी का अभाव है। इसलिए सिंचाई व्यवस्था की समस्याएँ खड़ी हो गयी है। शीतकालीन वर्षा के अभाव में रवि का उत्पादन आशानुकुल नहीं हो रहा है। जल निष्काषण की व्यवस्था न रहने के कारण नदियों के पानी को अनाज उत्पादन हेतु व्यवहार नहीं किया जा रहा है। इसके चंगुल से बचने के लिए सिंचाई व्यवस्था का व्यापक संस्कार करना होगा। इसके लिए विशेष रूप से राढ़ अञ्चल में जहाँ पर वर्षा बहुत ही कम होती है, वहाँ पर शिफ्ट इरिगेशन, लिफ्ट इरिगेशन, टैंक इटिगेशन, स्मल स्केल रिवर वैली प्राजेक्ट तैयार करके सिंचाई व्यवस्था को नया रूप देना होगा। और इसी के साथ नदी-नालाओं का संस्कार करके जल निष्काषण व्यवस्था का आमूल परिवर्तन करना होगा। इस प्रकार से सिंचाई व्यवस्था को पूरा कर सकने पर साल में चार फसल का उत्पादन

संभव होगा। धान के मामले में आमन, उसके बाद बोरो और उसके बाद आउस तीन प्रकार के धानों का ही उत्पादन सम्भव होगा। नब्बे दिनों के अन्दर एक फसल को उठा लेना संभव होगा। जपान में जनसंख्या का बोझ बहुत अधिक है। ब्रिटिशकालीन भारत में पूर्वी बंगाल का त्रिपुरा, नोवाखाली, कुमिल्ला, चाँदपुर, बाहमणबेड़िया, इन सब इलाकों की जनसंख्या बहुत अधिक थी। उसकी तुलना में वर्त्तमान जपान की जनसंख्या बहुत अधिक है। फिर भी वे लोग खाद्य के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सक्षम हो चूके हैं।

राढ़ के किसी-किसी इलाके में की मिट्टी चिटाहा है, जो पानी को पकड़ कट रख सकता है। इन सभी स्थानों पर तलाबें तता बड़ा-बड़ा टैंक का निर्माण करना अच्छा होगा। जिसके कारण इस मिट्टी में मछली की खेती अच्छी होगी। चिटाही मिट्टी में आमन

विषयसूची

धान की खेती अच्छी होती है। उत्तरबंग का मिट्टी चिटाही तथा दोश युक्त है, जैसे दिनाजपुर जिला। यहाँ पर मिट्टी में आउस धान की खेती अच्छी होगी। दोआँश मिट्टी फिर जूट की खेती के लिए उपयुक्त है।

त्रिपुरा का मौसम बहुत हद तक राढ़ के जैसा ही है। लेकिन राढ़ की तुलना में यहाँ पर वर्षा अधिक होती है तथा यह वृष्टिच्छाया अञ्चल है। त्रिपुरा की मिट्टी में आउस धान, रवि फसल, और आलु के लिए उपयुक्त है। जूट की खेती भी यहाँ पर होगी लेकिन बहुत अच्छी जूट नहीं निकलेगी। मिरचाई की खेती बहुत अच्छी होगी जिसका बाजार होगा बंगलादेश। राढ़ में सरसों की खेती होगी। दूसरे अञ्चलों में तिल की खेती होगी जिसमें तेल के अलावे बहुत कुछ हो सकता है। तिल अर्थकरी फसल है। ईख के बदले चीनी उत्पादन हेतु सुगर बीट की खेती किया जा सकता

है। ईख की खेती के लिए जमीन साल भर के लिए रोका रह जाता है। सुगर बीट की खेती पुरूलिया जिला के अयोध्या पहाड़ तथा बाँकुड़ा जिला के सुसुनिया पहाड़ में भी हो सकता है। सुगर बीट तथा सरबती आलु से चीनी का उत्पादन होगा। उत्तरबंग में तम्बाकु की खेती अच्छी होगी। तम्बाकू की खेती के लिए काली मिट्टी की जरूरत होती है। दाल की खेती राढ़ में अच्छी होगी। आलु की खेती भी राढ़ में अच्छी होगी। आर्द्र जलवायु में आलु की खेती अच्छी नहीं होती है। उत्तरबंग तथा असम में वीरभूम जिला से आलु आता है। कलकत्ता की आलु की आपूर्ति करती है हुगली। निसार को आलु की आपुर्त्ति करती है बर्धमान तथा मध्यप्रदेश को मिदनापुर जिला आलु की आपुर्ति करती है। पहले ही कह चूका हूँ कि पार्वत्य त्रिपुरा वर्षाबहुल अञ्चल है। त्रिपुरा के पहाड़ में मेघ वर्षा करा देता है। शिलांग भी वर्षा बहुल अञ्चल है लेकिन चिरापूँजी में सबसे अधिक वर्षा होती है। चिरापूँजी के पहाड़ में समस्त जलीय वाष्प वर्षा करा देता है, इसलिए शिलांग

के लिए कुछ भी नही रहता है। इसीलिए चिरापूँजी में जहाँ पर साल में औसत वर्षा का परिमाण ९०० इंच होती है वहीं पह चिरापुञ्जी के बगल में रह कर भी शिलांग में औसत वर्षा का परिमाण मात्र ८० इंच है। राढ़ में आलु बड़ा साइज का होने पर भी त्रिपुरा में उसका आकार छोटा होगा लेकिन त्रिपुरा में आलु का उत्पादन काफी होगा। बंगला देश को उस आलु की आपुर्त्ति करके त्रिपुरा धनी हो सकता है। त्रिपुरा में सरसों की खेती होगी, पूर्वी बंगाल में सरसों की खेती नहीं होगी। क्योंकि दोआँश मिट्टी में सरसों नहीं होती है। इसीलिए सरसों का उत्पादन करके त्रिपुरा बंगलादेश को आपूर्ति करके काफी वैदेशिक मुद्रा आय कर सकेगा। राढ़ की तुलना में त्रिपुरा में अधिक वर्षा होती है इसीलिए वहाँ पर अनारस, केला अच्छा होता है। कटहल की खेती के लिए कोई विशेष प्रकार की मिट्टी की जरुरत होती है। बंगालीस्तान में कहीं पर भी कटहल की खेती हो सकती है। त्रिपुरा में चाय की खेती अच्छी नहीं होगी। चाय के लिए दलान युक्त पार्वत्य भूमि की

जरुरत होती है। जहाँ पर वर्षा का पानी जम नहीं पाता है। चाय की खेती शिलचर तथा करीमगञ्ज होगी। त्रिपुरा में रबर की खेती हो सकती है लेकिन कम मात्रा में। जूट की खेती के लिए काफी बरसात की जरूरत होती है। साथ में जमीन को भी काफी उपजाऊ होना पड़ेगा। इसी दो कारणों से त्रिपुरा की तुलना में मैमनसिंह में जूट की खेती अच्छी होगी और ज्यादे भी होगी त्रिपुरा में जंगली कच्चू की खेती अच्छी होगी। शाक-सब्जियों के लिए पानी का जुगान ज्यादे करना पड़ता है। लेकिन उसके लिए बरसाती पानी की जरूरत नही होती है। तदीया तथा कुष्टिया जिला में शाक-सब्जियों की खेती अच्छी होगी। इन सभी जगहों में गोभी की खेती तथा कपास की खेती भी अच्छी होगी। नदीया तथा मुर्शिदाबाद में गेंहू की खेती भी अच्छी होगी। नारियल के लिए सेलाइन-क्लाइमेट की जरुरत होती है। इसीलिए दक्षिणबंग में २४ परगणा से नोआखालि, चट्टग्राम, कक्सबाजार, टेकना तक समुद्र तटवर्ती अञ्चलों में नारियल का उत्पादन होगा। ये सब जहाज

निर्माण के लिए व्यवहार किया जाएगा। इस लम्बी समुद्र तटवर्ती अञ्चल को कहा जाता है मेराइन बंगाल (Marine Bengal)। शिलिगुड़ि, कोचविहार, कछाड़, करिमगञ्ज तथा त्रिपुरा में सुपारी का उत्पादन होगा। नारियल तथा सुपारी की खेती के साथ साथ काली मिर्च खेती भी होगी। पान की खेती के लिए सैलाइन मिट्टी की जरूरत होती है। मिदनापुर के तमलुक अनुमण्डल में पान की खेती अच्छी होती है। लेकिन पूरे दक्षिण बंगाल में ही पान की खेती हो सकती है। तमलुक से ही भारत के सभी जगहों पर पान की आपूर्ति होती है।

बंगाल की जूट आर्थिक दिशा को बल दे सकता है। जूट से बहुत कुछ हो सकता है जैसे कागज, रेयन, सिल्क इत्यादि । बांस से भी कागज बनता है। लेकिन उसके लिए खर्च कुछ अधिक होगी। बंगाली स्थान की सार्विक अर्थनैतिक उन्नति करने के लिए

ब्लाक भित्तिक अर्थनैतिक परिकल्पना करना पड़ेगा। बंगालीस्थान के विभिन्न इलाकों की मिट्टी, जलवायु एक नहीं है इसलिए अलग अलग परिकल्पनाएँ लेना होगा। समग्र बंगालीस्थान के लिए जिस प्रकार एक बृहत परिकल्पना लेना पड़ेगा ठीक उसी प्रकार ब्लाक भित्तिक अर्थनैतिक परिक्लपना भी करना होगा। तभी समस्त मनुष्यों के लिए अन्न वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा तथा वासस्थान की व्यवस्था करना सम्भव होगा।

धान

पृथ्वी में जितने प्रकार के घास है उनमें से सबसे अधिक बड़ा और लम्बा है बाँस। और सबसे छोटा-दुर्वा घास या दुधिया घास। दुधिया घास छोटानागपुर अञ्चल में बहुत अधिक होता है। सभी प्रकार के घासों में औषधीय गुण है। बाँस का पेड़ २५० जाति

के होते है। इसके अलावे ईख, धान, विचाली, गेंहू, घास सभी घास के पर्याय में पड़ेत है। इन सबों में कुछ-कुछ घासों के बीज हमलोग खाते हैं। कुछ-कुछ घासों के बीज नहीं पाया जाता है। ईख में फूल होते हैं, लेकिन बीज बहुत ही कम नजर आते हैं। गन्ने की आँख से इसके पौधे जनमते हैं। बाँस में फूल होते है, लेकिन खाने का उपयुक्त नहीं होता है। बिचाली का बीज छोटे-छोटे होते हैं। अकाल पड़ने पर लोग इसे खाते है। मादूर (चटाई) घासों के भी बीज होते हैं लेकिन लोग उसे खाते नहीं है क्योंकि वह मनुष्य का खाद्य नहीं है।

धान मनुष्यों के लिए एक विशेष खाद्य है। विभिन्न प्रजातियों के धान होते हैं। कोई-कोई धान के पौधे ७-८ फुट ऊँचे होते हैं और कोई-कोई धान के पौधे २ से ३ फुट भी होते है। जौ भी एक प्रकार का घास है। जौ की तुलना में गेंहू के पौधे आकार में

छोटे छोटे हैं। इसके अलावे भुट्टा, बाजरा, जनरा, ये सभी भी घास हैं- इन सबों के पत्ते अधिक चौड़े होते हैं। पौधों के शरीर से पत्तों के फाँकों में भुट्टा का शीष निकलता है। धान, गेंहू और जौ के बीज मुख्य भोजन होते हैं। घासों के बीज साधारणतः मनुष्य नहीं खाते हैं लेकिन अकाल के समय इसे भी खाया जाता हैं। श्यामा, नारकटिया, काउन, कोदों ये सबी घास के रूप में स्वीकृत हैं। लेकिन अभाववश लोग इनके बीज खाते हैं। इन सबों में पुरूलिया तथा बाँकुड़ा के गरीब आदमी साल के चार महीने इन्हीं घासों के बीज खाकर रहते हैं।

संस्कृत में धान्य का मतलब हरे 'शष्प' (green vegetation) आर्यलोग भारत में आकर, इन सबुज (हरे) शष्पों को देखा। लेकिन बंगाल का धान और संस्कृत का धान्य एक नहीं हैं। लेकिन बंगाल में जिसे धान कहा जाता है आर्यलोग उस धान

के संस्पर्श में सर्वप्रथम आय पारस्य में। लेकिन वहा पर धान (Paddy) कम होते हैं। आर्यों ने धान का नाम रखा ब्रीहि अर्थात जिसमें विराट सम्भावना है। धान में औषधीय गुण है, तथा सहज पाच्य है। अंग्रेजी शब्द राइस का उदभव हुया है संस्कृत शब्द ब्रीहि से । १००० साल बाद पार्सियों में ब्रीहि का रूपान्तरण रीहि में हुआ था। उससे प्राचीन लैटिन में हुआ 'रिसि'। और आधुनिक अंग्रेजी में इसी से बना है 'राइस'। ब्रीहि नाम इसलिए हुआ था कि ईसी से चावल, मूड़ी, लावा, चूड़े प्रभृति प्रस्तुत होते हैं। गेंहू में शारीरिक शक्ति बढ़ती है लेकिन पचपन साल के बाद इससे प्राणशक्ति ह्रास होता है। बहुत लोग ही कहते है गेंहू खाने पर शरीर पुष्ट होता है, लेकिन मष्तिष्क की अपुष्टि होती है। चावल इस त्रुटि से मुक्त है। लेकिन भात पेट के अन्दर अधिक जगह छेकता है। इसीलिए खाने का बाद आलस्य का बोध होता है, अर्थात नींद आती है। इसे भात की नींद कहा जाता है। जो भी हो आर्यगण भारत में प्रवेश करके इस देश में काफी मात्रा में हरे शस्यों को

देखकर इस देश का नाम रखा हरियाना। (हरित् धान्य > हरित् हान्य > हरिहाना > हरियाना)। प्राचीन संस्कृत ब्रीहि से पार्सियन भाषा में हो गया रिहि। प्राचीन लैटिन में रिसि। अंग्रेजी में राइस (rice)।

जब आर्यों ने अपनी आँखों से धान का दर्शन भी नहीं किया था उस समय द्राबिड़ों तथा अष्ट्रिकों के निकट यह धान बहुत पुराना हो चूका था। राढ़ का मुख्य अनाज है, धान। धान का बीज बोकर जहाँ से प्रथमबार पौधे उठाया जाता है, उसे कहीं-कहीं आफोड़ कहते हैं। कहीं बीज तला भी कहते हैं । आफोड़ शब्द संस्कृत शब्द 'आस्फोट' से आया है। बीजतला का बीज तथा तला दोनों ही संस्कृत शब्द है। अगर संस्कृत यहाँ की (राढ़ की) स्थानीय भाषा नहीं होती तो आर्यों के आने के पहले से ही इस प्रकार की भाषा कहाँ से मिली ? अतः संस्कृत इस देश की अपनी

भाषा है। धनबाद, देवघर, दुमका, पाकुड़, गोड्डा, वीरभूम प्रभृति जगहों पर आफोड़ कहा जाता है। मिदनापुर में कहा जाता है बीजतला, दोनों ही संस्कृत शब्द हैं। मुर्शिदाबाद अञ्चल में कहा जाता है बीछ्न, पटना में बिहन।

सबसे पहले मनुष्य जब निरामिष भोजन पेड़ पौधों से पाने की कोशिश की तब वे लोग घास के बीजों को खाना शुरू किया। मनुष्यों ने देखा इन घासों का बीज खाने में खराब नहीं है। तब वे उन्हें खाने लगे। प्रस्तर तथा ताम्र युग के मनुष्य धान को पत्थरों से पीसकर चावल निकाल लेते थे। बहुत बाद में यही पद्धति ओखली तथा देकी का व्यवहार करने सीखाया। आग के आविष्कार होने के बाद आदमी चावल को भीझाकर खाना शुरु किया। मनुष्यों ने देखा बिना भीझाकर केवल धूप में सुखाकर चावल बनाकर खाने से अधिक कब्जीयत की शिकायत हो रही

है। लेकिन धान को भीझाकर चावल बनाकर खाने के कब्जीयत नहीं हो रही है। इसीलिए लोग आतप (अखा) चावल छोड़कर सीझा हुआ चाबल खाना शुरू किया। बिहार में सीझाआ हुआ चावल यानी सिद्ध चाबल को कहते हैं उष्णा चावल। विहार तथा उत्तर प्रदेश के लोग आतप चावल खाने में अभ्यस्त है। सिद्ध चावल (उष्णा चावल) जल्दी पचता है। आतप चावल दोपहर के बाद खाने से कब्जीयत का डर कम होता है। इसके बाद आदमी भीझाआ हुआ 'चावल को बालू की खोली में भूजकर खाना शुरू किया। देखा गया उसमें खाना कठिन हो रहा है। तब वे लोग धान को फिर सीझाकर देखा कि उसमें भूजा हुआ चावल खाने में नरम हो रहा है। इसी का नाम हुआ मूढ़ी।

इसके अलावे मनुष्य धान को ही बालुवाली खोली में भूजकर लावा का आविष्कार किया था। जो भी हो, मूढ़ी में

विषयसूची

पौष्टिक तत्व कम है लेकिन जलखावार (नास्ता) के रूप में काम चल जाता है। इसी प्रकार के एक ही धान से कई प्रकार के भोज्यवस्तु तैयार होते हैं इसीलिए इसका नाम दिया गया था ब्रीहि।

खेती की प्राथमिक अवस्था में लोग 'जुम' खेती करते थे। पत्थर से मिट्टी खोदकर बीज बोते थे। वर्षा होने पर इन पौधों पर फल आते थे। बाद में फसल निकालकर उन पौधों में आग लगा देते थे। उसमें कुछ खाद अवश्य ही पैदा होता था लेकिन तीन चार बार इस पद्धति को अपनाने के बाद जमीन की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती थी। तब मनुष्यों. ने सोचने लगा कि किस तरीके से जमीन की उपजाऊ शक्ति की रक्षा की जाय। उसी के साथ कुछ लोगों ने सोचने लगा किस उपाय से अधिक गड्डा किया जाए और अधिक जगहों पर खेती की जाये। तब मनुष्यों ने हल-बैल का आविष्कार किया। मनुष्यों ने यह भी देखा कि उसके गोबर से

खाद भी बन रहा है। इसलिए वे लोग जमीन में खाद का भी व्यवहार करने लगा। हलों के फाल से मिट्टी में गहराई तक गड्डा बनाया जा सकता है। ऐसा करने से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है।

प्राचीनकाल के लोग जमीनों की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए बीच-बीच में खेती करना बन्द कर देता था। जिसे कहा जाता है जिरेन (विश्राम) देना। अभी भी उसका प्रभाव थोड़ी बहुत बरकरार है। अभी बहुत से किसान बीच बीच में जमीन को विश्राम देते हैं। बाद में लोगों ने देखा कि बीज छिड़कने के कारण एक ही जगह पर दो बीज पड़ जाने पर अच्छे पौधो नहीं होते है। तब लोगों ने नये तरीके से सोचा। बीज बोकर फिर जमीन में अच्छी तरह से हल चलाकर उसकी मिट्टी नरम बनाकर उसको रोपने लगा। इसे धान रोपनी कहा जाता है। संस्कृत शब्द रोपण से रोपणी। रोपणी के

कारण धान के पौधे मोटि होते हैं। पौधों में अधिक फूल आता है, फिर उसमें दूध आता फिर वह चावल बनता है। भूसों की मात्रा कम होने से फलन अधिक होता है।

पूर्वी बंगाल में इस प्रकार से धान रोपणी करना मुस्किल होता है, क्योंकि बीज तली में धान के पौधे तैयार करके जमीन में हल चलाकर खेती करने या धान रोपने के समय देखा गया कि वर्षा के कारण धान के पौधे डूब जाते हैं। इसीलिए उन लोगों ने धान छिड़ककर ही खेती करने लगे। इसमें बीज तली में धान के पौधे के डूब जाने का खतरा समाप्त हो गया। धान का नियम है कि अचानक वर्षा होकर धान के पौधे डूब जाय तो पौधे मर जाएँगे। लेकिन अगर धीरे-धीरे पानी बढ़ता जाय तो पौधे भी ऊँचे होते जाते हैं। अगर बहुत अधिक बढ़ जाता है तो गिरकर फिर डूब जाएगा। और फलन अच्छा नहीं होगा। धान सभी ऋतुओं का

फसल है। भादो में भदई धान, वर्षा-शरत, हेमन्त में होता है हैमन्तिक धान। कथ्य बंगला में इसे ह्यमत या ह्यामन धान कहा जाता था। वर्त्तमान में आमन कहा जाता है। शीत के मौसम से ग्रीष्म तक बोरो धान की खेती होती है।

आउस धान कम बरसात में ऊँची जमीन पर तथा दोआँश मिट्टी पर होती है। आउस धान के पौधों के पास पानी जमने पर मर जाता है। मुर्शिदाबाद, यशोर, खुलना, नदीया उत्तर चौबीस परगना में दोआंश मिट्टी है। इसीलिए ये जगह आउस धान के लिए उपयुक्त है। उत्तर बंगाल के जिले भी आउस के लिए अच्छी है। लेकिन बरसात पहले शुरु होने की वजह से धान के फूल मर जाते हैं। आउस धान का अखा पेट के लिए खराब नहीं है। थोड़ा मोटा होता है तथा चावल का रंग लाल जैसा होता है। आउस की अखा में कब्जीयत नही होती है लेकिन भद्र-समाज के लोग उसे खाना

विषयसूची

पसन्द नहीं करते हैं। पहले जमाने में राढ़ में जमीन्दार लोग यह धान किसान तथा खेतीहरों को दे दिया करते थे। आउस धान के चावल से उन्नत किस्म के पावरोटी बन सकते हैं। जिसे केन्द्र कर के प्रखण्ड स्तर पर बेकारी industry का निर्माण किया जा सकता है। जलखाबार (नास्ता) दोपहर का खाना, रात का खाना भी बन सकता है। इसलिए चल सकता है क्यों कि यह पावरोती गेंहू से बना हुआ नहीं है। तण्डुल भोजियों में बुद्धिजीबियों की संख्या अधिक होती है। इसलिए वे भी इसे खा सकते हैं। बैशाख में लगाकर अगर भादो में उसे निकाला जाय तो आउस का फसल अच्छा होता है। जैठ तथा आषाढ़ में भी लगाय जा सकता है। उत्तर भारत इसे ही 'भदई' कहते हैं। उस जमाने में बंगाल के लोग इसलिए आउस की खेती करते थे क्योंकि आश्विन का महीना अभाव का समय होता है और आमन उस समय घर में नहीं आता है। अगर उस समय फसल घर में आ जाता है तो मालगुजारी दिया जाएगा। इसीलिए आउस लगाया जाता था। लोग भादो में मनसा

पूजा के समय भी आउस का चावल खाते थे। इस जमाने में लोग मनसा पूजा के समय आउस के चावल का भात तथा कच्चू साग का घंट खाते थे। इससे प्रमाणित होता है कि उस समय तक आउस घर में आ जाता था। आउस की खेती में झंझट कम है। केवल बीज छिड़कने के समय, पौधे बड़ा होने के समय, तथा फूल आने के पहले वर्षा होने पर काम चल जाता है। इसी राढ़ का जो अञ्चल अनावृष्टि के कगार पर होते है वहाँ पर भी आउस की खेती होगी। आउस धान का भूसा से bran oil तैयार होगा, चूँकि सभी धान की तरह ही आउस धान में भी fat या बसा होता है।

आउस धान के भूसा के साथ जलाया गया चूना या घूटिंग देकर सिमेण्ट तैयार किया जा सकता है। पश्चिम राढ़ तथा समुद्र तीरवर्ती अञ्चलों में इस प्रकार का सिमेण्ट शिल्प तैयार किया जा सकेगा। यद्यपि यह सिमेण्ट ह्यामत धान के भूसा सेबन हुआ

सिमेण्ट जैसा उन्नत किस्म का नहीं होगा। आमन धान के मैदा से भी रोटी हो सकती है।

पुराने जमाने में लोग भूसा को देवतारूप रूप में पूजा करते थे। आउस के साथ कोई दूसरा अनाज लगाया नहीं जा सकेगा और इन खेतों पर चारा माछ, कुचो माछ तथा भूसो माछ भी नहीं मिलेगा। क्योंकि इन खेतों पर पानी नही रूकता है। हमारे देश में आउस को छिड़काना पड़ता है। क्योंकि रोपाई के लिए कीचड़ की जरूरत होती है। फिर पूर्वी बंगाल में इतने अधिक वर्षा होती कि उसमें कीचड़ बनाकर रोपना की मुस्किल होता है। इसीलिए धान को छिड़क दिया जाता है। मैंने पहले ही कह चुका हूँ कि मुर्शिदाबाद तथा नदीया जिलों की मिट्टिया दोआँस होती है। इसीलिए वहाँ की मिट्टी आउस की खेती के लिए उपयुक्त है। इसीलिए इन अञ्चलों को स्वयंसम्पूर्ण बनाने के लिए आउस का

फसल बढ़ाना होगा। आउस का फसल अभी भी डेढ़ गुणा से दोगुणा तक बढ़ाया जा सकता है। आउस का पुआल से मकान बनाना मुस्किल है। लेकिन गाय-बैल इसे खाते हैं। आउस का पुआल सड़ा कर पुआल छातु मिलेगा। संस्कृत में इसे कबके कहा जाता है। ये सब आश्विन महीने में निकलते हैं इसीलिए इसे लोग दुर्गा छातु भी कहते हैं। खाद्य गुण रहते हुए भी इस छातु को तामसिक पर्याय में रखा गया है। इसलिए आनन्द मार्गी लोगों के लिए इसे खाना निषिद्ध है। आउस की पूआल से उन्नत किस्म के कागज तैयार होते हैं और नाइलोन भी हो सकव्रा है।

आमन -- आमन की रोपाई तथा बोनाई दोनों ही होते हैं। पूर्वी बंगाल के लोग कम परिश्रमी होते हैं। इसीलिए वे लोग बोनाई (छिड़काव) करते हैं। लेकिन रोपने पर अधिक फसल होता। कहना

उचित होगा कि भींगी मौसम के कारण ही वे लोग अर्थात पूर्वी बंगाल के लोगों की शारीरिक क्षमता कम होती है।

आमन धान की खेत में काफी हल चलाना पड़ता है। राढ़ में यही किया जाता है। बरसात के पहले हल चलाकर सुखी मिट्टी (धूल) बना लिया जाता है। फिर बरसात में उस खेत में फिर हल चलाकर कीचड़ बनाया जाता है। पूर्वी बंगाल में एकबार हल चलाकर धान का बीज बो दिया जाता है। आमन धान लगाने के लिए बीजतली में चार से छः सप्ताह के अन्दर पौधे तैयार कर लिए जाते हैं। बाद में उन पौधों को वहाँ से हटाकर दूसरा जगह लगाया जाता है।

धान लगाने के लिए त्रिकोणाकार करके (triangular) लगाना होगा। साधारण मात्रा में पानी रहने से ही काम चल

जाएगा। आमन धानों के खेत में आश्विन महीने में अर्थात फूल आने के पहले एक बार वर्षा होना जरूरी होता है। नहीं फल अच्छा नहीं होंगें। आश्विन में फूल आता है और अघन में पक जाता है। काला-कार्तिक-धान कार्त्तिक में ही पक जाता है अर्थात घर में आ जाता है। उसे काटकर रवि फसल लगाया जा सकेगा। शेष धानों के खेतों पर राई, मटर, चना मसूर इत्यादि - अतिरिक्त फसल के रूप में छिड़क देना चाहिए। इस प्रकार चने तथा मटर छोटे किस्म के होते हैं। इसलिए काला कार्त्तिक काटने के बाद उन खेतों पर हल चलाकर उन्नत किस्म के चने, मटर तथा आलु लगाया जा सकता है। आजकल hybreed धान बजार में आ चूका है। अक्टुबर में ही धान कटनी हो जाती है। फल स्वरूप उसमें हल चलाकर रवि फसल लगाया जा सकता है। गेंहू कार्तिक में लगाने पर जल्दी लगान होता है, अग्रहायण में लगाने नाबी हो जाता है। नदीया तथा मुर्शिदावाद अञ्चल में hybreed आमन धान लगाने पर उसे उठाकर गेंहू लगाया जा सकता है। लेकिन

दोआँस मिट्टी होने की वजह से खेत में पानी जमता नहीं है। इसलिए आमन अच्छा नहीं होगा।

राढ़ की मिट्टी चिटाही है इसलिए पानी को रोककर रखता है। इसीलिए राढ़ में तलाबों की संखाय अधिक हैं। बर्धमान में २५,०००,पुरुलिया में १०,००० तलाबें हैं। राढ़ की मिट्टी आमन की खेती के लिए अच्छी है।

जब आमन में फूल आता है, उस समय अपेक्षाकृत उँची जमीन पर बीजतली में आउस का बीज बो देने पर आमन उठाने के साथ ही उसमें हल चलाकर आउस के उन पौधों को लगा देना चाहिए-इसमें शीतकालीन आउस हो जाएगा। फिर उसी तरह से उसी जमीन पर आउश को उठाकर तुरन्त बोरो धान लगाया जा सकता है। आमन धान १२० दिन का फसल है। इसीलिए उसी

बीजतली में आउस के पौधे तैयार कर लेने पर आउश धान होने में जितना समय लगता है ठीक उसी समय के अन्दर आमन काटकर आउश किया जा सकता है।

बोरो धान में गेंहू की तुलना में तीनगुणा अधिक पानी लगता है। इसीलिए नदीया, मुर्शिदाबाद प्रभृति अञ्चल में बोरो की खेती न करके गेंहू की खेती करना ही अच्छा होगा। लेकिन शहरी नलकूप (deep boring) की व्यवस्था रहने पर बोरो की खेती की जा सकती है। बोरो धान की खेत पर वे सब मछिलियाँ हो सकता हैं। जो तलाबों में अण्डे देते हैं। आमन और बोरो धान की खेतों में पर्याप्त पानी रहने की वजह से नैटा, खैरी, पूँटी, खरशोला आदि मछलियाँ होती है जो सब तलाबों में अण्डे देते है। राढ़ के लोग शुटकी माछ (सुखी हुई मछलियाँ) नहीं खाते हैं। लेकिन राढ़ में शुटकी मछली तैयार करके बाहर में जाकर बेचा जा

सकता है। लेकिन अच्छे किस्म के मछलियाँ जैसे बाटा, पाबदा, रेहू, कत्ला आदि मछलियों की शूटकी नहीं होती है।

राढ़ की मिट्टी में पानी का जुगान दे सकने पर आमन धान की खेती बहुत अच्छी होगी। बर्धमान, हावड़ा, हुगली जिलों में बोरो धान की खेती बहुत होती है।

आमन धान के पुआल से मकान छाटा जाएगा। बैलों का भोजन होगा, कागज भी बनेगा, तथा सड़के पर छातु (Mashroom) भी होगा। बोरो का पुआल मजबूत नहीं होते है। बैल इसे नहीं खाना चाहता है। मकान की छावनी भी नहीं होती है। लेकिन बोरो के पुआल से उन्नत किस्म के कागज बनेंगे। नाइलोन जातीय तन्तुएँ भी बनेंगे। बोरो का पुआल सढ़ने पर उन्नत किस्म के मासरूम भी होंगे।

आउस धान को उत्तर भारत में भदई धान (Autumn paddy) कहते है। आमन को कहा जाता है अगहनी धान तथा बोरो को कहते है गरमी (summer rice) धान। आमन धान के भूसे से सबसे उत्तम किस्म के सिमेण्ट होंगे। ऐसा है कि नदीया जिला में भी तीन-चार सिमेण्ट-फैक्टरियाँ हो सकती हैं। बंगाल में ही चौबीस परगणा हैं। (अलिबर्दी खाँ के समय २४ परगणा भी नदीया जिला में ही था)। वहाँ से गैंड़ी, सुिताआ, गुगली, जलाया हुआ चूने की आयात किया जा सकता है। इससे २४ परगणा में चूना का industry का निर्माण किया जा सकता है। और उसी चूना से सिमेण्ट का भी फैक्टरी बन सकता है।

देश विभाजन के पहले भी पूर्वी बंगाल में बोरो की खेती होती थी। मैमनसिंह जिला के किशोरगञ्ज अनुमण्डल तथा सिलेट

में हबीगञ्ज अणुमण्डल में बोरो की खेती अधिक थी। बर्त्तमान राढ़ में भी बोरो धान की खेती शुरू की गयी है।

गेंहू की तुलना में बोरो धान की खेती में तीन गुणा अधिक पानी की जरूरत होती है। दलहन आदि अनाजों में कम पानी की जरूरत होती है। लेकिन गेंहू में तीन बार सिंचाई की जरूरत होती है। और गेंहू की अपेक्षा बोरो में तीन गुणा पानी चाहिए। इसीलिए दोआँश मिट्टी में बोरो धान की खेती में जोखिम उठाना पड़ता है। क्योंकि पोधों के नीचे पानी नहीं रहता है। लेकिन बोरो धान में फायदा अधिक होती है। गहरी नलकूप के सहारे आजकल बोरो धान भी लगाया जा रहा है। ऐसा है कि अगर किसान को बोरो धान लगाने का मौका मिलता है तो वे गेहूँ लगाना पसन्द नहीं करते हैं। क्योंकि अधिक ठण्डक में गेंहू बढ़ता है, लेकिन फल आने के समय ठण्डक अधिक रहने पर फल नष्ट हो जाते हैं। जिस

प्रकार आलु के समय कुहासा (कोहरा) रहने पर आलु खराब हो जाता। राढ़ के किसान बोरो धान की खेती अधिक से अधिक जमीन में करें। गेंहू की खेती थोड़ी बहुत जमीनों में करें और ऊँची जमीनों पर आउश की खेती करें। आमन धान के भूसा से तेल भी हो सकता है (bran oil)। पुआल से कागज होता है। इस प्रसंग में कह देना अच्छा होगा जहाँ पर जिस प्रकार का कच्चामाल प्राप्त होगा वहाँ पर उसी प्रकार का शिल्प का निर्माण करना अर्थनीति सम्मत है। राढ़ में ध्यान देना पड़ेगा आउस की बुनाई न करके रोपाई करना ही अच्छा होगा। क्योंकि उसमें अनाज अधिक होंगे। आमन के चावल को पीस कर जौ मैदा बनेगा उससे उन्नत किस्म के पावरोटी तैयार होंगे, जो बाहर भी भेजा जा सकेगा।

धान की महीन भूसी (कुड़ो) से विस्कुट तैयार होगा। चेन्नई में इसका फैक्टरी बना है। बंगाल में भी हो सकता है। धान का

उत्पादन सबसे अधिक चीन में होता है। उसके बाद वर्मा (म्यानमार), भारत और थाइलैण्ड में होता है। चीन और भारत में जनसंख्या अधिक होने की वजह से धान का निर्यात नहीं कर पाता है। दूसरी और जनसंख्या कम होने की वजह से वर्मा और थाइलैंड धान का निर्यात करता है। इसके अलावा फिलिपाइनस, ताइवान, जपान धान उत्पादन में स्वयं सम्पूर्ण हैं। बर्धमान, वीरभूम, पश्चिम दिनाजपुर, में धान का उत्पादन अधिक होता है, मिदनापुर, बाँकुड़ा, कोचविहार में उससे कम होता है लेकिन जलपाइगुड़ी, दार्जिलिंग, मुर्शिदावाद और नदीया में कमी है।

उत्तर बंगाल, पूर्वी बंगाल तथा असम तिल की खेती के लिए अच्छा है। तिल तीन प्रकार के होते हैं। गरमी में होता है लाल तिल, रवि फसल के समय होता है सफेद तिल और बरसात में होता है काला तिल। भींगी मौसम वाले इलाकों में सरसों की खेती

अच्छी नहीं होती है। तिल की छिलके से खाद का निर्माण किया जा सकेगा। खल्ली से पशुओं का खाद्य तथा खाद होगा। तिल का छिलका हटाकर घानी में देनें के बाद जो खल्ली निकलेगी उससे आटा भी तैयार होगा। उससे रोटियाँ भी बनेगी उसे गरम पानी में खोला कर भी खाया जा सकेगा तथा सुजी की तरह हलवा बनाकर भी खाया जा सकेगा। तिल को भीगांकर जूट के बोरा में घीसने पर छिलके उतर जाएँगे। बर्धमान का प्रसिद्ध तिल का सन्देश (मिठाई), गया का तिलकुट इसी प्रकार छिलके हटा कर ही तैयार किए जाते हैं। तिल तीन महीने का फसल है। तिल के लिए जमीन पर तीन बार हल चलाना पड़ता है और दोबार सिंचाई भी करना पड़ता है। काला तिल ही तिलों में उत्कृष्टतम है। जो लोग थोड़े से में गुस्सा जाता है, उन लोगों के लिए तिल का तेल अच्छी दवाई है। सफेद तथा लाल तिल के तेल को भोजन के लिए व्यवहार किया जा सकता है। तिल तेल को सुगन्धित तेल के रूप में व्यवहार किया जा सकता है, क्योंकि इस तेल में सभी प्रकार के

सुगन्ध को सोख लेने की क्षमता है। नारियल तेल में सुगन्ध सोखने की क्षमता सबसे कम है। लेकिन माथे के लिए सबसे अच्छा है। सफेद तेल देखने में अच्छा होता है। लखनऊ में कई प्रकार स्वादिष्ट भोजन-सफेद तिल से बनाया जाता है।

बंगलादेश तथा उत्तर बंगाल की जमीनें पानी के नीचे रहता है इसलिए जमीनों पर मछलियाँ नहीं होती हैं। और शुटकियाँ भी नहीं होती है। पश्चिम बंगाल में बहुत अधिक खाल रहने के कारण जमीनों में बहुत अधिक मछलियाँ भी होती हैं। वर्मा, थाइलैंड, जपान में शुटकी माछ (सुखी मछलियाँ) निर्यात किया जा सकेगा। जिन जमीनों पर एकान्त रूप से हल नहीं चलाया जा सकेगा तथा धान की खेती नहीं हो सकेगी उन जमीनों पर अतिरिक्त फसल का पैदावार होगा। आमन धान के जमीनों के बगल में अच्छी खेती की जा सकती है। उससे धान के साथ-साथ

दलहन की खेती हो जाएगी। एक साथ में भात, दाल और मछलियाँ सबकुछ मिल रही है।

धान के जमीनों को साफ करने के बाद अतिरिक्त खाद देना पड़ता है नहीं तो जमीनों में उगे हुए खर पतवार ही खाद को खींच लेगा। फिर पायरा फसल के बीज़ छिड़कने के पहले खाद डालना पड़ेगा नहीं तो पायरा फसल खाद को खींच लेगा उससे धान के फलन में कमी आएगी। इसलिए धान में फूल आने के बाद ही उसमें अतिरिक्त फसल का बीज बोना उचित होगा। अतिरिक्त फसल का बीज पहले डाल देने पर मछलियाँ चल फिर नही सकेंगे। इससे धान और मछली दोनों में कमी आ जाएगी।

रेशम का स्पिनिंग मिल होगा- मालदा, सुजागंज, मुर्शिदाबाद का जंगीपुर तथा लालबाग में, वीरभूम के वसोआ विष्णुपुर, बाँकुड़ा

विषयसूची

का विष्णुपुर अनुमण्डल में। तम्बाकु प्रक्रियाकरण का काम होगा कुचविहार और बाँकुड़ा में।

काजुबादाम का प्रक्रियाकरण (processing) होगा काँथि के रामनगर थाना, सुताहाटा तथा नन्दीग्राम ब्लाक में। काजु का फूल अलग करने की जरूरत नहीं है। फूल से अच्छे किस्म के शहद तैयार होते हैं। फूल को सड़ाकर अलकोहल तैयार किया जा सकता है। बंगाल की समुद्र वटवर्ती इलाकों में समुद्र-शैवाल (sea-weeds) से आयोडिन तथा काजू के फूल से अलकोहल तैयार कर औषध-शिल्प का निर्माण हो सकता है।

गेहूँ

विषयसूची

गेहूँ दुनिया का दूसरा प्रधान खाद्य है। आर्यगण जब मध्य एशिया के निवासी थे तो वे लोग केवल जौ की खेती करना जानते थे। फारस में आकर वे लोग सर्वप्रथम गेहूँ के संस्पर्श में आए। जौ की पूष्टिमूल्य है। इससे बार्ली तैयार होता है। लेकिन खाने में गेहूँ की तरह स्वादिष्ट नहीं है। जौ की छिलका हटाकर उसे पीसकर बार्ली तैयार किया जाता है अगर छिलके बिना हटाए पीसा जाए तो आटा बनता है। जौ से सत्तूएँ भी बनते हैं। गेहूँ को जाँता में पीसकर जाँता आटा तैयार किया जाता था। उस समय आटा-मसीन नहीं था। बड़े-बड़े दालों को तौड़नेवाली जाँता की तरह गेंहूँ पीसने की जाँताएँ भी थी।

जो भी हो आर्य लोग इस देश में आकर गेहूँ खाकर देखा कि यह बहुत स्वादिष्ट है। जौ की तरह नहीं है। संस्कृत में जीभ को 'गो' कहा जाता है। जिसे खाकर गो अर्थात् जिह्वा में 'धूम' उत्सव

विषयसूची

लग गया उसे गोधूम नाम दिया गया। गोधूम > गोहूम > गहम (विहार और उत्तर प्रदेश में कहा जाता है गहम। राढ़ तथा उड़ीसा में गम। पंजाबी में कणक कहा जाता है। पक जाने पर सोने की तरह लगता है इसीलिए इसे कणक कहा जाता है। दक्षिण भारत में तमील भाषा में कहते है 'गोधूमाई'। अंग्रेजी में wheat। जो चीज सफेद होता है उसका अंग्रेजी होता white इसीलिए abstract noun में इसके दो रूप होते है : whiteness और wheat। वर्तमान में श्वेतत्व अर्थ में इस शब्द का प्रचलन नहीं है।

भारत में आकर आर्यों ने देखा भारत के पश्चिम में गेहूँ की खेती है। दक्षिण भारत में कभी भी गेहूँ की खेती नही होती थी। गेहूँ, के लिए उपजाऊ मिट्टी, समतल जमीन, कम वर्षा तथा ठण्डी हवा की जरूरत होती है। फिर भी आजकल दक्षिण भारत में भी थोड़ा बहूत गेहूँ की खेती हो रही है। असल में गेहूँ एक रवि फसल

है। गेहूँ की खेती के लिए थोड़ी वर्षा या मिट्टी भीगी हुई रहने से ही काम चल जाता है। लेकिन गेहूँ के पौधे ठण्डी हवा में बढ़ते है। दक्षिण मेरू के मनुष्यों के लिए सूर्य जब उत्तरायण में रहता है फिर उत्तर मेरू के लोगों के लिए सूर्य जब दक्षिणायन मे रहता है तब रवि का फसल होतो है। विषुवत् रेखा के दक्षिणांश में सूर्य रहते वक्त ही गेहूँ की खेती समाप्त करना होगा। गेहूँ की खेती की शुरूआत में एकबार, पौधे बढ़ने के वक्त. एकबार, फूल आने के वक्त पर एकबार सिंचाई करने से काम चल जाएगा। गेहूँ के लिए चाहिए दोआँस मिट्टी (चिटाही + बलुआही)। क्योंकि गेहूँ के जड़ के नजदीक पानी जमने पर गेहूँ सड़ जाता है। राढ़ में जहाँ पर दोआँस मिट्टी है, वही पर गेहूँ की खेती अच्छी होगी।

बंगाल में गेहूँ की खेती के लिए सबसे अच्छी इलाका है: मालदह, मुर्शिदाबाद जिला में लालगोला, बहरमपुर अनुमण्डल,

पूरे नदीया जिला, चौबीस परगना का उत्तरांश, यशोर तथा खुलना का उत्तरांश । बंगलादेश में गेहूँ की खेती नहीं के बराबर होती है। होने पर भी भीगी जलवायु के कारण उसके शरीर में फंगस पैदा हो जायेगा। लेकिन कुष्टिया जिला मे होगा। फरीदपुर तथा ढाका जिला में गेहूँ की खेती नहीं होगी। क्योंकि गेहूँ के लिए सुखी मौसम चाहिए। ठीक एक ही कारण से असम, उत्तर बंगाल के कुछ हिस्सों में गेहूँ नही होगी, पौधे होने पर भी दाने नहीं होंगे। दाने होने पर भी फंगस पकड़ लेगा। मगध में अच्छा गेहूँ नही होगा, मिथिला में अच्छा होगा। सबसे अच्छा गेहूँ पञ्जाब में ही होगा। पंजाब के लुधियाना जिला में सबसे अधिक फलन होगा। दुसरी ओर उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा में भी गेहूँ अच्छे होंगे।

बंगाल में मेमारी - 1 नं ब्लॉक में सबसे अच्छा गेहूँ होगा। जैसे पीले सरसों के लिए गलसी ब्लॉक अच्छा है। आलु सबसे

विषयसूची

अच्छा होगा बर्धमान के जामालपुर में और उत्तर प्रेदश के फारूखाबाद में।

उपयोगिता – गेहूँ से आटा बनाने के अतिरिक्त ओखली में कुटकर सूजी भी बनाया जा सकता है। 'सूजी' शब्द सुरजीत शब्द से आया है। सुरजीत > सुज्जी > सुजी। गेहूँ के छिलके को हटाकर अन्दर के सफेद अंश को पीस कर मैदा बनाया जाता है। अंग्रेजी में Flour । अंग्रेजी में आटा को Coarse flour कहा जाता है। अणटक > अण्टिका > अण्टिया > आटा।

बंगाल में जिन कई जिलों में गेहूँ की खेती अच्छी होती है, उनमें से मालदह जिला का टाल तथा दियारा इलाका में, मुर्शिदाबाद जिला का लालबाग तथा बहरमपुर सदर अनुमण्डल,

पूरे नदीया जिला, उत्तर तथा दक्षिण 24 परगणा जिलों में पूर्व राढ़ तथा पश्चिम शढ़ में। गेहूँ का अच्छा बीज बाँकुड़ा में तैयार होता है।

उच्च फलनशील आमन धान जब अक्तुबर में पकना शुरू होता है उस समय धान कटनी के बाद जमीन पर विपरीत दिशाओं से दो बार हल चलाना पड़ता है। इसमें पानी डालने की जरुरत नहीं होगी। चूँकि यह कम पानी का फसल है, इस लिए थोड़ा कम पानी होने पर भी चल जाएगा। दूसरी बार हल चलाने के साथ ही बीज डाल देना पड़ेगा। उसके बाद अंकुर निकलने पर पानी देना पड़ेगा।

गेहूँ लगाने के लिए उपयुक्त समय है जब सूर्य तुलाराशि, वृश्चिक राशि तथा धनुराशि के साथ 90° का कोण बना रहा है तब। अर्थात् बंगला कार्त्तिक, अग्रहायण तथा पौष महीने के सात तारीख तक (15 अक्टुबर से 22/23 दिसम्बर तक) इन में से

जल्दी होने वाले गेहूँ लगाना चाहिए कार्त्तिक से अग्रहायण के 15 तक (अक्टुबर 15 से नवम्बर के अन्त तक) और उसके बाद पौप महीने के सात तारीख तक नाबी जात (देर से पकनेवाला) का गेहूँ लगाना चाहिए। राढ़ में अगर सिंचाई की व्यवस्था हो तो गेहूँ की खेती की जा सकती है। मयुराक्षी, कोपाई, अजय, वक्रेश्वर, द्वारका, बराकर, काँसाई, कुमारी, दुलूंग, केलेघाइ, छोटकी गुआई, बड़की गुआई, सुवर्णरिखा इत्यादि नदियो से सिंचाई की व्यवस्था की जा सकती है। इन सभी हर क्षुद्र सेच प्रकल्पों में - बड़ा बाँध या डैम न बनाकर 25 लाख से पाँच करोड़ के बीच खर्च को सीमित रखना होगा।

बंगाल में गेहूँ उत्पादन के मामले में जमीनो के किस्मों के बिचार से बागड़ी (समतट) है 'A' group। पूर्वी राढ़ 'B' group पश्चिम राढ़ है 'C' group तथा उत्तर बंगाल है 'D' group क्योंकि

उत्तर बंगाल की भीगी मौसम के कारण गेहूँ में फंगस आ जाएगा। नदीया जिले के एक बीघा जमीन में जितने गेहूँ पैदा होंगे जलपाइगुड़ी में उसके आधे फसल मिलेंगे।

सभी प्रकार के दलहनों के जड़ों में नाइट्रोजन तैयार होते हैं, जो जमीनों की उपजाऊ शक्ति बढ़ाती है। इसीलिए अगर गेहूँ के खेतों पर सहायक फसल के रूप में दलहन जातीय पौधे लगाई जाय तो गेहूँ का फलन बढ़ जाएगा। उचित समय पर गेहूँ के साथ मिश्रित फसल के रूप में उपयुक्त फसल लगाना पड़ेगा। अर्थात् जल्दी पकने वाले गेहूँ के साथ जल्दी होने वाले दलहन तथा देर से पकने वाले गेहूँओंके साथ देर से पैदा होनेवाले दलहन। यह राइ-सरसों में भी है। अगर जमीन पर 90% गेहूँ में से 10% कलाई (दलहन के बीज) लगाया जाय तो 100% गेहूँ होगा और 10% दलहन होगी। यह जमीन में नाइट्रोजन पैदा होने की वजह से होगा।

इस प्रकार दलहन का फसल अतिरिक्त फसल के रूप में प्राप्त होगा। इस प्रकार से कुल उत्पादन में वृद्धि हो जायगी।

गेहूँ की खेती में एक असुविधा है कि जब गेहूँ के दाने आ चूके है, लेकिन पका नही है अगर उस समय पूर्वी हवा बहने लगे तो गेहूँ नही पकेगा। उसमें फंगस आ जाएगा। और अगर उस समय पश्चिमी हवा चले तो गेहूँ बहुत अच्छी तरह से पकेगा। गेहूँ ठण्डक पर निर्भरशील है। अर्थात् ठण्डक पड़ने पर फसल बढ़ेगा, लेकिन सर्दी कम होने पर कभी कभी फसले घट जाती हैं, लेकिन अत्यधिक हिमपात से गेहूँ का फसल खराब हो जाते हैं।

गेहूँ की खेती में खाद की जरूरत है। उसका पुष्टिमूल्य अरवा चावल से थोड़ी अधिक है। जिन जगहों पर गेहूँ अच्छी होती है, बंगाल के उन सभी अञ्चलों में यथेष्ट नदियाँ अर्थात्

विषयसूची

सिंचाई की व्यवस्था नहीं है। लेकिन विधाता का आशीर्वाद है कि उन जगहों पर पानी का स्तर बहुत नीचे नही है। इसीलिए कम गहराई वाले नलकूप (Shallow tubewell) के सहारे ही गेहूँ की खेती की जा सकेगी।

गेहूँ का बाजार दुनिया में बहुत अच्छा है। गेहूँ को टुकड़े करके पीसने पर सूजी बनता है। गेहूँ की छिलका उतार कर पीसने से मैदा होता है और छिलके सहित पीसने पर आटा बनता है। राढ़ में जहाँ की जमीनो में पीली मिट्टी है वह जमीन सरसों की खेती के लिए अच्छी नहीं है। जहाँ पर पथरीली मिट्टी है लेकिन उपजाऊ है, वहाँ पर गेहूँ होंगे। लेकिन जहा पर ठण्डक अधिक है वहाँ पर गेहूँ नही होंगे लेकिन जौ अच्छे होंगे। बंगलादेश की मिट्टी में तिल अच्छी होती है। जहाँ का मौसम थोड़ा बहुत गर्म है जिसे गेहूँ बरदास्त नहीं कर सकती हैं, वहाँ पर भी जौ होगा। जहाँ पर शीत

अधिक है, जिसे गेहूँ बरदास्त नही कर सकता है, वहा पर जौ होगा। ओट्स् मोटा दाना का फसल है। पौष्टिकमूल्य गेहू से कम है। लेकिन प्राय बराबर है। इसकी रोटी बनाना मुस्किल है। रोटी बनाने पर आठ-दस टुकड़े हो जाते है और सेंकने के समय कट जाता है। गेंहू और धान अच्छा होने पर भी उत्तर प्रदेश के किसान ओटस के दाने खाते हैं। ओट्स् के बड़े दानों को कहते है जौ और छोटे दानों को कहते है राई। कोई-कोई इन दोनों को अलग अलग फसल समझते है। सम्पन्न देशों में राइ तथा जौ पशु खाद्य के रूप में व्यवहृत होता है। इंगलैण्ड की जमीन उपजाऊ है लेकिन स्कॉटलैंड की जमीने अनुपजाऊ हैं। इसीलिए इंगलैण्ड में गेहू होगा और स्कॉटलैण्ड में ओट्स् होगा। राशिया के उत्तरांश में भी ओट्स् होंगे। ओट्स् से बने हुए सूजी का अंग्रेजी नाम है (porridge) जो स्कॉटलैण्ड का प्रधान खाद्य है। पहले हमलोग गेंहू के लिए विदेशों पर निर्भरशील थे। अभी गेहू बंगाल में ही उत्पादित हो रहे हैं। बंगाल में सरकार ने जब सर्वप्रथम नदीया जिला में 30/32 साल

विषयसूची

पहले गेहूँ की खेती शुरू की तो गेहूँ के साथ ओट्स् मिलाया हुआ था। इसीलिए ओट्स का फसल अधिक हो गया। सभी खाद को खींचकर गेहूँ के पौधों से ओट्स् के पौधे अधिक लम्बे हो गये। इसीलिए फसल अच्छा नहीं हुआ। किसान इसकी खेती करना नहीं चाहते थे लेकिन जो गेहूँ था उसमें कुछ फसल मिल गया था। तब सरकार ने किसानों को अच्छा बीज देने का आश्वासन दिया। इसी तरह से गेहूँ की खेती का प्रचलन शुरू हुआ।

बर्धमान, हुगलि, तथा हाबड़ा जिला में बोरो धान की खेती लाभजनक है। पश्चिम राढ़ में गेंहूँ अच्छा ही होगा। लेकिन नीचली जमीनों पर बोरो की खेती ही युक्तिसंगत है। नदीया जिला में बोरो की तुलना में गेहूँ लगाना अच्छा है। आजकल अवश्य गहरी नलकूप के द्वारा बोरो धान की खेती की जा रही है। लेकिन वह बहुत युक्ति संगत नहीं है क्योंकि उस पानी का पुरा ही हिस्सा

सोखकर नीचे चला जाएगा क्योंकि बहुत सारा पानी धूप में सुख जाएगा या बगल के पेड़ पौधे खींच लेंगे। इससे भी पानी का स्तर बहुत नीचे चला जाएगा। फलतः नदीया तथा मालदह जिला आदि में पानी का स्तर इतना नीचे चला जएगा कि वाद में पानी मिलना मुशकिल हो जाएगा। गेहूँ तथा अन्यान्य फलों के बगीचे सुख जाएँगे। उधर भी ख्याल रखना होगा। इसीलिए सिंचाई के लिए नदियों के पानी को काम में लगाना पड़ेगा।

कलकत्ता को बचाने के लिए बन्दरगाह की नाव्यता बरकरार रखना जरुरी है। भागीरथी नदी की बहाव को अक्षुण्ण रखने के लिए फराक्का बाँध का निर्माण हुआ था। आज भागीरथी में जिस परिमाण पानी मिल रहा है उतना परिमाण पानी बंगलादेश को भी मिलना चाहिए। अन्यथा सभी नदियाँ सुख जाएँगी और बंगलादेश ध्वंस हो जाएगा। इसलिए ब्रह्मपुत्र के पानी को धुबड़ी

विषयसूची

से नहर बनाकर, दिनाजपुर, मालदह जिला होते हुए मानिकचक के रास्ते गंगा में फेकने की व्यवस्था करना होगा। ब्रह्म पुत्र की पुरानी रास्ता है धुबड़ी, दक्षिण शालमारा और मानिकचक होते हुए मैमनसिंह जिला, यहाँ पर बहादुराबाद (बहादुरगञ्ज) से बह्मपुत्र बाँए की और मुड़कर भैरवबाजार के पास मेघना के साथ मिल गया है। अभी ब्रह्मपुत्र जिस धारा को पकड़कर बह रहा है, अर्थात पाबना सिराजगञ्ज होते हुए वह नई धारा है। 150 साल पहले भी यह धारा नहीं थी। एकबार तिस्ता में भयंकर बाढ़ आयी। इससे ब्रह्मपुत्र उस बाढ़ के पानी को ढो नहीं सका। बहादुराबाद से दक्षिण की ओर जाकर गोयालन्द में आकर पदमा में मिल गया। पुरानी धारा छुट गयी। उसी के कारण मैमनसिंह जिला में व्यापक रूप से मलेरिया का प्रकोप दिखाई दिया। मैमनसिंह का पुराना नाम था नासिराबाद। नया ब्रह्मपुत्र बाहादुराबाद से गोयालन्द होकर पद्मा में मिल गया। नया ब्रह्मपुत्र का पानी बंगलादेश के काम में लग गया।

विषयसूची

इसलिए ब्रह्मपुत्र के पानी को धुबड़ी से दूसरी ओर चला देने पर कोई हानि नहीं होगी। बांगलादेश को भी काफी पानी मिलेगा।

जो भी हो, नदीया जिला में shallow या अ-गभीर (कम गहराई वाले) नलकूप को लेकर ज्यादे हंगामा करने की जरूरत नहीं है।

गेहूँ में अरवा चावल से अधिक पौष्टिक तत्त्व रहने पर भी गेहूँ में अम्ल (Acid) रहने के कारण 50/55 साल के बाद इससे गैस का शिकायत (gastric trouble) या कालिक दर्द (colic pain) होने की संभावना हो जाती है। बहुत समय यक्ष्मा रोग होने का भी डर रहता है। इसीलिए दोनों समय रोटी खाना उचित नहीं है। इससे मस्तिष्क की भी पुष्टि नहीं होती है। विहार के लोग दिन में

खेत-खलिहान में काम करते है इसलिए गेहूँ भोजन करते है, लेकिन वे चावल भी खाते हैं।

गेहू के पुआल से कागज बनाना लाभकारी नहीं है। लेकिन गोखाद्य के लिए अच्छा है। गेंहूँ के भूसे कबुतरों को खिलाना ठीक नहीं है। क्योंकि इससे कबूतरों के पेट खराब होते हैं। गेंहू के साथ मिश्रित फसल के रूप में पोस्ता भी लगाया जा सकता है।

गेहूँ के साथ जौ मिलाया हुआ रहता है, इसलिए बीज निर्धारण में सतर्क रहना पड़ेगा। बीज के लिए गेंहूँ का फार्म बाँकुड़ा में होने से अच्छा होगा। बाँकुड़ा तथा राढ़ के मनुष्यों का प्रिय खाद्य है पोस्ता। कम से कम डेढ़ करोड़ रूपये का पोस्ता साल में खरीदते है राढ़वासी । फिर भी केन्द्र सरकार इन इलाकों में पोस्ता की खेती की अनुमति नहीं देती है। राढ़वासियों के लिए पोस्ता

कितना अधिक प्रिय है यह एक छोटी से कहानी से समझ में आ जाती है। कहावत है कि प्राचीन काल में राढ़ के मजदूर दिनमें आठ पैसे कमाकर वह तीन पैसे बचाता था और पाँच पैसे लेकर बाजार करने जाता था- खरीदता था दो पैसे का चावल। एक पैसा का तेल। एक पैसा का नमक-तेल-मसला और एक पैसा का पोस्ता। याद रखना चाहिए कि पोस्ता के दाने सात्विक भोजन है। पोस्ता के पौधे राजसिक होते हैं और इससे निकलने वाला आठा तामसिक वस्तु हैं। पोस्ता के पौधों से निकाला गया आठा-मादक द्रव्यों के अन्तर्गत आता है। इसीलिए इसे कहा जाता है-अहिफेन। अंग्रेजी में (opium)।

सभी प्रकार के घासों के बीच सात्त्विक होते हैं। धान को पानी में भिंगोकर धूप में सुखाकर अरवा चावल या अरवा चूड़ा बनता है, वह भी सात्त्विक भोजन है। साधारणतः ग्रामाञ्चलों में

सूत्रधर लोग चूड़ा कूटने का काम करते हैं। धान के चावल से बना हुआ भात को रात में हण्डी में रखकर थोड़ी सी ईमली का पानी मिलाकर रात भर रख देने पर उसमें मादकता आ जाती है। नमक मिरचाई मिलाकर उस पानी को छान कर जो तरल पदार्थ मिलता है उसे अमानी कहते हैं। यह तामसिक वस्तु है यद्यपि लू-लगने पर तथा स्त्रीरोग के लिए यह दवाई का काम करता है। कोकाकोला, कैम्पाकोला ये सब राजसिक हैं। इसलिए यती-व्रती-विधवा-ब्रह्मचारियों को ये सब नहीं पीना चाहिए।

गेंहू भी सात्त्विक है।, लेकिन गेंहू को खमीरा कर जो शराब बनायी जाती है, वह राजसिक है। लेकिन खमीरा किए गए गेहूँ को चोलाई (distrilled) करके जो शराब बनती है वह तामसिक है। रोहूँ से निर्मित सूजी भी सात्त्विक है। Distilled या चोलाई करने के काम में जो वकयन्त्र (retort) ब्यवहृत होता है उसका

आविष्कार बौद्ध-भिक्षु नागार्जुन ने किया था। Bear (बीयर) भी तामसिक है। गेहूँ की शाराब लाभदायक नहीं होता है।

पहले कलमदान, सिन्दुरिया, बादशाभोग इत्यादि धान होते थे। गेहूँ के दो प्रमुख जातियाँ है- (1) दुधिया और (2) ललका। आजकल उत्पादन बढ़ रहा है लेकिन गेहूँ का स्वाद घट रहा है। वैयष्टिक रूप से विज्ञान को उत्साह देने के पक्ष में हुँ। इसलिए वैज्ञानिक लोग जिस प्रकार उत्पादन बढ़ाने में लगे हुए हैं उसी प्रकार स्वाद वढ़ाने के लिए भी प्रयासशील बनें। दोनों प्रजातियों में से ललका गेंहूँ ज्यादे स्वादिष्ट होता है।

जौ और राई अच्छा पशुखाद्य है। विशेष रूपसे घोड़ा के खाद्य के रूप में विदेशों में व्यवहृत होते हैं। लेकिन भारत के गरीब आदमी भी उसे खाते है। विदेशों में सड़ा हुआ आटा जानवर भी

नहीं खाते है। वल्कि एशिया के गरीब देशों के मनुष्य उसे पानी में घोलकर पी जाते हैं।

भुट्टा (मकई)

भुट्टा अमेरिका का फसल है। साहब लोग इसे उस देश से भारत में लाये थे। यह सभी ऋतुओं का फसल है। इसमें (60-80) साठ से अस्सी दिन का समय लगता है। भारत में कहीं-कहीं राजेन्द्र भुट्टा का प्रचलन है जो पचास दिनों में हो जाता है। लेकिन इसका फलन कम है। भारत का राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के नाम से इस राजेन्द्र भुट्टा का नामकरण हुआ है।

विषयसूची

भुट्टा के लिए उपजाऊ जमीन तथा सुखी मौसम की जरूरत होती है। पोधों के जड़ में जल नहीं जमना चाहिए। इसके विपरीत जूट की खेती के लिए भींगी मौसम तथा अधिक वर्षा की जरूरत होती है।

भुट्टा को पीसकर आटा बनाया जाता है। आटा को अच्छी तरह गूँथकर पुड़ी नहीं बनाया जा सकता है। बहुत मुस्किल से बड़ी-बड़ी रोटियाँ बनाई जाती है। अंगिका में मकाई की रोटी को माण्डा या माड़ा कहा जाता है। भुट्टा की छिलकों को हटाकर पीसने पर मैदा बनता है। बाजार में अन्यान्य मैदों के साथ मकई का मैदा मिलाकर बेचा जाता है। भुट्टा का मैदा भुट्टा के आटा जैसे रूखड़ा नहीं होता है। इसी भुट्टा के दानें बालू की खोली में भूजकर पपकर्ण बनाया जाता है। इसका स्वाद उतना अच्छा नहीं होता है, लेकिन इसका खाद्य मूल्य है। भुट्टा का चूड़ा भी होता है। लेकिन

इसे थोड़ा सीझाकर तथा पानी में भींगोकर बनाया जाता है। जपान एक उन्नत देश है। फिर वहाँ के लोग नास्ता के रूप में भुट्टा के चूड़े-जिसे हमलोग cornflake कहते है का व्यवहार करते हैं।

भारत में विहार तथा असम प्रदेश बाहर से धान खरीदते हैं। लेकिन उत्तर प्रदेश को धान नहीं खरीदना पड़ता है, क्योंकि वहाँ के लोग भात कम खाते हैं। बंगाल के बर्धमान जिला में प्रयोजन की तुलना में 21%, (ढाई) गुणा अधिक धान पैदा होता है। बाँकुड़ा, पुरुलिया, कुचविहार में अच्छी वर्षा होने पर धान की कमी नहीं होगी। दूसरी और हावड़ा, चौबीस परगणा, नदीया, मुर्शिदाबाद, मालदह, जलपाइगुड़ी, दार्जिलिंग प्रभृति जिलाएँ घाटती के इलाके हैं। इन सबों में दार्जिलिंग तो पहाड़ी इलाका है। मात्र पाँचमहीनों के लिए भुट्टा पैदा होता है। बाकी खाद्य समतल ईलाका से जुगान दिया जाता है। बर्धमान को DVC का पानी

मिलता है, इसलिए बहाँ पर आमन, आउस तथा बोरो तीन ही प्रकार धान की खेती होती है। हावड़ा में भी तीनों प्रकार का धान की खेती करके उसे स्वयंसम्पूर्ण किया जा सकता है।

भुट्टा सभी ऋतुओं का फसल है। भुट्टा थोड़ा कम उपजाऊ मिट्टी में भी हो सकता है। दार्जिलिंग में टेरासिंग (Terracing) करके मकाई लगाया जाता है। बंगालीस्तान में प्राय सभी जगहों पर आमन धान की खेती है, इसीलिए भुट्टा लगाने का मौका मिलता नहीं है। लेकिन वसन्त ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में यहाँ पर भुट्टा लगाया जा सकता है। अथवा दो फसलों के बीच बफर फसल का रूप में लगाया जा सकता है।

बहुतों की धारणा है कि भूटान की पहाड़ी इलाका में दूसरा कुछ लगाना सम्भव नहीं है। इसीलिए वहाँ पर अधिक मात्रा में

भुट्टा लगाना लाभदायक है। हिन्दी में भुट्टा को मकाई कहा जाता है। बंगला में भुट्टा, अंग्रेजी में Maize। भारत के सभी जगहों पर जहाँ पर मौसम सुखी रहती है तथा बरसात का पानी नहीं जमता है, वहाँ पर भुट्टा की खेती होगी।

दलहनें

बंगाल में शीत-ग्रीष्म-वसन्त का खाद्य के रूप में जान्तव पोटिन का जमाना शेष होने जा रहा है। क्योंकि आजकल देश में सभी जगह गोचारणभूमि का अभाव हो रहा है। आज से कुछ दिन पहले भी बड़े-बड़े मैदान थे उसमें गाय-बैले चरते थे तथा गोबर खाद भी मिलता था। लेकिन जनसंख्या वृद्धि तथा अन्यान्य प्राकृतिक कारणों से वे सब विस्तीर्ण गोचारणभूमि वर्त्तमान मे प्राय खत्म हो रहा है। 'गो' शब्द का अर्थ होता है, जो खड़ा होकर नहीं

विषयसूची

रहना चाहता है, जो हमेशा चरता है। हमेशा पानी में तैरना चाहता है। जान्तव प्रोटिन (animal protein) जीव-जन्तुओं से प्राप्त होते हैं। जैसे-मछली, मांस, अण्डे, दूध, छेना, मकखन आदिसे। अभी पशुपालन की जमीनें घट रही है। भविष्य में जान्तव प्रोटिन खाद्य का काफी अभाव दिखाई पड़ेंगे।

एक-एक देश में एक-एक प्रकार का प्रधान खाद्य (staple food) होते है, जैसे-बंगाल का मुख्य भोजन है भात, अयरलैंड में आलु, और किसी देश में रोटी और मक्खन। एक समय आ रहा है जब मांस भोजी देश जान्तव प्रोटिन के अभाव में काफी मुस्किल में पड़ेगा। गाय या बैलों को एक जगह पर रस्सी में बाँधकर रखा जा सकेगा। लेकिन भंड़ों के लिए विस्तीर्ण चारणभूमि की जरुरत होती है। इसीलिए स्वाभाविक रूप से हमलोगों को जान्तव प्रोटीन

तथा बसा (fat) के विकल्प रूप में दाल के उपर ही निर्भर करना पड़ेगा।

भारत में गुजरात के लोग अधिक मात्रा में निरामिशाषी है। इसीलिए उनलोगों को निरामिष प्रोटिन-दाल के ऊपर निर्भर करना ही पड़ता है। इसीलिए गुजरात के लोग दाल के बेसन का विभिन्न प्रकार के खाद्य वस्तुओं का व्यवहार करते हैं। बंगालीस्तान में मूलतः उरद, अरहर, चना, मुग, मसूर, मटर और कुलथी दाल के रूप में व्यवहृत होते हैं। लेकिन तुलनामूलक विचार से इन सबों में उरद, अरहर तथा चने का खाद्यमूल्य सर्वाधिक है। इन सबों में अरहर बल का जुगान देता है और चना शक्ति का जुगान देता है। लेकिन अरहर को पचाना बहुत कठिन है। चने और भी मजबूत होता है। फिर उरद दाल बल और शक्ति दोनों का ही जुगान देता

है। और इसे पचाना भी तुलनामूलक रूप से सहज है। इन तीनों को छोड़कर दूसरे दालों के बारे में चर्चा करूँगा।

वर्तमान बंगालीस्तान में जो परिमाण दालें उत्पन्न होता हैं, उससे बड़ी जोर पाँच महीने चलते हैं। शेष सात महीनों के लिए अलग राज्यों से दालें मँगाना पड़ता है। बंगाल में केवल नदीया जिला ही दाल उत्पादन में आत्म निर्भर है। सब कुछ मिलाकर मालदह तथा मुर्शिदाबाद इस मामले में किसी तरह अपने पैरों पर खड़े है। उरद दाल के उत्पादन में वीरभूम, बर्धमान, पश्चिम दिनाजपुर, तथा कूचविहार आत्मनिर्भर है। पश्चिमबंगाल से कुछ परिमाण उरद का दाल पञ्जाब तथा चेन्नई में निर्यात किया जाता है। राढ़ के मनुष्य अगर उरद का दाल, पोस्ता, तथा बैर का अम्बल नहीं खाएगा तो उनके शारीरिक भारसाम्य नहीं रहेगा। राढ़ की रूखी मौसम में फाल्गुन से जैठ तक ये सब नहीं खाने पर

विषयसूची

आदमियों के शरीर में टान पड़ता है। नाक से खून बहने लगता है। मूँग तथा मसूर का पुष्टिमूल्य बहुत कम है। और मटर का दाल अधिक खाने पर धातव व्याधि होता है। मसूर दिन में राजसिक तथा रात में तामसिक होता है। रात में मसूर का दाल खट्टा हो जाता है तथा उसका रंग लाल हो जाता है। इसीलिए जो लोग बौद्धिक प्रगति चाहते हैं उनलोगों को मसूर का दाल व्यवहार करना अनुचित है। विधवाएँ भी मसुर दाल का व्यवहार नहीं करती है। तामसिक भोजन होने के कारण आनन्दमार्गियों को भी मसूर का दाल का व्यवहार निषिद्ध है।

अरहर, मूँग तथा उरद को छोड़कर बाकी दालों के विषयो में आलोचना किया जाय। आउस धान काटकर दालों की खेती की जा सकती है। अथवा आमन धान काटने के बाद बड़े किस्म के गुलाबी चना, बड़ा मटर, बड़ा मसूर तथा खेसारी आदि लगाया

जा सकता है। जिस प्रकार आमन धान कट जाने के बाद दो तीन महीनों तक खेतों में पानी नहीं रहता है लेकिन आश्विन की शुरूआत में कादो-कादो भाव रहता है। उसी समय छोटे चने, मटर मसूर तथा खेसारी ये सब पहले से ही पानी में भींगों कर अंकुरित करके पायरा (कबुतरी) फसल के रूप में छिड़क देना होगा। जिस प्रकार पायरा यानी कबूतर को भोज्य वस्तु छिड़क दिया जाता है, उसी प्रकार इन शस्यकणों को खेत में छिड़क दिया जाता है, इसलिए इसे पायरा फसल (secondary crop) कहा जाता है। बड़े चने, मटर इत्यादि पायरा फसल के रूप में परिगणित नहीं होगें, क्योंकि आश्विन में धान के पौधे बड़े हो जाते हैं। पौधों के नीचे तक सूर्य का प्रकाश पहुँच नहीं पाता है। इसलिए इन सबों में अंकुर नहीं जमेंगे। पौधे नहीं होंगे। इसलिए छोटे किस्म के मटर, चने, मसूर लगाना पड़ेगा। (छोटे मटर के पत्ते कड़ूए होते हैं, इसलिए इनके पत्ते खाने लायक नहीं होते। इसके अलावे इनके पत्ते हानिकारक भी होते हैं।)

धान कटनी के समय इन दालों के पौधे भी कट जाते है। इन पौधों में नए-नए फँगड़े निकलेंगे और उन फँगड़ों में अधिक संख्या में फूल भी आएँगे, फल भी आएँगे। फलस्वरूप फलन की मात्रा भी बढ़ जाएँगे। इनके कटे हुए पत्ते तथा डंठलों का व्यवहार गोखाद्य के रूप में भी किया जाएगा। यद्यपि जमीन पर अलग से खाद नहीं डाला जाता है, फिर भी दालों को धानों के लिए दिया हुआ खाद प्राप्त होगा, धान के खेतों में खर-पतवार हटाने के बाद किए गए अतिरिक्त खाद भी प्राप्त होंगे। फलतः फलन बढ़ जाएगा। फाल्गुन के महीने में कबुतरी फसल कट जाने के बाद उस जमीन पर तिल, सोयाबीन (ग्रीष्मकालीन) लगाये जा सकते हैं। इस समय बंगाल का अधिकांश जमीनें खाली रहते हैं। इन सबों की खेती होने पर जमीन अव्यावहत अवस्था में पड़े नहीं रहेंगे। आउस की खेती करने के बाद जहाँ पर पानी की व्यवस्था है, वहाँ पर मिट्टी में दो बार हल चलाकर बड़े किस्म के मटर, चने आदि दालें लगाये

जा सकते है। बड़ा मटर सफेद होते है, दलहनों को जाँते में पीसने पर वे दो-टुकड़ों में बँट जाते हैं। लेकिन मसूर को बालू मिला कर पीसने पर खाड़ी मसूर मिलेंगे।

खेसारी अधिक खाने पर पेट खराब होता है। इसका गन्ध तथा स्वाद थोड़ा कम होता है। लेकिन इस के खाने से पक्षाघात (paralysis) होने का डर रहता है। अभी एक प्रकार सरकारी खेसारी का प्रचलन हुआ है। जिससे पेट खराब नहीं होते। पक्षाघात से बचने के लिए रात में गरम पानी में भिंगोकर दूसरे दिन अच्छी तरह से धो लेना पड़ेगा। इससे उसके देह पर लगा हुआ विष हट जाएगा। खेसारी के छिलके के नीचे तथा दानों के ठीक उपर में एक प्रकार विष लगा रहता है। जिससे पक्षाघात होता है।

वीरभूम का राजनगर, दुबराजपुर, मामुदबाजार, मुरारई, रामपुरहाट अञ्चल में धान के बाद गेहूँ लगाने पर अच्छा फलन होगा। खेसारी की भूसी गाय-भैंसों के खाद्य है। दाल मनुष्यों के लिए पुष्टिकर खाद्य है। राढ़ का पानी तथा हवा अच्छा है। मनुष्यों की दैहिक संरचनाएँ भी अच्छी है। लेकिन पुष्टिकर खाद्यों के अभाव से सहज ही कुष्ट रोग ग्रस्त हो जाते हैं। पठारी इलाके में इस बीमारी को बड़ा रोग कहा जाता है। वीरभूम में गरीबी होते हुए भी कुष्ठ रोग नहीं है। क्योंकि वीरभूम में मिट्टी के नीचे गन्धक है। मटर के लिए संस्कृत शब्द है कलाय। इसी कलाय शब्द से बंगला में कड़ाई (कड़ाई सूँटी) शब्द आया है। इसका अंग्रेजी शब्द हुआ Pea । हिन्दी में भी कड़ाई होती है। मसूर का संस्कृत हुआ मुसुरी, अंग्रेजी में lentil

चना के लिए संस्कृत शब्द है चनक तथा बुण्टिक (चनक > चनय > चाना)। चनक से उत्तर भारत में चाना। बुण्टिक शब्द से राढ़ में बुट शब्द आया है। बुण्टिक > बुण्टय > बुण्ट > बुट । चना के लिए अंग्रेजी शब्द है Bengal gram । खेसारी के लिए संस्कृत शब्द है त्रिपुरी, अंग्रेजी में Horsegram त्रिपुटी > त्रिपुट > तेवड़ा। उरद का अंग्रेजी blackgram । इसका दूसरा नाम है माषकलाय। यह दाल ऊँची जमीन तथा साधारण उपजाऊ जमीन पर ही पैदा होते हैं। इसके साथ सोयाबीन, चीनाबादाम, सूरजमुखी लगाया जा सकता है। यह चार-पाँच महीने का फसल है। ज्यादे खाद डालने पर पौधे ज्यादे लम्बे होंगे परन्तु फलन नहीं होंगे। इसलिए इन की डालियाँ बीज-बीज में काट देने पड़ेंगे। कटी हुए डालियाँ तथा पत्ते पशुओं का भोजन होगा। इससे गाय का दूध गढ़ा होता है। धान के पौधों भी अगर अधिक खाद डाला जाये तो फलन अच्छा नहीं होगा, बल्कि पौधे लम्बे हो जाएँगे।

मुँग

सोणा मुग बारह महीनें का फसल है। लेकिन बरसात में मुँग नहीं लगाना चाहिए। जिस जमीन पर उरद की खेती की जाती है, उसमें मुँग नहीं लगाना ही अच्छा है। क्योंकि मूँग की खेती साल में कभी भी की जा सकती है। लेकिन उरद की खेती, साल में एक ही बार होती है। उरद एक फसली फसल है। मूँग की अंग्रेजी green gram । मुँग किसी भी फसल के साथ पायरा (कबुतरी) फसल के रूप या मिश्र फसल की रूप में किया जा सकता है। इसके पौधे गाय-भैंस के भोजन होते हैं। मूँग की शूटी पक जाने पर खेत से हटा लेना चाहिए। दूसरों दलहनों के साथ मूँग की विशिष्टता है कि इसकी झड़ाई मड़ाई नहीं होती है, इसकी शुंटिया (छिमिया) निकाल ली जाती है।

अरहर

अरहर बरसात की शुरूआत में ही लगाया जाता है। अरहर की मुख्यतः दो प्रजातियाँ होती है- माघी और चैती। हुगली जिला के बलागढ़, नदीया तथा मुर्शिदाबाद जिला में अरहर की खेती अच्छी होती है। अरहर के साथ रेड़ी की भी खेती होगी। इससे जमीन का उचित व्यवहार होता है। आउस की भी खेती हो सकती है। कार्तिक में उस जमीन पर कन्द फसल (tuber crops) भी लगाया जा सकता हैं। अरहर के साथ सकरकन्द तथा सरबती आलु दोनों की ही खेती होगी। एक ही साथ दोनों फसल मिल जाएँगे। नदीया में अरहर के साथ आउस धान का बीज बो दिया जाता है। पश्चिम राढ़ की टाँड़ जमीन पर भी आउस की खेती होगी। रेड़ी के पत्ते खाकर जो रेशम कीट जन्म लेता है उससे कृत्रिम रेशम काफी मात्रा में पाए जाते है, जिसमे सस्ता सिल्क तैयार होगा।

उससे पैंट तथा कोट भी बनेंगे। इसीलिए रेड़ी से एकही साथ अर्थकरी फसल तथा खाद्य फसल का उत्पादन हो सकता है।

तम्बाकु

दुमका, धनबाद, पुरुलिया, सिंहभूम, बाँकुड़ा, झाड़ग्राम तथा पश्चिम बर्धमान में एक समय केन्दुपत्तियों का जंगल था। वीरभूम में भी था। कवि जयदेव का जन्मस्थान (केन्दु विल्व) केन्दुली है। कलकत्ता में हमलोग बड़ा तथा छोटा विशेष में गाब कहते हैं। राढ़ी बंगला में इसे केन्द कहते हैं। असल में बड़े प्रजाति का बंगला नाम है गाब, छोटे प्रजाति का नाम है केन्द। संस्कृत में बृहत केन्दु तथा क्षुद्र केन्दु । लेकिन गाब के पत्तों से बीड़ियाँ नहीं बनाए जा सकते है, यह काम केन्दु-पत्तियों से ही किया जा सकता है।

विषयसूची

जबतक बीड़ी-शिल्प बरकरार है तब तक राढ़ तथा भारत के अन्यान्य जगहों पर केन्दु पत्तों का वाणिज्यिक व्यवहार होगा, उसके बाद नहीं होगा। बीड़ी साधारंण मनुष्यों की सस्ती नसा है। लेकिन आदमी जब समझ जाएगा बीड़ी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, तब वे लोग मनस्तात्विक अर्थनीति (Psychic Economy) के नियमानुसार जिस प्रकार एक तरफ से केन्दुपत्तियों को पंक्ति से निकाल देगा उसी तरह तम्बाकु की माँग भी घट जाएगी।

उस समय लाख-लाख बीड़ी श्रमिकों तथा तम्बाकु उत्पादनकारी शिल्पों में जड़ित विपुल संख्यक श्रमिकों के लिए भी वैकल्पिक कर्म संस्थानों के बारे मे भी सोचना पड़ेगा। तम्बाकु के लिए ठीक वर्तमान में वैदेशिक माँगों पर निर्भर करने पर नहीं

चलेगा। क्योंकि वर्मा (म्यानमार) तथा कई अन्यान्य देशों में तम्बाकु का मान भारत के तम्बाकु से अधिक उन्नत हैं। भारत की औरतों में तम्बाकु पत्ते चबाने की प्रथा घटती जा रही है। उत्तर भारत के लोग भी खैनियों का व्यवहार घटा रहे है। लेकिन जबतक भारत में बीड़ी का व्यवहार रहेगा तब तक तम्बाकु की खेती होगी। तब तक विभिन्न राज्यों के वन विभाग केन्दु पत्तियाँ बेचकर कुछ पैसे कमा ही लेंगे।

वर्त्तमान में पुरुलिया, धनबाद, बलरामपुर, मानबाजार, बराहबाजार, झाड़ग्राम, विष्णुपुर, मुर्शिदाबाद का नवादा धुलियान, वीरभूम का पाकुड़-ये स्थान बीड़ी उत्पादनों के लिए नामी केन्द्र है। इन इलाकों में अधिकांश बीड़ी-श्रमिक संथाल तथा बंगाली मुसलमान जनगोष्ठियों के लोग है। इस काम में नियुक्त श्रमिकों में बहुत लोग क्षय रोग से ग्रसित हैं।

विषयसूची

वस्त्र उत्पादन

किसी अञ्चल के जनसाधारणों का पोशाक परिच्छद दो उपादानों पर निर्भर करते हैं- (1) स्थानीय जलवायु (2) बुनाई सामग्रिया (knitting materials)। इन दो विषयों पर बंगालीस्तान की परिस्थिति के सम्पर्क में आलोचना किया जाएगा।

बंगालीस्तान के परिप्रेक्ष्य में वस्त्र उत्पादन को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे-

(1) तुला (cotton)

(2) तुंत-रेशम (mulberry silk)

(3) अतूंत-रेशम (Non-mulberry silk)

(4) कृत्रिम रेशम तथा अन्यान्य उपादान (Synthetic silk and other materials)

(1) तुला (रूई) : तुला (रूई) दो प्रकार के होते हैं। (क) पेड़ों के कपास (ख) खेती के द्वारा उपजाए गए कपास। कपास का पेड़ तीन या चार साल बाद फल देता है, उसके बाद मर जाता है। पेड़वाले कपास के लिए सुखी मौसम की जरूरत होती है। इसी लिए राढ़, त्रिपुरा, इन सभी जगहों पर कपास का पेड़ जन्म लेते हैं। इस कपास को देव-कपास कहते हैं। मुर्शिदावाद, नदीया, तथा ढाका जिला में पेड़ वाले कपास की खेती अच्छी नहीं होगी, लेकिन इस इलाकों से उन्नत-किस्म के रेशमी वस्त्र विदेशों में निर्यात किया जाता था। इन सभी इलाकों में अभी भी अच्छे ताँती

लोग हैं। रेशम तन्तुएँ मालदह तथा बाँकुड़ा से आता था। ये इलाके कपास के पेड़ों के लायक नहीं है। लेकिन खेती की जाने लायक कपास के लिए उपयुक्त हैं। पञ्जाब, हरियाना, महाराष्ट्र में कपास की खेती है। इन सभी इलाकों में पेड़-कपास भी हो सकते हैं लेकिन बहुत अच्छे नहीं होंगे। पठान काल में उत्तरबंग तथा त्रिपुरा रेशमी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे।

(ख) खेती के द्वारा उपजाए गए कपास की खेती राढ़ तथा त्रिपुरा दोनों ही जगहों पर हो सकती है। Hybrid धान की खेती करने के बाद उस जमीन पर नवम्बर से फरवरी तक तीन-चार महीनों के बीच खेती कुरनेवाले कपास को लगाना पड़ेगा। इन जमीनों पर सरबती आलु की खेती हो सकती है। सरबती आलु से चार प्रकार की चीजें प्राप्त होंगे - (1) चीनी (2) गुड़ (3) yeast (4) अलकोहल। राढ़ और त्रिपुरा में गाछ-कपास होगा और

कपास की खेती भी होगी। उत्तरबंग तथा पूर्वी बंगाल में केवल खेती का कपास होगा।

(2) तूंती-रेशम : तूंत रेशम की खेती होगी राढ़ में और कुछ परिमाण मध्य बंगला, त्रिपुरा तथा उत्तरवंग में। पूर्वी बंगाल का मौसम रेशम की खेती के लायक नहीं है। राजशाही, रंगपुर, दिनाजपुर, यशोर, कुष्टिया इन सभी इलाकों का जलवायु कुछ हद तक शुष्क है। इसलिए इन अञ्चलों में तूंत-रेशम की खेती हो सकती है। त्रिपुरा में तूंत की खेती बहुत अच्छी होगी। और इस खेती से त्रिपुरा काफी पैसे कमा पाएँगे। महीन रेशम से प्रस्तुत 'गरद' और गुटी को छेद करके कीड़ा निकले हुए रेशम की गुटी से तैयार वस्त्र की कहते है 'मटका'।

विषयसूची

(3) गैर-तूंती रेशम : उत्तरबंग, त्रिपुरा तथा बंगलादेश इन सभी इलाकों में गैर-तूंती रेशम की अच्छी खेती होगी। गैर-तूंती रेशम को कहा जाता है तसर, एण्डी, मुगा। रेड़ी के पेड़ से ये सब मिलते है। शहजन के पेड़ से मुंगा, बैर के पेड़ से तसर प्राप्त होता है। अकवन के पेड़ से भी तसर प्राप्त होता हैं। तसर दो प्रकार होते है- एक महीन दूसरा थोड़ा मोटा किस्म का जिसे चादर प्रस्तुत करने के लिए व्यवहार किया जाता है। असम में इसे ही एण्डी कहते हैं।

(4) कृत्रिम रेशम तथा अन्यान्य उपादान : (क) नाइलन, ये सब (ख) रेयन, (ग) जूटस-ऊल (जुट तन्तुए तथा ऊल) कृत्रिम रेशम है। नाइलन तैयार होगा डाब, धान का तुष (भूसा) नारियल की खोली और जूट से। रेयन बनेगा जूट की खाल, अनारस की पत्ते, और केले का थोड़ से। इस मामले में त्रिपुरा को ईश्वर का

विषयसूची

आशीर्वाद कहा जाता है। नाइलन तथा रेयन से त्रिपुरा काफी रूपए कमा सकेंगे।

राढ़ और त्रिपुरा में पशम (wool) तैयार होंगे। राढ़ में पशुचारण की काफी सम्भावनाएँ हैं। वहाँ पर भेड़ों का पालन किया जा सकेगा। राढ़ और त्रिपुरा में पशम और मध्य बंगाल में जूट से तैयार नाइलौन इन दोनों को मिलाकर उन्नत किस्म के (Jute's wool) उत्पादित हो सकेगा। बंगालियों के निकट तथा बंगाल की जलवायु के लिए Jute's-wool का पोशाक बहुत ही प्रयोजनीय होंगे।

जूट से चार प्रकार की चीजें उत्पादित होंगे।

(1) मोटे कपड़े जिससे जूट के थैले बनेंगे।

(2) कार्पेट तैयार होगा।

(3) सुटिंग के लिए उपयोगी तन्तुएँ।

(4) सर्टिंग के लिए उपयुक्त तन्तुएँ।

सार्टिंग के लिए तन्तुएँ प्रयोजनीय वस्त्र कारखानों को तैयार करना होगा। लेकिन वस्त्रों का निर्माण कुटीर शिल्प के रूपों में घर-घर में होगा, जिसमें परिवार के बाल-बच्चे तथा छोटी-छोटी लड़कियाँ भी भाग ले सकेंगे। हर अनुमण्डल में एक-एक करके कपड़ा मिल स्थापित करना होगा।

वर्त्तमान में तिसी (linseed), तिल तथा भींडी इत्यादि से भी सुक्ष्म तन्तुओं का निर्माण किया जा रहा है। इन सबों से सुक्ष्म तन्तुएँ बनाकर अहमदाबाद के मिलों में नाइलन के कपड़े तैयार किए जा रहे हैं। बंगलीस्तान के सभी जगहों पर इस प्रकार के

विषयसूची

नाइलन कपड़े तैयार किए जा सकेंगे। तिसि के बीज तथा तिलों के छिलकों से आटा का विकल्प खाद्य के रूप में व्यवहार किया जा सकेगा। तिसियों के बीजों से चार प्रकार के चीज उपलब्ध होंगे।

(1) जमीन के लिए (fertiliser) खाद, (2) खाद्य, (3) तेल, (4) सूक्ष्म तन्तुएँ।

भिण्डियों के बीजों से भी चार प्रकार के चीज प्राप्त होंगे। जैसे (1) जमीन के लिए खाद (2) तेल (3) खाद्य, (4) सुक्ष्म तन्तुएँ तैयार किए जा सकेंगे।

जूते निर्माण के मामले में सस्ती जूट से प्लास्टिक तैयार होंगे। जलकुम्मी से भी प्लास्टिक तैयार होंगे। मेस्ता वास्तव में जूट

(पाट) नहीं हे, यद्यपि इसे पाट ही कहा जाता है। पाट (जूट) का संस्कृत है पट्ट या 'कष्टक'। संस्कृत कष्टक > कष्टता > कष्टा।

तीन-चार हजार वर्ष पहले भी बंगाल की लड़कियाँ पट्टवस्त्र अर्थात् पाट (जूट) की साड़ियाँ पहनती थी।

गृह-निर्माण तथा अन्यान्य निर्माण सामग्रियाँ

निर्माण सामग्रियाँ का मतलब तीन प्रकार की सामग्रियों का बोध होता है।

(1) गृह निर्माण की सामग्रियाँ

(2) जहाज निर्माण की सामग्रियाँ और

(3) अन्यान्य उपादान

विषयसूची

जहाज निर्माण की सामग्रियाँ

जहाज निर्माण का एक प्राचीन ऐतिह्य बंगाल में था। वैदिक युग से अर्थात प्राय पाँच हाजार वर्ष पहले से ही बंगाल में जहाज तैयार किया जाता था। जहाज तैयार करनेवाले इलाके दक्षिणबङ्ग में था। मिदनापुर, हाबड़ा, चौवीस परगणा अञ्चल में। उस समय मिदनापुर दण्डभुक्ति के अन्तर्गत था। हावड़ा जिला था बर्धमान भुक्ति के अन्तर्गत। और चौबीस परगणा था नदीया या सम्तट भुक्ति के अन्तर्गत। बंगलादेश या खुलना, बाखरगञ्ज (पुराना नाम चन्द्रद्वीप) । नोवाखाली (पुराना नाम भल्लुका > भुलुआ) और चट्टग्राम में भी जहाज निर्माण केन्द्र था। इन सभी इलाकों में लोग जहाज निर्माण में निपुण थे। दक्षिणबङ्ग में गराण तथा सुन्दरी लकड़ी की प्रचुरता रहने के कारण जहाज निर्माण का

उपयुक्त प्रचुर मात्रा में गराण की लकड़ियाँ मिलना आसान था। गराण की लकड़ियों से नाव, जहाज आदि का निर्माण होता था। स्थानीय सूत्रधर तथा मछुआरों ने इन सभी लकड़ियों से जहाज का निर्माण करता था। दक्षिणी बंगाल में अभी भी जहाज तथा नाव बानने के लिए उपयोगी लकड़ियाँ अच्छी तरह से पाए जाते हैं।

जहाज निर्माण के लिए जिन धातुओं की जरुरत होगी वे राढ़ से प्राप्त होंगे। इस्पात, मैंगनीज, चाँदी, तम्बा आदि का विशाल भण्डार राढ़ में मौजुद हैं। वहाँ से जहाज निर्माणकारी उपयुक्त धातुएँ प्राप्त हो जाएँगे। अर्थात् जहाज निर्माण हेतु प्रयोजनीय किसी भी सामग्री की कमी राढ़ में नहीं होगा। बंगालीस्तान जहाज-निर्माण शिल्प में आसानी से आत्मनिर्भरता अर्जन कर पाएँगे। सुन्दरवन का कुल इलाका चार हजार वर्गमील है। इसमें से मात्र 1600 वर्गमील जमीन पश्चिम बंगाल में हैं। शेष बृहत अंश बंगलादेश के

विषयसूची

अन्तर्गत है। बंगला देश सरकार सुन्दरवन के विराट अंश में जंगल काटकर खेती करना शुरू कर दिया है। खुलना, वाखरगञ्ज तथा नोआखाली में जहाज निर्माण केन्द्र तैयार किया जा सकता है। इधर वसीरहाट, डायमण्डहारबर तथा अलीपुर का परिवेश जहाज निर्माण के अनुकुल हैं।

यानवाहन निर्माण की सामग्रियाँ

(vehicle building materials)

यानवाहन निर्माण का प्रधान उपकरण रबर है। उत्तरबंग, डूयार्स, तराई, धुबड़ी, गोआलपाड़ा, कोकराझाड़, झाँपा अञ्चल में रबर की खेती हो सकती है। त्रिपुरा में भी रबर मिलेंगे। रबर की खेती के लिए जरूरत है नियमित वृष्टि, लैटराइट सयेल (लाल

मिट्टी) और ढलान जमीन। इसलिए प्रयोजनीय रबर बंगालीस्तान में ही मिलेंगे। अन्यान्य प्रयोजनीय धातव वस्तुएँ राढ़ से ही प्राप्त हो जाएँगे। मैंगनीज, अबरख, चाँदी, पारा (Mercury), कोयार्ज, तम्बा ये सब चीजें राढ़ से उपलब्ध हो जाएँगे। झालदा, आड़सा, पुञ्चा, जयपुर तथा खातरा अञ्चल में इन सब धातुओं का प्रचुर भण्डार हैं।

गृह निर्माण की सामग्रियाँ

गृह निर्माण के लिए प्रयोजनीय सामग्रियों की आपूर्ति के लिए उत्तरबंग, त्रिपुरा तथा पार्वत्य चट्टग्राम में एक अच्छा व्यवसाय शुरू किया जा सकता है। गृह निर्माण के उपकरणों में एक है सिमेण्ट । उसके बाद ईंट। समग्र बंगालीस्तान में ही ईंट तथा टाली का निर्माण किया जा सकेगा। इसके अलावे भी राढ़ की

मिट्टी में कैलसियाम हाईड्रायट मिलेंगे जिससे चूना प्राप्त किया जा सकेगा। जलपाइगुड़ि के उत्तरांश में, जयन्ती पहाड़ के हाइड्रो अक्साइड अञ्चल में डलोमाइट चूना पत्थर काफी मात्रा में मौजुद हैं। दीवानगिरि पहले बंगाल का अंश था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय दीवानगिरि भूटान के सरकार को दे दिया गया। दीवानगिरि में भी डलोमाइट तथा चूना पत्थर मौजूद है।

दक्षिण बंग के उपकुल (तटवर्ती) अञ्चल के लिए

सितुआ तथा शंख से प्रयोजनीय चूना प्राप्त हो जाएँगे। राढ़ के दक्षिण में जो चूना का भण्डार है वे अभी माड़ोवारियों के दखल में है। वहाँ से चूना बाहर भेजकर उससे सिमेण्ट, तैयार कर रहा है। झालदा, पुरुलिया, तथा बाँकुड़ा में तुरन्त सिमेण्ट का कारखाना बनाना चाहिए। राढ़ में चुनापत्थर, घुटिंग, डलोमाइट, सितुएँ तथा शंख से चूना का निर्माण किया जा सकेगा। सिलेट के उत्तर में भी

विषयसूची

चूना पत्थर मिलेंगे। खासिया-जयन्तिया मौलवी बाजार और हबिगञ्ज छोड़कर सिलेट में चूना पत्थर पाए जाएँगे। राढ़ की मिट्टियों में कैलसियाम है। इस लिए यहाँ पर संतरे की भी खेती की जा सकती है। राढ़ में कैलसियम कार्बोनेट तथा कैलसियम फसफेट हैं।

गृह-निर्माण के लिए प्रयोजनीय सिमेण्ट बंगालीस्तान के विभिन्न अञ्चलों में प्राप्त होंगे। आमन धान के भूसा से, पुआल से (उसके साथ घुटिंग मिलाकर) उच्च मान का तथा कम दाम वाले सिमेम्ट तैयार किए जा सकेंगे। राढ़, उत्तरबंग, मैमनसिंह, सिलेट तथा त्रिपुरा के दक्षिण पश्चिम अञ्चल में सिमेण्ट का कारखाना धान के भूसा से बनाया जा सकेगा। इसलिए सिमेण्ट भी सहज लभ्य होगा। घुटिंग तथा चूना पत्थरों से भी सिमेण्ट बनेंगे।

गृह-निर्माण के लिए एक अन्य उपकरण है बालु। भारतवर्ष में उत्कृष्ट श्रेणी का बालु है मगरा तथा पाण्डुआ के बालुओं के खान में। मगरा दामोदर का परित्यक्त खात है। यहाँ पर काफी मात्रा में बालु है। वह बालु उत्कृष्ट प्रकार के हैं।

उत्तरबंग तथा बंगलादेश के पूर्वाञ्चलों की जिलाएँ पहले त्रिपुरा से गृह निर्माण की सामग्रिया ले आते थे। छावनी के लिए छन लाया जाता था। राढ़ के रास्तों के बगल में काफी मात्रा में घुटिंग पाए जाते हैं। बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती इलाकों में सितुए तथा शंख जिससे चूना तैयार किए जा सकेंगे पाए जाते हैं, झालदा में तुरन्त सिमेण्ट कारखाना बनाना उचित होगा। बंगालीस्तान के बहुत सारे गाँवों में सिमेण्ट का कारखाना तैयार किया जा सकता है। हबिगञ्ज को छोड़कर सिलेट में सभी जगह चूनापत्थर है, मैमनसिंह के ब्राह्मणबेड़िया में जमीन के नीचे प्राकृतिक गैस है,

ढाका के नारायणगञ्ज तथा भैरवबाजार में भी जमीन के नीचे प्राकृतिक गैस है। ये सभी वस्तुएँ गृह-निर्माण के काम में लगेंगे।

घर बनाने के लिए दरवाजे, खिड़कियाँ तथा अन्यान्य सामग्रियाँ सब कुछ कारखानों में तैयार होंगे। सभी उपकरण कारखानों से निकालकर सात-आठ दिनों के अन्दर ही घर बना लिए जा सकेंगे।

अतः बंगलीस्तान गृह-निर्माण के मामले भी आत्मनिर्भरता अर्जन कर पाएँगे।

शिक्षा-उपकरण

विषयसूची

भाव प्रकाश का स्वाभाविक वाहन मातृभाषा है। बंगालियों की मातृभाषा बंगला है। पूर्व में आराकान से पश्चिम में रामगढ़ या पारसनाथ पहाड़ तक बंगालीस्तान का इलाका है। उत्तर में निम्न हिमालय या तीनधारिया से दक्षिण में बंगाल की खाड़ी का Delta अञ्चल तक। दक्षिण का डेल्टा अञ्चल का मतलब गंगा-ब्रह्मपुत्र के तथा राढ़ की सभी नदियों की उपनदियाँ, शाखा नदियों को लेकर दक्षिण का delta अञ्चल तैयार हुआ है, वहाँ तक।

बैदिक युग में बंगाल को समतट तथा बंगभूमि कहा जाता था। राढ़ अञ्चल को कहा जाता था राङ्ग बंगाल बंग आल। यहीं बंगला पार्सियन भाषा में हो गया बंगाल, तुर्की भाषा में लातिन भाषा में 'बांगाला', चीनी भाषा में 'बाञ्जाल', संस्कृत में बंग देश

या राढ़ और बंगला में बंगलादेश, अंग्रेजी में बेंगाल, ऊर्दू में बांगाल।

मागधी प्राकृत से हुआ बंगला भाषा। मागधी प्राकृत की शुरूआत साढ़े तीन हजार साल पहले हुई है। आधुनिक बंगला शुरु हुई है प्राय साढ़े सात सौ वर्ष पहले। बंगला लिपि शुरु हुई है प्राय 1200 वर्ष पहले से, और बंगाली जनगोष्ठी प्राय 5000 बर्ष पुरानी है। वर्त्तमान में यह भाषा 16 करोड़ लोगों की मातृभाषा है। बंगालीस्तान के लोगां की शिक्षा का स्वाभाविक माध्यम होगा बंगला। शिक्षा का दूसरा माध्यम होगा अंग्रेजी। क्योंकि अंग्रेजी एकाधिक भाषाभाषी मनुष्यों के साथ योगसूत्र रक्षाकारी भाषा के रूप में स्थान प्राप्त करेगा। इसके अलावे संकृत भाषा को भी निम्न स्तर से ही आवश्यक पाठ्य विषय के रूप में पढ़ाना होगा। पृथ्वी में बहुत लम्बे समय से ही बंगालीस्तान शिक्षा का प्रधान केन्द्र रहा

है। प्राय पाँच हजार वर्ष पहले चीन से लोग विद्यार्जन के लिए बंगाल में आते थे। बंगला में तीन स्थानों पर विद्यार्जन का केन्द्र (seats of learning) था। विक्रममणिपुर अर्थात वर्त्तमान विक्रमपुर, दूसरा बर्धमान, और तीसरा था कन्थिका अर्थात काँथि में।

शिक्षा की पहली सामग्री है, कागज। कागज के लिए प्रयोजनीय सामग्रियाँ निम्नलिखित सामग्रियों से प्राप्त होंगे।

(1) बाँस से (वाँस से नाइलौन भी तैयार होंगे)

(2) पाटकाठी (जूट के डंठल) से

(3) मेस्ता पाट से

(4) एरोकेरिया नामक एक प्रकार झाऊ गाछ से

(5) बोरो धान के पुआल से

(6) भुट्टा (मकई) के दानों को हटाकर जो बलरी (लम्बा तथा कठिन चीज) रहता है उससे

(7) बिचाली घास से

शिक्षा की अन्यान्य सामग्रियाँ अर्थात कलम, निब, दवात आदि के लिए प्रयोजनीय सभी प्रकार के उपकरणों राढ़ से प्राप्त होंगे।

निम्नलिखित वस्तुओं से रंग प्राप्त होगें :-

हेमाटाइट (Haematite) एक प्रकार गहरा लाल रंग का पत्थर जिससे लोहा मिलते हैं, तूंत (Blue vitral) फेरम सलफेट,

पेड़ों से प्राप्त नील, रासायनिक प्रणाली में कृत्रिम रूप से इन सभी उपकरणों के सहारे ही शिक्षा उपकरण के मामले में बंगालीस्तान को आत्मनिर्भर किया जा सकेगा।

दवाइयाँ

राढ़ में खनिज सम्पद का विपुल भण्डार है। अगर ठीक तरीके से व्यवहार करके वहाँ पर शिल्प निर्माण किया जाय तो युरोप का श्रेष्ठ शिल्प सम्पद पूर्ण इलाका रूड़ से भी राढ़ अधिक समृद्ध हो उठेंगे। राढ़ में प्रचुर मात्रा में कोयला, अंगार-गैस (coal-gas) तथा भूगर्भनिःसृत गैस (natural gas) मौजूद है। शिल्प कारखाने का निर्माण के लिए वे सब सम्पद काम में आएँगे। सीसा तैयार करना तथा रसायनागार की यन्त्रपाति (Appratus) इसके लिए जो उपकरण चाहिए सबकुछ बंगालीस्तान के दक्षिण-पश्चिम

अञ्चल से प्राप्त होगें। विशेष करके, हुगली जिला में। राढ़ में काफी मात्रा में सीसा, मैंगनीज, लोहा, तम्बा तथा पारा आदि मौजुद हैं। ये सब धातुएँ दवाइयाँ तथा चिकित्सा विद्या हेतु प्रयोजनीय यन्त्रादि उत्पादन के काम में लगेंगे।

पेड़-पौधों से प्रस्तुत दवाइयाँ

(Medicinal herbs)

बंगाल गरम तथा आर्द्र जलवायु का देश है। यहाँ के अधिकांश लोग गरीब हैं। जनसाधारण के अधिकांश लोग बुखार, पेट की बीमारी तथा पेचिस आदि से भूगता है। इन सभी बीमारियों के लिए प्रयोजनीय दवाइयाँ बंगालीस्तान के विभिन्न स्थानों में प्राप्त पेड़पौधों से प्राप्त होंगे।

विषयसूची

(1) उत्तरबंग का डुयार्स, गोयालपाड़ा, दार्जिलिंग का समतल भूमि तथा झाँपा जिला में प्रचुर मात्रा में भेषज औषध (Medicinal herbs) प्राप्त होंगे। वर्त्तमान में झाँपा जिला नेपाल के अन्तर्भुक्त है। पहले झाँपा जिला कूचविहार में था। गोर्खाराज पृथ्वीनारायण शाह ने बलपूर्वक झाँपा जिला को कूचविहार के राजा के निकट से छीन लिया ता। झाँपा जिला के लोग रंगपुरी बंगला में बातें करते हैं। डुयार्स तथा उत्तरबंग के अन्यान्य अञ्चलों में औषधीय पेड़-पौधों (medicinal herbs) काफी मात्रा में प्राप्त होंगे। बंगाल की साधारण बीमारी बुखार, पेट की बीमारी, तता पेचिस के लिए ये पेड़पौधे बहुत अधिक काम में आएँगे।

(2) पेड़-पौधों के मामले में अन्य कई अञ्चलों में से असम, मेघालय तथा सुन्दरवन उल्लेखनीय है।

(3) पेड़-पौधों के लिए तीसरा महत्वपूर्ण अञ्चल है राढ़ तथा त्रिपुरा ।

बंगलीस्तान के शेष समतलभूमि में धान की खेती होती है। इसलिए इन इलाकों पर पेड़-पौधे नहीं होगें।

बंगाल की सामाजिक-अर्थनैतिक संभावनाएँ

खनिज दवाइयाँ

खनिज दवाइयों के मामले में राढ़ सबसे अधिक समृद्ध हैं। राढ़ का झाड़ग्राम, वीरभूम, धनबाद, पुरूलिया, सिंहभूम, राँची के बंगलाभाषी अञ्चलों में काफी मात्रा में खनिज सम्पद मौजुद हैं,

जिन सबों से प्रयोजनीय दवाइयाँ तैयार की जा सकेंगी। राढ़ में प्रचुर मात्रा में रसाञ्जन (antimony) तथा युरिया मिलेंगे। कार्सियंग पहाड़, अयोध्या पहाड़, तिलाबनी, पंचेत तथा दालमू पहाड़ में कुइनाइन मिलेंगे। चिकित्सा सम्बन्धी यन्त्रपातियों के लिए प्रयुक्त होनेवाले प्रचुरमात्रा में सामग्रियाँ मौजुद हैं बंगालीस्तान के दार्जिलिंग के कार्सियंग इलाके में। दवाइयों के लिए उपयुक्त पेड़-पौधे भी मिलते हैं. लेकिन कालिम्पंग की जलवायु में आर्द्रता रहने के कारण यहाँ पर अच्छी औषधियाँ प्राप्त नहीं होंगे। कार्सियंग का पुराना नाम था खरसान। एक समय यह सिक्किम का हिस्सा था। वर्त्तमान नाम हुआ है कार्सियांग, यह गलत नाम है। शिलिगुड़ि का पूर्वनाम था डालिमपुर (डालिमकोट) यह एक समय भूटान का हिस्सा था। अभी इसका नाम हो गया है शिलिगुड़ि। एक समय भुटानराज ने इसे जोरपूर्वक दखल करके रखा था। दार्जिलिंग का पहला नाम ता 'दोर्जिलिंग'। उसी से 'दार्जिलिंग' बना है।

औषधियों में जटामांसी, इपिकाक ऊँची जमीनों पर पैदा हो सकते हैं। झालदा से जोन्हागढ़, मुरी, सिल्ली, गौतम धारा, अंगारा तक का अञ्चल herbal cultivation के लिए काफी उपयुक्त है कारण राढ़ के अन्य अञ्चलों से इन अञ्चलों पर अधिक वरषा होती है। दुसरी और त्रिपुरा में साब्रुम, पानिसागर में (धर्मनगर अञ्चल) दवाइयाँ काफी मात्रा में मिलंगे। सुन्दरवन अञ्चल में भी औषधि के रूप में काफी पेड़-पौधे मिल जाएँगें। क्योंकि नमकीन मिट्टी का औषधीय मूल्य है। पहनने के लिए पञ्जाबी (कुरता) में जो गिला किया जाता वह गिला का पेड़ सुन्दरवन में काफी मात्रा में पाया जाता है। दुसरी और मेघालय के गारो पहाड़ तथा नवगाँव जिला के होजाई तथा लंका, इलाका में औषधीय पेड़-पौधे प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

राढ़ में अन्यान्य खनिज पदार्थों के साथ पारद (पारा, mercury) काफी मात्रा में मौजुद हैं। पारा 'Mercuric Sulphide' के रूप में स्थूल अवस्था में पाए जाते हैं। राढ़ में ताम्बे की प्रचुरता है। पारा तथा तम्बा से नानाप्रकार खनिज औषध प्राप्त होंगे। मानभूम के तामाखून अञ्चल में ताम्बे का खान है। पहले ताम्रलिपि से तम्बा विदेशों में निर्यात किए जाते थे।

अर्थकरी फसल

अर्थकरी फसल दो प्रकार होते हैं :

(1) कृषिजात (Agricultural)

(2) अ-कृषिजात (Non-argicultural)

अर्थकरी फसलों में काली मिर्च (Black pepper) त्रिपुरा के जलवायु के लिए उपयुक्त है। त्रिपुरा काली मिर्च तथा लाल मिर्च का उत्पादन करके बंगला देश को इन दो मिर्चों का एक अच्छा बाजार के रूप में प्राप्त कर सकेंगे। इससे त्रिपुरा काफी आमदनी कर सकेंगे।

दाल के मामले में बंगाल घाटती अञ्चल के रूप में परिचित है। बंगाल में जो दाल की खेती है उसमें मात्र पाँच महीने ही चलते हैं, शेष सात महीने उसको बाहर से दाल मँगाना पड़ता है। आउस धान की खेती के साथ-साथ मूंग दाल सलाना तीन बार उपजाया जा सकेगा। धान खेत में कादो पर सोणामूँग भीगाकर छिड़क देने पर एक महीने के बाद हाइब्रीड धान काटने के समय

मूँग के पौधे भी कट जाएँगे। तब उससे अलग से फंगड़ा निकलेंगे। चूँकि छिड़क दिया जाता है। इसलिए इसे पायरा (कबुतरी) फसल कहा जाता है। यह फसल साठ दिन में तैयार हो जाते हैं। इसलिए इसे कहा जाता है साठी मूँग। साठी मूँग साल भर में तीन बार उगाए जा सकेंगे। मूँग के लत्तड़ गाय के भोजन हैं।

अरहर दाल मुख्यतः दो प्रकार हैं (1) चैती और (2) माघी। इसके अलावे भी और एक प्रकार अरहर दाल होता है, जिसे कहा जाता है अगहनी अरहर। राढ़ के किसी भी टाँड़ जमीन पर आउस धान के खेत में इसकी खेती की जा सकगी।

बिरिर डाल (उरद का दाल) या कलाइ का दाल जिसे कलकाता के लोग कहते है विउलीर डाल। बंगाल में दलहनें काफी पैदा होते है, हो सकते हैं। उरद का दाल पाँच महीने का

फसल है। कूचविहार, दिनाजपुर, बर्धमान, मालदह, पुरूलिया में इसका उत्पादन होता है।

चने पाँच महीने का फसल है। जहाँ पर पानी का अभाव है। वहाँ पर चने को भींगाकर छिड़क देना चाहिए। राढ़ में चने को बुट कहा जाता है । संस्कृत बुण्टिक शब्द से बुट शब्द आया है। विहार में कहा जाता है चाना। चाना शब्द का उद्भव सस्कृत चनक चाना शब्द से हुआ है। छोला पारसी शब्द है। बड़े साइज का चना लगाने के लिए - हाइब्रिड धान काटने के बाद उस जमीन पर अक्टूबर महीने में लगाना होगा और चैत में फसल उठाना पड़ेगा। खेसारी का दाल की खेती बंगाल में बहुत होती है। लेकिन खेसारी का दाल स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है। पक्षाघात (लकवा) मारने का डर रहता है। आजकल नया मटर आया है। नया मटर थोड़ी मुलायम होती है। चार महीने में फसल खेत से उठ जाएगा।

लेकिन इसकी खेती लाभदायक नहीं है। मसूर दाल की खेती गेंहू के खेत में करने पर फसल अच्छा होगा। गेंहू के लिए नदीया, मुर्शिदावाद, मालदह, रायगञ्ज, इसलामपुर, कुचविहार का मेखलीगञ्ज अनुमण्डल और जलपाइगुड़ि की जमीन अच्छी है। गेंहू के खेत में मसूर दाल की भी खेती होगी। त्रिपुरा की सुखी इलाकों में चने की खेती अच्छी होगी। मूँग का अंग्रेजी होता है green gram, चना का अंग्रेजी Bengal gram, उरद का अंग्रेजी Black gram बंगाल में जितने दाल पैदा होंगे इस देश के आदमियों को खिलाकर भी विदेशों में निर्यात किया जा सकेगा। मसूर दाल छोड़कर अन्य सभी प्रकार दाल बंगाल के बाहर से यहाँ आती है। त्रिपुरा में जो दाल पैदा होंगे उसे बचाकर बांगलादेश में आपूर्ति की जा सकेगी। दाल के भूसे गाय-बैलों के लिए अच्छे भोजन है। बंगाल में गोचारण भूमि (चरागाहों) की कमी है। गाय-बैलों के स्वास्थ्य के लिए दलहन के भूसे अच्छा भोजन हैं।

रबर आर्थिक फसल है। बंगाल के जिस अञ्चलों में काफी वर्षा होती है परन्तु ढलान जमीन है, पर पानी नहीं जमता है वहाँ पर रबर की अच्छी खेती होगी। जलपाइगुड़ि, दार्जिलिंग, धुबड़ी, कछाड़ का उत्तर-पूर्वी इलाका तथा त्रिपुरा में रबर की अच्छी खेती होगी। कोको की खेती के लिए काफी वरषा की जरुरत होती है। कफि पैदा करने के लिए परिमित वर्षा की जरूरत होती है। राढ़ के वीरभूम, पूरूलिया तथा बाँकुड़ा में भी कफि उत्पादन के लिए परिमित वर्षा की जरूरत होगी। राढ़ के टाँड़ जमीन पर भी कफि का उत्पादन होगा। लेकिन चाय की खेती लाभदायक नहीं होगा। त्रिपुरा के साथ राढ़ का काफी जगहों पर मेल है। इसलिए कफि की खेती राढ़ तथा त्रिपुरा दोनों ही जगहों पर होगी। त्रिपुरा में कोको की भी खेती हो सकती है। कोको के पौधे को अंग्रेजी में कैकाओ (Cacao) कहतै हे और इसी कैकाओ के पोधों में जो फल लगते हैं, उसे कोको कहा जाता है। अंग्रेजों में (Cocoa) लिखा जाता है।

विषयसूची

जूट एक आर्थिक फसल है। लेकिन जूट को केवल थैला बनाने के काम में व्यवहार करना उचित नहीं होगा। मोटी सूती कपड़े बनाने के लिए जूट का व्यवहार करना पड़ेगा। कछाड़, सिलेट तथा त्रिपुरा के साब्रुम अञ्चल में संतरे की खेती हो सकती है। लेकिन अच्छा नहीं होगा। राढ़, त्रिपुरा तथा दक्षिण बंग में काजूबदाम की खेती अच्छी हो सकती है। मिदनापुर में (प्राचीन काल के हिजली में) सबसे पहलीबार काजू की खेती शुरू की गई। काजूबदाम के बहुत सारे गुण हैं। आर्थिक फसल के रूप में यह अच्छा काम करेगा। वर्त्तमान में मिदनापुर के काँथि अनुमण्डल में काजूबादाम का उत्पादन बहुत अधिक होता है।

बंगलादेश में मात्र दो ही आर्थिक फसल है (1) कच्चा जूट (2) कच्चा चमड़ा। कच्चा चमड़ा को टैन (Tan) करके

विदेशों में बेचने पर अच्छे पैसे मिलते हैं। लेकिन (Tan) की व्यवस्था नहीं रहने के कारण बंगलादेश को काफी नुकसान हो रहा है। चमड़ा के बदले प्लास्टिक जातीय चीजों का व्यवहार अधिक होते रहने पर जूट तथा चमड़ा दोनों ही मार खा जाएँगे। बंगलादेश प्रकृति के नीति-नियमों को मानकर नहीं चल रहा है।

Bangladesh doesnot follow the rules of nature.

पहले धान को लक्ष्मी कहा जाता था। तुष (भूसे) को देवी कहा जाता था। 1200 साल पहले राढ़ में एक राजा थे जिनका नाम था मान सिंह। मानसिंह को कोई लड़का नहीं था। दो लड़कियाँ थी। एक का नाम था भादुमणि तथा दूसरे का नाम था

टुसुमणि। राजा की मृत्यु के बाद टुसुमणि राजा बनी। टुसुमणि बहुत अच्छे राजा थे। राढ़ में अभी भी उनके नाम पर टुसु पर्व मनाया जाता है। अभी राढ़ में तुष को जलाकर नष्ट किया जा रहा है।

सेरिकलचरं (Sericulture)

सेरिकलचर में से रेशम तथा लाह उल्लेखनीय अर्थकरी फसल है। राढ़ में बैर के पेड़ों में रेशम की खेती होगी, उन्नत किस्म के रेशम प्राप्त होंगे। कुसुम के पेड़ों से लाह और उससे गाला तैयार होंगे। गाला दो-तीन प्रकार के होते है। झालदा, मुर्शिदाबाद, बलरामपुर में लाह की खेती होती है। लाह के लिए विश्व मे अच्छे बाजार हैं, लेकिन बंगाल में लाह की माँगे घटती जा रही है। क्योंकि पहले औरतें गाला को गहने बनाने के काम में व्यवहार करते थे। अब नहीं करती हैं। बंगालीस्तान में मधुमक्खियों के

शरीर से निकली हुई मृत मोम अर्थात् Bee-wax का वैसा कोई बाजार नहीं है। पैराफिन से निर्मित कृत्रिम मोम अभी Bee-wax को बाजार से हटा दिया है। Bee-wax का औषधीय मान बहुत अधिक है। मधुमक्खियों को पालने के लिए सुन्दरवन, मेघालय, त्रिपुरा तथा राढ़ अच्छी जगह सावित होंगे। परन्तु पैराफिन मोम की प्रतियोगिता में Bee-wax 'सक्षम नहीं होंगे।

अ-कृषि शिल्प

Non-Agricultural Industries

राढ़ में अबरख बहुत अधिक है। अबरख का आविर्भाव 100 करोड़ वर्ष पहले हुआ है। 100 करोड़ वर्ष पहले की मिट्टी में

विषयसूची

अबरख पाए जाएँगे। अबरख के लिए अंग्रेजी शब्द है mica। राढ़ की मिट्टी में काफी अबरख है। आनन्दनगर की मिट्टी में भी अबरख है।

जलपाइगुड़ि, दार्जिलिंग, कूचविहार, ब्राह्मणबेड़िया में पाकृतिक गैस तथा पट्रोलियम प्राप्त होंगे। सिलेट तथा त्रिपुरा के खोवाइ अनुमण्डल में natural gas मिल सकता है।

वक्रेश्वर से वीरभूम के नानुर तक 80 मील के इलाके में काफी मात्रा में गन्धक है। वीरभूम-बाँकुड़ा-पुरूलिया के लोग प्राय एक ही समान गरीब हैं। मयुराक्षी प्रकल्प के बाद वीरभूम की कुछ उन्नति हुई है। अभाव जनित अखाद्य भक्षण के कारण कुष्ठ रोग फैलता है। लेकिन वीरभूम में कम होता है क्योंकि वीरभूम की मिट्टी में गन्धक की मात्रा अधिक है। गन्धक चर्मरोग के लिए

अच्छी दवाई है। इस गन्धक को दवाई बनाने के काम में व्यवहार किया जा सकता है।

आयोडिन (Iodine)

दवाई के लिए आयोडिन की जरूरत होती है। दीघा के समुद्र तटवर्ती अञ्चलों में समुद्र शैवाल (sea-weed) से प्रेयोजनीय आयोडिन प्राप्त होंगे। समुद्र के पानी से भी आयोडिन प्राप्त होंगे। sea-weed का मतलब समुद्र की जलकुम्भियाँ भी होती हैं। दीघा के समुद्रकुम्भी से ही आयोडिन बनता है। बंगालीस्तान के समुद्र तटवर्ती इलाकों में सभी जगह (sea-weed) मिलते हैं। लेकिन दीघा में आयोडिन अच्छी तरह से प्रक्रियाकरण (Processing) किया जा सकेगा। आयोडिन, क्लोरिन ये सब सामुद्रिक फसल है। उत्तर बंग में आयोडिन नहीं

मिलते हैं। दक्षिणबंग में मिलते हैं। इसलिए उत्तरी बंगाल के लोगों में गलगण्ड रोग अधिक होता है। लेकिन दक्षिणी बंगाल में गलगण्ड रोग नहीं के बराबर है। क्योंकि उत्तरी बंगाल में आयोडिन का अभाव है, लेकिन दक्षिणी बंगाल में आयोडिन मिलते हैं। आयोडिन के अभाव से ही गलगण्ड रोग होता है। दवाई के लिए बरिण की जरूरत होती है। सोहागा (Borax) से प्रयोजनीय बोरिण प्राप्त होंगे। राँची जिला के बंगाली अध्युषित इलाकों में Borax मिलेंगे।

राढ़ में अलमुनियम उत्पादन का कारखाना अच्छा होगा। झालदा से लेकर अंगारा तक के इलाकों में अच्छी तरह से अलमुनियम का कारखाना बनेगा। बंगाली अध्युषित इलाकों में वक्साइट का भम्डार मौजुद है। इसलिए राढ़ में अलमुनियम का

कारखाना बहुत अच्छी तरह से होगा। राढ़ में जरूरत की तुलना में बहुत अधिक मात्रा में अलमुनियम मौजुद हैं।

समुद्र तटवर्ती इलाकों में नहर बनाकर (समतल भूमि में) पानी भरकर रखना होगा। कुछ देर पानी रहने के बाद बाहर के गरम मौसम के कारण पानी वाष्प होकर चला जाएगा। नमक मिट्टी के उपर पड़ा रहेगा। यही व्यवस्था है। बंगालीस्तान के कई इलाको में लवण शिल्प बन सकता है। काँथि अनुमण्डल के दीघा, रामनगर, मोहनपुर, काँथि तथा जुनपुट इलाके में तथा बंगलोदश के कुतुबदिया में कुछ परिमाण, खुलना, बाखर गञ्ज, नोयाखाली, चट्टग्राम- ये सभी इलाके समुद्र से सटा हुआ है। मिदनापुर का मौसम पश्चिम राढ़ के ही जैसे हैं, वहाँ पर गर्मी में गरम आँधी चलती है। मौसम सुखी होती है। वहाँ पर पानी जल्द ही वाष्प में बदल जाती है। वहाँ पर वाणिज्यिक रूप से (Commercially) नमक तैयार किया जा सकता है। मिदनापुर के तीन थानाएँ - दीघा,

काँथि तथा रामनगर समुद्र से बहुत सटा हुआ है, इसलिए उन इलाकों में लवण शिल्प की काफी सम्भावनाएँ है।

6 जून 1986, कलिकाता

कृषि समवाय

समाज निरापत्ता के मामले में सबसे पहले मनुष्य का अन्न, वस्त्र, गृह, शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी निरापत्ता व्यवस्था की बात आती है। मनुष्यों के जीवन धारण के लिए अपरिहार्य इन पाँच प्राथमिक जरूरतों की पूर्ति के लिए सबसे पहले "माँग के अनुकुल उत्पादन" नीति को देश के सभी जगहों

विषयसूची

पर वास्तवायित करना होगा। और खाद्य आपूर्ति की महत्ता की बात स्मरण करके कृषि उत्पादन पर विशेष जोर देना होगा। इसके लिए समवाय प्रथा का व्यापक प्रचार करना होगा।

प्राउट के मतानुसार अत्यधिक संख्यक मनुष्य खेती में नियुक्त नहीं रहना चाहिए। जनसंख्या के एक बृहत अंश को शिल्प में नियुक्त करना पड़ेगा। प्राउट की कृषि-नीति के अनुसार 30% से 40% के अधिक लोगों को खेती में नियुक्त नहीं रहना चाहिए।

प्राउट उत्पादन के अनुसार खेती में उपयुक्त जमीनों को दो भागों में विभाजन किया गया है :

(1) लाभदायक जमीन (Economic Holding)

(2) अलाभदायक जमीन (uneconomic holding)

विषयसूची

लाभदायक जमीन वे सब जमीन हैं जहाँ पर पूँजी, श्रम, खाद तथा अन्यान्य उपकरण नियोग करने के बाद उत्पादित फसल का बाजार दर उत्पादन मूल्य (cost price) से अधिक होगा। अर्थात जिस जमीन पर उत्पादन करना लाभदायक होगा, उसी जमीन को कहते हैं economic holding । और दूसरी और जिन जमीनों पर उत्पादन करना के बाद उत्पादित पण्य-सामग्रियों का बाजार मूल्य उत्पादन मूल्य के नीचे रहता है, उन सभी जमीनों को कहते हैं अलाभदायक जमीन या 'uneconomic holding'। इन सभी जमीनों पर खेती करना अलाभदायक होने की वजह से साधारणतः जमीन के मालिक इन जमीनों पर खेती करना पसन्द नहीं करते हैं। ग्रामीण अर्थनीति में अगर गाँव को एक उत्पादन इकाई (production unit) के रूप में माना जाय तो उस गाँव के अन्दर बहुत सारे जमीन उपलब्ध होंगे जो जमीन अलाभदायक होने की वजह से परित्यक्त रहता है अर्थात् खाली पड़ा रहता है।

विषयसूची

खेती के जमीनों का सामाजिकीकरण के प्रथम पर्याय पर जमीन की मलकियत की ऊर्धसीमा निर्धारित की माँग न करके, खेती लायक जमीनों की विक्री तथा हस्तान्तर निषिद्ध करके समस्त अलाभदायक जमीनों को समवाय व्यवस्था के अन्तर्गत लाना होगा। इन जमीनों की खेती करने का दायित्व जमीन के मालिकों के उपर नहीं रहेगा, उसका दायित्व रहेगा समवाय संस्थाओं के उपर। और समवाय संस्थाएँ काम करेंगे स्थानीय सरकारी रक्षणा वेक्षण में तथा सरकारी सहायता लेकर। हर गाँव के सभी भूमिहीन किसान इस समवाय का सदस्य होगा। वेलोग अपना श्रम दान करेंगे तथा और जमीन के मालिक जमीन देंगे। इस पर्याय पर जमीन की मालकियत जमीन के मालिकों पर ही न्यस्त होगा। उत्पादित फसल का विक्रय मूल्य से उत्पादन मूल्य बाद देने पर जो नीट लाभ (Net profit) होगा, उस नीट लाभ से एक निर्दिष्ट हिस्सा राजस्व कर के रूप में रखकर, शेष हिस्सा को लाभ

के रूप में माना जाएगा। उस लाभ का 50% जमीन के मालिक को दिया जाएगा और 50% मिलेंगे समवाय के सदस्यों को तथा खेत-मजदूरों को। प्रथम पर्याय के लिए निर्दिष्ट समय है एक से तीन वर्ष। प्रयोजनानुसार इस समय सीमा को घटाया जा सकता है। लेकिन किसी भी अवस्था में बढ़ाया नहीं जा सकेगा। इसी समय के अन्दर सामूहिक उन्नति विधान हेतु प्रत्येक गाँव के खाल-बिल नदी-नालाओं का सर्वाधिक उपयोग लेना पड़ेगा। उदाहरण के लिए नदियों में छोटा-छोटा बाँध तथा जलाधार तैयार करना होगा। व्यापक जलसेच की व्यवस्था, विद्युत उत्पादन तथा स्थानीय प्रयोजन के अनुसार शिल्पों की स्थापना करना होगा।

इस पर्याय में सबसे पहले जमीन के उपर जनता की दवाब को घटाना पड़ेगा। कृषि आधारित तथा कृषि सहायक शिल्प स्थापन करके ग्रामीण जनसंख्या के एक बड़े अंश को वहाँ पर

विषयसूची

नियुक्त करना पड़ेगा। फसल सरंक्षण के लिए स्वायत्त शासन बोर्ड के अधीन गुदामघर तथा हिमघर की व्यवस्था करना पड़ेगा। उत्पादक समवाय के माध्यम से समवाय समूहों को ट्रेक्टर, खाद, बीज, पम्प तथा खेती के लिए अन्यान्य साज सरंजाम की आपूर्ति करनी होगी। ग्रामीण जनताओं को नित्यनैमित्तिक वस्तुओं व्यवहारोपयोगी सामग्रियों की आपूर्ति करेगा उपभोक्ता समवाय। इस पर्याय में कृषि-श्रमिक, भूमिहीन किसान, दिनमजदुर तथा भागचाषी (बटाइदारो) को भी समवाय के अन्तर्गत लाना पढ़ेगा। इसी पर्याय से ही गाँवों में शिक्षा-व्यवस्था का आमूल परिवर्तन करना होगा। समवाय की मानसिकता तैयार करने हेतु जनताओं के बीच व्यापक शिक्षा तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था रखना होगा। लेकिन सामूहिक स्वार्थ को जलाञ्जलि देकर व्यष्टि स्वार्थ को अधिक गुरूत्व न दें इसके लिए सभी शिक्षाओं के उपर नीति शिक्षा पर बल देना पड़ेगा।

कृषि-समवाय के वास्तवायन के दूसरे पर्याय में भू-स्वामियों के छोटे-छोटे जोतों को समवाय व्यवस्था के अन्तर्गत लाना पड़ेगा। साधारणतः ये सभी जमीनें लाभदायक जोतों के अन्तर्गत आता है। किसी भी गाँव में समस्त अ-लाभदायकजोतों को समवाय के अन्तर्गत लाने के बाद ही लाभदायक जोतों को समवाय व्यवस्था के अधीन लाना होगा। सभी लाभजनक जोतों को समवाय के अन्तर्गत करके वृहत्तर उत्पादक-समवाय का निर्माण करना ही इस पर्याय का मूल लक्ष्य होगा। उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से ही कृषि में व्यापक रूप से विज्ञान तथा प्रयुक्ति का व्यवहार इस पर्याय पर सहजतर होगा।

द्वितीय पर्याय में भी जमीनों के मालिकों को जमीनों का मलकीयत बरकरार रहेगा। नीट लाभ (Net Profit) का 25% मिलेगा जमीनों के मालिकों को, और 75% मिलेगा कृषि-श्रमिकों

कृषि-श्रमिक तथा समवाय के सदस्यों को। यहाँ पर कृषि-श्रमिक का मतलब हुआ कायिक तथा बौद्धिक श्रम करनेवाले दोनों ही प्रकार के श्रमिक। जमीन के मालिक इसमें दो-प्रकार से उपकृत होंगे। प्रथमतः मालिक के रूप में जमीन से उत्पादित नीट लाभ का 25% पाएँगे, और अगर वे श्रमिक-बाहिनी का एक सदस्य के रूप में समवाय का अंशीदार हो के रहेंगे। तो समवाय के सदस्यों के बीच बाँटे गए लभ्यांश के 75% का श्रम (कायिक तथा बौद्धिक) अनुयायी आनुपातिक अंश भी प्राप्त करेंगे। ग्रामीण जनसाधारण जिससे कृषि पर निर्भरता को छोड़कर शिल्प निर्भरशील हो सके, उस उद्देश्य से इस पर्याय में तेजी से कृषि-आधारित तथा कृषि-सहायक शिल्पों के निर्माण पर जोर देना पड़ेगा। ग्रामीण जनताओं में समवाय-मानसिकता और भी उन्नत करने के लिए शिल्पोन्नयन के साथ-साथ शिक्षा तथा संस्कृति के संस्कार साधन पर भी जोर देना पड़ेगा। इस्त्री दूसरे पर्याय से ही भोगोत्पादन ग्रामीण जनताओं के जीवनधारण के मान को उन्नत करेगा। और जनगण की

सामाजिक सुरक्षा संक्रान्त न्युनतम माँगों को जैसे जीवन धारण हेतु प्रयोजनीय न्युनतम वस्तुओं की प्राप्ति की सुव्यवस्था करना होगा। द्वितीय पर्याय की आयु सीमा होगी दो साल। जरूरत पड़ने पर यह समयसीमा घटायी जा सकती है, लेकिन किसी भी अवस्था में बढ़ाया नहीं जा सकेगा।

तृतीय पर्याय में जमीनों का पुनर्वण्टन करके विवेक पूर्ण रूप से जमीनों की मलकियत देनी पढ़ेगी। किसके पास कितनी जमीन होगी वह निर्भर करेगा - (1) एक परिवार को चलाने के लिए जितनी जमीन की जरूरत है, तथा (2) स्वयं जितनी जमीन पर वह खेती कर सकेगा-इसके उपर। इस पर्याय पर जमीनों में काम करने के लिए जमीन के मालिकों को कृषि-श्रमिक, भूमिहीन किसान तथा बटाईदार किसान नहीं मिलेंगे इसलिए उनलोगों के लिए समवाय में योगदान करना ही ज्यादे लाभदायक होगा।

विषयसूची

विज्ञान के व्यापक प्रयोग के लिए बड़े बड़े समवाय का निर्माण करना इस पर्याय में सहज होगा। लेकिन ये सब कमी भी चीन या (तत्कालीन) सोभियत यूनियन के यौथ खामार (farm) की तरह विशालाकार नहीं होगा। समवाय का आकार बहुत अधिक बड़ा होने पर प्राकृतिक सुयोग-सुविधाओं का यथोचित व्यवहार करने के क्षेत्र में असुविधाएँ दिखाई देंगे, और इसके फलस्वरूप उत्पादन के क्षेत्र में जटिलताएँ आती है। साम्यवादी देशों में यौथ खामार (Joint farming) की विशालता के कारण तत्त्वावधान में त्रुटि रह जाती थी।

कृषि-समवाय समूह स्वयं समवाय के जमीनों का आकार निर्धारित कर लेंगे। लेकिन दो विषयों पर विचार करके आकार निर्धारित करना होगा। प्रथमतः उत्पादन का खर्च न्युनतम रखकर

विज्ञान तथा प्रयुक्ति का व्यवहार करके उत्पादन का गुणगत तथा परिमाणगत उन्नति कैसे निश्चित किया जाय। द्वितीयतः न्युनतम शारीरिक परिश्रम के बदले समवाय के सदस्यगण कैसे सर्वाधिक मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के चरम पर्याय में पहुँचने की निश्चितता अर्जित कर सके।

इन तीन पर्यायों में कृषि में नियोजित जनसंख्या की भार को घटाकर 30% से 40% के बीच लाना पड़ेगा। तृतीय पर्याय समाप्त होते-होते बेकारत्व तथा सामाजिक सुरक्षा जैसी जाज्वल्यमान समस्याओं से ग्राम्य जीवन को मुक्ति मिलेगी। चूँकि जनसाधारण किसी भी व्यवस्था को जोरपूर्वक लागू करने पर उसे ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिए समवाय व्यवस्था को सार्विक वास्तवायन के क्षेत्र में संगति बनाकर आभ्यन्तरीण आकुति तथा वाह्यिक चाप सृष्टि के माध्यम से वास्तविक मानसिक प्रस्तुति का

निर्माण का ख्याल रखना होगा। सामूहिक मनस्तत्त्व का यह परिवर्तन रातोंरात नहीं होगा, जनगण के आवेग तथा आकुति के द्वारा यह संभव होगा।

चतुर्थ स्तर में कृषि-जमीन के मलकियत को लेकर और कोई विरोध या संशय का कोई अवकाश नहीं रहेगा। इस तरह से क्रमशः कृषि जमीनों का सामाजीकरण करने की नीति अनुसरण करने से मनुष्य भी गोष्ठीस्वार्थ के द्वारा परिचालित न होकर सामूहिक स्वार्थ के द्वारा प्रेषित होने की शिक्षा प्राप्त करेंगे। मनुष्यों का यह मानसिक विस्तार तथा दृष्टिकोण का परिवर्तन समाज में एक स्वास्थ तथा अनुकुल परिवेश का निर्माण करेगा। समाज में इस प्रकार सामूहिक मनस्तत्त्व का परिवर्तन अचानक संभव नहीं होगा। यह परिवर्त्तन धीर-धीरे मनुष्यों के मनस्तत्त्व के क्रम-रूपान्तरण के माध्यम से आएगा।

समवाय वास्तवायन के चतुर्थ स्तर पर गाँव के हर मनुष्यों के अर्थनैतिक समस्याओं का समाधान हो जाएगा। खाद्य, वस्त्र, वासस्थान, शिक्षा तथा चिकित्सा जैसे समस्त सामाजिक विषयों पर जनसाधारण को सहज ही निश्चित किया जा सकेगा। प्रत्येक सामूहिक जागतिक मानसिक तथा आध्यात्मिक सम्भावनाओं का सर्वाधिक उपयोग इसी पर्याय में सम्भव होगा। कृषि, शिल्प तथा जीवनधारणा के अन्यान्य उपायों के बीच एक सुन्दर संहति संसाधित होगा।

समवाय प्रकल्प का प्रथम स्तर से चतुर्थ स्तर तक के समय-सीमा को कह सकते हैं प्राउट अर्थनीति की बुनियाद प्रतिष्ठा पर्व या transional period । इसके बाद ही वास्तव में

प्रगतिशील समाजतन्त्र के स्वकीय अर्थनैतिक विशिष्टताएँ वैवहारिक प्रयोग का अवसर प्राप्त करेगा।

फरवरी १९८२, कलकत्ता

उत्तर-पूर्व भारत

North-east India

विषयसूची

असम, अरूणाचल, मिजोरम, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड को लेकर गठित हुआ है उत्तर-पूर्व भारत। भारत के उत्तर में कई छोटे राज्य हैं जैसे-नेपाल, भूटान तथा सिक्किम।

नेपाल की आकृति आयताकार है। उत्तर से दक्षिण में विस्तृत लम्बाई पूर्व-पश्चिम में विस्तृत चौड़ाई से बहुत अधिक हे। नेपाल विभिन्न संस्कृति का देश है। जिस प्रकार भारत में भारतीय कहकर विशेष कोई एक सम्प्रदाय के लोग नहीं हैं, ठीक उसी प्रकार नेपाल में नेपाली कहकर कोई विशेष सम्प्रदाय या जाति के लोग नहीं है। नेपाल के अधिवासीगण अष्ट्रिको मोंगोलिओ-निग्रो सम्प्रदाय से उत्पन्न हुए हैं। नेपाल में कई एक भाषाएँ प्रचलित हैं, जैसे नेवारी, गोर्खाली, अंगिका, भोजपुरी, राई, लेपचा, शेरपा, भुटिया इत्यादि। नेपाल की मुख्य भाषा है गोर्खाली। यहाँ के रहनेवाले लोग विभिन्न धर्ममतों को मानते हैं। कुछ हिन्दु लोग है,

जो लोग शैव या शाक्त धर्मानुशीलन में विश्वास रखते हैं। फिर कुछ लोग है जो हिन्दु तथा बौद्ध दोनों धर्म पर विश्वास रखते हैं। दक्षिण नेपाल का अधिकांश हिस्सा ही समतल भूमि है। पश्चिम में तराई अञ्चल और पूरब में डुयार्स। नेपाल के मध्यभाग को मदेशा कहते हैं. नेपाल के अधिवासियों की उत्पत्ति एक ही जातीय सम्प्रदाय से हुई है और वे लोग अपने को मदेशी कहकर परिचय देते है।

साधारणतः नेपाली अधिवासियों का नाक सूई के नाक जैसे होते हैं, केवल गोर्खाओं के नाक चिप्टे होते है। नेपाल के मोरांग जिले की भाषा अंगिका है। नेपाल के एकदम पश्चिम की भाषा भोजपुरी है। पुरब में झाँपा जिला के लोग बंगला में बाते करते है। गोर्खाएँ शिवभक्त होते हैं। शिव का एक नाम हुआ गोरक्षनाथ। चूँकि यहाँ के अधिवासीगण गोरक्षनाथ के भक्त हैं। इसीलिए उन्हें गोर्खा कहे जाते हैं। गुरूंग तथा राई सम्प्रदाय मिश्र जाति से उत्पन्न हैं। उनके पूर्वज पिता भारतीय थे लेकिन पूर्वमाताएँ मंगोलीय थी। वे महायानी बौद्ध धर्म में विश्वास रखते हैं। और वेलोग गो-मांस खाते

हैं। गोर्खाएँ भैंसों के कच्चा मांस खाते है। जोशी ब्राह्मण लोग पहाड़ी इलाकों में वास करते हैं और वे पश्चिमा ब्राह्मण हुए अर्थात् वे लोग पश्चिम भारत के ब्राह्मण है। वे लोग पदवी के रूप में साधारणतः उपाध्याय का व्यवहार करते है। नेपाल में रहनेवाले लामा सम्प्रदाय के लोग फिर तिब्बतीय वंश से उत्पन्न हुए हैं। नेपाल का मध्यस्थल अर्थात समतलभूमि अञ्चल काटमाण्डु उपत्यका नाम से परिचित हैं। यहाँ पर जो नेवारी जाति के लोग रहते हैं वे लोग लम्बे होते हैं तथा हिन्दू धर्म का अनुसरण करते हैं। नेपाल के अन्यान्य अधिवासी लोग हुए-शेरपा, लुम्बास, लेपचा, भूटिया तथा तिब्बतीय। बंगलाभाषी लोग झाँपा जिला में रहते हैं। झाँपा जिला को छोड़कर अन्यान्य अञ्चलों की भाषाएँ इन्दों-तिब्बतीय हैं। 1773 ई० तक नेपाल की प्राचीनतम लिपि बंगला में थी। नेपाल के राजालोग नेवारी थे तथा बंगला लिपि में लिखी गई नेवारी नेपाल की राजभाषा थी। दोलयात्रा के दिन 1773 ई० में पृथ्वीनारायण शाह ने बलपूर्वक नेपाल को अधिकार कर लिया।

विषयसूची

यहाँ पर नेपाली के रूप में कोई भाषा स्वीकृत नहीं है। वस्तुतः नेपाल के अधिवासीगण 17 भाषाओं में बातें करते हैं। उनमें से गोर्खाली एक अन्यतम भाषा है। प्राय 100 साल बाद ब्रिटिश सेनापति अकटोरलोनी ने नेपाल अधिग्रहण किया। नेपाल तथा ग्रेट ब्रिटेन के बीच सूगौली नामक स्थान पर एक स्वल्प समय के लिए समझौता स्वाक्षरित हुआ जो सुगौली समझौता के नाम से परिचित हुई। इस समझौता के अनुसार ब्रिटिश सैन्यवाहिनी एक गोर्खा रेजिमेण्ट नियुक्त करेंगे उनके पदमर्यादा के अनुसार नेपाल के अधिवासियों को भारतीय मुद्रा में नेपाल सीमान्त के मोतीहारी नामक स्थान पर वेतन दिया जाएगा। नेपाल तथा भारत के बीच कोई पासपोर्ट या भिसा सिस्टम नहीं रहेगा। तथा दोनों देशों के बीच मुक्त वाणिज्य नीति रहेगा।

भूटान बंगाल के उत्तर में तथा नेपाल के पूरब में अवस्थित है। भूटान की भाषा तथा अधिवासियों को 'भूटिया' कहा जाता है। भूटान की भाषा इन्दो-तिब्बतीय ग्रुप की भाषा है। लोग बौद्ध धर्म का पालन करते हैं। भूटान भी ब्रिटिश कलोनी या उपनिवेश के रूप में था तथा एक समय वहाँ पर ब्रिटिश मुद्राएँ प्रचलित थी। लेकिन अभी भूटान एक सार्वभौम राष्ट्र है।

बंगाल के उत्तर में, नेपाल के पूरब में तथा भूटान के पश्चिम में सिक्किम राज्य है। सिक्किम के अधिवासीगण लेपचा तथा भूटिया हैं। महायानी अथवा लामा बोद्ध धर्म वहाँ के लोगों का धर्म हैं।

नेपाल के पूरब में है - NEFA North East Frontier Agency जो वर्तमान में अरूणाचल नाम से परिचित है। इसका

पूर्व नाम था बालियापारा। भारत का यह छोटा सा राज्य चीन के बाद ही अवस्थित है। यहाँ के अधिवासी लोग असमिया, तथा बंगला भाषा में बातें करते हैं तथा बौद्ध धर्म मानते हैं। इसाई धर्मयाजकगण यहाँ के कुछ अधिवासियों को इसाई धर्म में दीक्षित करने में सक्षम हुए हैं। स्वतन्त्रता के बाद इस अञ्चल का पुनर्नामिकरण किया गया है। इसका नाम हुआ अरूणाचल। यह 'B' श्रेणी के राज्य के रूप में अर्थात् छोटे राज्य के रूप में भारतीय संविधान में मर्यादा प्राप्त किया है।

दार्जिलिंग के मूल निवासी हैं- लेपचा और भूटिया। अंग्रेजों ने दार्जिलिंग को शैल शहर के रूप में तैयार किया था। दार्जिलिंग आयतन में बंगाल के मिदनापुर जिला के गड़वेता व्लाक के बराबर है। दार्जिलिंग में काफी मात्रा में भिन्न-भिन्न प्रजातियों के छोटे तथा बड़े इलाइचियाँ, सन्तरे, मकई तथा चाय

उत्पन्न होते हैं। लेकिन यहाँ पर कोई विशेष खनिज सम्पद नहीं है। दार्जिलिंग से कृषिज फसल निर्यात किए जाते हैं। दाजिलिंग में प्राय तीन लाख नेपाली अर्थात लेपचा तथा भूटिआयों का निवास हैं। इनलोगों में प्राय 2 लाख नेपाली जो लोग अन्यान्य इलाकों से भागकर आए हैं तथा उन्हें भारत में रहने की अनुमति दी गयी है। कुछ-कुछ नेपाली दार्जिलिंग में रह गया है और कुछ लोग जलपाइगुड़ि जिला के मदारीहाट में जंगल काटकर वहाँ पर रहने लगे हैं। जिन सब नेपालियों को भारत में रहने की अनुमति दी गयी थी उनलोगों में गोर्खालोग थे। जो लोग दार्जिलिंग जिला में रह रहे थे। उनलोगों को दो भागों में बाँटा गया था- नोपाली तथा जो लोग नेपाली नहीं है। फिर नेपालियों में भी दो भाग हैं- गोर्खा तथा जो लोग गोर्खा नही हैं। अतः दार्जिलिंग जिला में बहुत कम संख्यक गोर्खाएँ हैं।

असम के बंगला भाषाभाषी जिलाएँ हैं, कछाड़, गोआलपाड़ा, धुबड़ी, नवगाँव, तथा कामरूप। अंग्रेजों नें 1824 साल में असम को कब्जा कर लिया। 1912 साल में इसे बंगाल प्रेसीडेन्सी से अलग कर दिया गया। कछाड़ जिला के निवासी बंगाली हैं। इस इलाके का राजा थे शिव-सिंह तथा उनकी राजधानी थी हाफलांग। अंग्रेजों ने उन्हें पराजित कर कछाड़ को कब्जा कर लिया। रंगपुर साब डिभिशन (sub division) गोयालपाड़ा, कुचविहार, सिताई, दिनहाटा, माथाभांगा, तथा शीतलकुचि, प्रभृति अञ्चल लेकर गठित था। अंग्रेजों के अधिग्रहण के पहले यह अञ्चल कूचविहार नेटिव राज्य के अन्तर्गत था। बाद में गोयालपाड़ा अलग हो गया और शेष अंश रंगपुर उपविभाग नाम से परिचित हुआ। बाद में गोयालपाड़ा अलग जिला बन गया तथा उसका मुख्य कार्यालय हुआ धुबड़ी। धुबड़ी का उत्तरांश भूटान राज्य से सटा हुआ है तथा इस अंश के निवासी राजवंशी बंगाली हैं, जो लोग बंगला के रंगपुरी उपभाषा

में बातें करते हैं। लोकगणना रिपोर्ट (consus-report) में उनलागों की मातृभाषा को गलती से असमिया भाषा के रूप में दिखाया गया है। नवगाँव जिला का उत्तरांश वन तथा जंगल में परिपूर्ण है। दक्षिणांश पहाड़ तथा जंगल से भरा हुआ है। वहाँ पर हाथियों का निवास है। अधिकांश निवासी बंगाली हैं जो लोग बंगला में बातें करते हैं। बहुत कम संख्यक लोग असमिया भाषा में बोलते हैं। यहाँ के अधिकांश लोगों का पदवी मण्डल, भूइया इत्यादि हैं। होजाई, लंका, तथा लामडिंग इलाके के लोग बंगाली हैं।

कामरूप जिले का मुख्य कार्यालय गौहाटी (गुवाहाटी) जो असम की राजधानी भी है। अधिकांश लोग असमिया हैं। कुछ-कुछ अनुमण्डलें जैसे नलबाड़ी, बरपेटा हावली प्रभृति वन-जंगल से परिपूर्ण है तथा बंगला भाषी लोगों का निवास है। बरपेटा जिला

विषयसूची

के कुछ हिस्सों में पूर्णतः बंगला भाषियों का निवास हैं। लेकिन यहाँ पर बंगाली हिन्दू की तुलना में बंगाली मुसलिमों की संख्या ही अधिक हैं।

मेघालय राज्य गारो पहाड़, संयुक्त खासिया तथा जयन्तिया पहाड़ तथा उपजातीय काउन्सिल लेकर गठित हुआ है। कुमुद रञ्जन सिंह प्राचीन मेघालय राज्य के राजा थे। यहाँ के अधिवासीगण गारो, खासिया तथा बंगाली हैं। यहाँ पर अन्यान्य लोगों की तुलना में बंगालियों की संख्या अधिक है। शिलांग पहले से ही बंगाली शहर के नाम से परिचित है।

मणिपुर के राजपरिवार के लोग बंगला भाषा में ही बातें करते थे। त्रिपुरा तथा मणिपुर राज्य के राजाएँ चैतन्य महाप्रभु के द्वारा प्रभावित हुए थे। मणिपुर के लोग गौड़ीय वैष्णव-धर्म का

अनुसरण करते थे। उन लोगों का प्रधान धर्मग्रन्थ था चैतन्य चरितामृत जो बंगला में रचित हैं। मणिपुर का राजधानी है, इम्फल। भाषा हुई मिथेई मणिपुरी जो बंगला अक्षरों से लिखा जाता है। मणिपुर का सैन्यवाहिनी प्रधानतः कुकियों के द्वारा गठित है।

भारत के उत्तर-पूर्वांश के विभिन्न जाति तथा सम्प्रदायों के बीच आन्तरिकता तथा भ्रातृत्वबोध का निर्माण करना होगा। बंगाली हिन्दु तथा बंगाली मुसलिमों के बीच आन्तरिक बन्धन सू-संगठित करना होगा। सभी प्रकार के सामाजिक, अर्थनैतिक, सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यकम बुद्धि तथा कौशल के साथ करना उचित होगा। स्थानीय लोगों के विरूद्ध जो शोषण तथा बञ्चनायें हैं उसके विरोध में तीब्र आन्दोलन तथा विक्षोभ शीघ्र खड़ा करना पड़ेगा। उत्तर-पूर्व भारत का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

उत्तरबंग में असम उपत्यका, करिमगञ्ज, शिलचर तता काछाड़ यहाँ का मानचित्र है। मिट्टी तथा जलवायु राढ़ अञ्चल से सम्पूर्णतः अलग हैं। राढ़ अञ्चल 300 मिलियन वर्ष पुराना है तथा हिमालय पर्वतमाला का जब जन्म हुआ था, उस समय भी ये इलाके पानी के नीचे था। हिमालय पर्वतमाला गठित होने के बाद ये सभी इलाकें समुद्र के ऊपर उठकर आया है जो बालु और जलौढ़ मिट्टी से बना है। उस समय वे सभी इलाके एक ही साथ में तैयार नहीं हुआ था। इसलिए उत्तरबंग में तीन प्रकार की विशेष मिट्टिया पाई जाती है। एक हुआ दियारा नदी के किनोर जलौढ़ मिट्टी, दूसरा टाल साधारण जलौढ़ मिट्टी, तीसरा बालु मिट्टी। राढ़ अञ्चल के पहाड़ी इलाका खासिया तथा जयन्तिया पहाड़ी अञ्चल से ऊँचा है। 300 मिलियन वर्ष से ये पहाड़ियाँ क्षय प्राप्त होते-होते राढ़ अञ्चल के पर्वत समूह छोटे हो गए हैं। प्राचीनकाल में राढ़ अञ्चल की नदियाँ वर्फ से पुष्ट थी। वर्तमान में वरसात की

पानी से पुष्ट होती है। त्रिपुरा की नदियाँ राढ़ अञ्चल के नदियों की तरह बरसात के पानी से पुष्ट होती है। लेकिन राढ़ अञ्चल में वर्षाकाल त्रिपुरा से कम समय का होता है। फलतः त्रिपुरा के अधिकांश नदियों में अधिक समय तक पानी वहता है। त्रिपुरा में शिल्प विकाश के लिए जल विद्युत प्रकल्प आसानी से किया जा सकता है। अगर सरकार त्रिपुरा, उत्तरबंग तथा असम उपत्यका में सस्ता में विजली उत्पादन करना चाहे तो जल विद्युत हुआ शक्ति का आदर्श स्त्रोत, इसकी तुलना में सौरशक्ति का मूल्य अधिक होगा। इस विशाल इलाका में अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं महानन्दा, बालासई, तिस्ता, बुढ़ीतिस्ता, जलढाका, गोराधी, ब्रह्मपुत्र, बराक, कुशियारा, गोमारी तथा फेनी।

इन नदियों से काफी मात्रा में जलविद्युत उत्पन्न किया जा सकेगा। इस अञ्चल की मिट्टी कुछ बलुआ ही मिश्रित है। लेकिन

राढ़ अञ्चल की मिट्टी चिटाही है। इस प्रकार कुछ बालु मिश्रित चिटाही मिट्टी- जूट, दलहन तथा अन्यान्य ग्रीष्मकालीन फसलों के लिए अच्छा है। ग्रीष्मकालीन फसलों में दाल, मटर, चने आदि यहाँ पर अच्छे होते हैं। उत्तरबंग की नदियों में काफी मात्रा में जलौढ़ मिट्टी होती है, इसलिए यहाँ की मिट्टियाँ नरम होती हैं। इसलिए बाँध निर्माण के लिए कंक्रीट की बुनियाद करना बहुत जरूरी है। विगत 135 साल में कोसी नदी प्राय 100 बार अपना गतिपथ परिवर्तन किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ की मिट्टी मुलायम मिट्टी है। इसलिए जरूरत है कि जो सभी बाँध बनाए जाएँगे उसकी भीत तथा चारों बगल कंक्रीट किया हुआ होना चाहिए। ऐसे में बाँध मजबूत होंगे तथा अधिक दिन तक टिकेगा।

यहाँ पर जूट की खेती काफी मात्रा में होती है। जूट पर निर्भर करके नाइलन, रेयन, माचीस की तिल्लियाँ, प्लास्टिक तथा

जूट-उन के कारखानों का विकाश किया जा सकता है। नाइलन तथा ऊल उत्पादन के माध्यम से उन्नत किस्म के गरम कपड़े उत्पन्न किए जा सकेंगे। इस इलाके में जूट से निर्मित धागा का कारखाना बनाया जा सकता है। राढ़ अञ्चल में धागा का कारखाना बनाने के लिए कारखाने के अन्दर कृत्रिम रूप में वाष्पायण की व्यवस्था करना होगा। लेकिन उत्तरबंग का स्थानीय मौसम आँशजातीय पदार्थ उत्पादन के लिए काफी

उत्तर-पूर्व भारत अच्छा है। इसलिए कृत्रिम वाष्पायण की जरूरत नहीं होगी। उत्तरबंग में आता-नोना, शाहजन, तूंत के पौधे काफी उत्पन्न होते हैं। फलतः यहाँ पर काफी मात्रा में रेशम उत्पन्न किया जा सकता है। बालुरघाट, रायगञ्ज, तथा मालदह के उत्तरांश को छोड़कर शेष अंश में क्षारीय मिट्टी होने की वजह से आम तथा लीची बहुत अच्छे होगें। आनानास तथा केले की खेती भी अच्छी तरह से की जा सकेगी। कठहल की खेती के लिए जलपाइगुड़ि, कुचबिहार, धुबड़ी, करिमगंञ्ज, काछाड़, असम उपत्यका,

विषयसूची

शिलचर तथा त्रिपुरा आदि जगहें बहुत ही लाभदायक होंगे। केला, कटहल तथा अनानास से उन्नत किस्म के आँश बनाया जा सकता है जिसके सहारे कपड़े का मिल खोला जा सकता है। अनानास तथा केले की खेती के लिए जलीय वाष्प समृद्ध मौसम की जरूरत है। लेकिन कटहल के लिए वैसे कोई मौसम की जरूरत नहीं है। यह सभी प्रकार के मौसम में हो सकते हैं। खास करके त्रिपुरा का मौसम कटहल की खेती के लिए बहुत ही अच्छा है। कटहल से अलकोहल भी बनाया जा सकता है। त्रिपुरा में अलकोहल सम्पर्कित सभी प्रकार के कारखाने जैसे - दवाई आदि का निर्माण किया जा सकता है। कटहल से उन्नत किस्म की चीनी भी तैयार किया जा सकता है। तराई अञ्चल में सन्तरे पर आधारित सन्तरे के जूस निर्माण का कारखाना बनाया जा सकता है। जलपाइगुड़ि में धान के भूसा से ब्रान तेल (Bran oil) तैयार किया जा सकेगा। और इसके साथ लाइम स्टोन के द्वारा सिमेण्ट निर्माण की कारखाना खोलकर वहाँ के लोगों को उपकृत किया

जा सकेगा। दार्जिलिंग तथा असम उपत्यका में काफी मात्रा में तम्बा पाए जा सकते हैं। इसके अलावे करिमगञ्ज तथा त्रिपुरा में मुलायम बाँस काफी मात्रा में पैदा होते हैं, जो कागज, प्लास्टिक तथा रेयन शिल्प में कच्चामाल के रूप में व्यवहृत हो सकेगा। बाँस के हरे पत्तों से एक नये किस्म का विकल्प खाद्य तैयार किए जा सकते हैं। सुन्दर आँशयुक्त फाइवार अनानास के पत्तों से बन सकते हैं। अगर नदियों के उपर बाँध बनाया जाय तो कृत्रिम नहरें तैयार होंगे। इसके सहारे आने-जाने का नया जलपथ बन सकता है। रास्ता के दोनों और शाल, सेगुन तथा मिहगिनि के पैड़ें लगाए जा सकते हैं। यहाँ का स्थानीय जलवायु इन सभी पेड़ों के संबर्धन के अनुकुल है। इन सबों के सहारे नन-मेलबेरी सिल्क भी पैदा किए जा सकेंगे। शिल्प निर्माण के लिए जलविद्युत का भी उत्पादन किया जा सकेगा। सौर ऊर्जा से भी विजली उत्पादन किया जा सकेगा। लेकिन यह व्ययबहुल होगा। रायगञ्ज, बालुरघाट, तथा उत्तर मालदह में आउस धान काफी मात्रा में पैदा होंगे। उत्तर

विषयसूची

काछाड़, मिकिरहिल तथा लामडिंग में त्रिपुरा जैसा ही समस्याएँ है। मेघालय की नदियों में कुछ हिम पुष्ट है तो कुछ वर्षा-पुष्ट है। इस इलाके में काफी वर्षा होने की वजह से जलविद्युत उत्पादन की काफी सुविधाएँ है। मिट्टी कम उपजाऊ होने की वजह से यहाँ पर खाद्य-शस्य का उत्पादन कम होता है, लेकिन यहाँ पर ईख की खेती लाभदायक होगा। अतः कागज तथा चीनी मिल निर्माण का अवसर है या ये कारखानाएँ बन सकते हैं। मेघालय की पहाड़ियाँ त्रिपुरा जैसे ही हैं परन्तु समतल भूमि समूह कुछ हद तक उत्तरबंग जैसे हैं।

जिन इलाकों में काफी वर्षा होती है, वहाँ पर आम तथा लीची की खेती की जा सकती है। लेकिन कहीं-कहीं पर काफी मात्रा में कीड़े का उपद्रव दिखाई देती है। भारत में सबसे अधिक आम तथा लीची इसी इलाके में उत्पन्न हाते है। जितना ही तटवर्ती

इलाके की और बढ़ेंगे उतना ही आर्द्र जलवायु देखने को मिलेंगे। इस प्रकार का जलवायु अनानास, केला तथा सुपारि की खेती के लिए आदर्श है। अंग्रेजी में सुपारि को कहा जाता है "areca nut"। भारत में सुपारि को अंग्रेजी में "betel nut" कहा जाता है। Betel एक तामिल शब्द है जिस का अर्थ होता है म्यूजिक (music)। जितना ही पश्चिम की ओर चलेंगे जलवायु उतना ही शुष्क होता जाएगा। इस प्रकार जलवायु केला तथा अनानास उत्पादन के लिए एकदम अच्छा नहीं है। विहार की मिथिला में कोई केले या अनानास उत्पन्न नहीं होते हैं। उत्तर-पूर्वी भारत सामाजिक-अर्थनैतिक दृष्टिकोण से यथेष्ट सम्भावनायुक्त हैं। इस सम्भावनाओं को यथायथ रूप से सभी श्रेणियों के लोगों के लिए सामग्रिक उन्नति हेतु काम में लगाना पड़ेगा।

दक्षिण बंग

(South-Bengal)

दक्षिणबंग का प्राचीन नाम था समतट। यह समतट समुद्रतटवर्ती स्थान है। कथ्य बंगला में समतट को कहा जाता है 'बागड़ी'। समतट के पूर्व में बंग डबाक, पश्चिम में राढ़, उत्तर में बरेन्द्र भूमि और दक्षिण में बंगाल की खाड़ी। अर्थात् मुर्शिदाबाद का पूर्वांश और कुष्टिया, नदीया, चौवीस परगणा, कलकत्ता, यशोर, खुलना, बरिशाल, फरीदपुर, और पटुआखालि - इतने जिलों को लेकर है दक्षिणबंग। इसके पश्चिम में भागीरथी नदी, उत्तर में गंगा तथा पद्मा, और पूरब में बह रही पद्मा तथा यमुना

विषयसूची

नदी। इन तीन नदियों को लेकर है दक्षिणबंग जो देखने में त्रिभुजाकार है।

गंगा, भागीरथी, पद्मा की जलौढ़ मिट्टी से निर्मित दक्षिणबंग प्राचीनत्त्व की दृष्टि से राढ़ से बहुत अधिक साम्प्रतिक काल के हैं। राढ़ की मिट्टी 30 करोड़ साल पुरानी है और समतट मात्र दश हजार से पन्द्रह हजार वर्ष पुराना है। इसलिए आठ हजार वर्ष से अधिक कोई पुराना पुरातात्विक निदर्शन समतट में नहीं मिलेंगें। सुन्दरवन इलाका तो और भी नयी है। समतट की मिट्टी भींगी तथा उपजाऊ है।

समतट का मौसम आर्द्र होता है, इसीलिए यहाँ के निवासी परिश्रमी नहीं होते हैं। साल का अधिकांश समय में वर्षा होती है। एक तरफ भीषण गरमी, दूसरी ओर अत्यधिक वर्षा, इन दोनों के

विरुद्ध लड़ना पड़ता है, इसीलिए संग्रामशील होते हैं। चूँकि समतट सूलतः जलौढ़ मिट्टी से निर्मित है, और कुछ अंश समुद्र से निकला हुआ है इसलिए यहाँ पर कोई खनिज सम्पद नहीं हैं। एक समय समतट मोती और अन्यान्य समुद्र-सम्पद के (Sea-products) लिए प्रसिद्ध था। बंगाल के वणिक (व्यवसायी) मोती की व्यवसाय के लिए चीन, रोम, मिश्र, तथा मेसोपटेमिया में जाते थे। क्योंकि इन देशों में इन सबों की मांगे थी।

समतट की सभ्यता का सूत्रपात आठ हजार वर्ष पहले हुआ था। सात सौ वर्ष पहले अर्थात पठान राजत्व की शुरुआत में एक भयङ्कर तूफान में समतट डुब गया था। समुद्र का पानी उस समय प्राय बीस फीट ऊँचा होकर दो सौ मील तक स्थलभाग में घुस गया था। और सबकुछ ध्वंस कर दिया था। नगर-शहर-ग्राम-पेड़पौधे-पशु-मनुष्य सम्पूर्ण रूप से ध्वंस प्राप्त हुआ था। पानी उतर

जाने के बाद देखा गया उस अञ्चल में कोई भी जीवित नहीं हैं। उसके बाद राढ़ का मनुष्य समतट पर गया, वे लोग खेती का साज-सामान लेकर वहाँ पर खेती करना शुरू किया उस विशाल जनमानवहीन स्थान पर। समतट फिर से पेड़-पौधे, अनाज-शिल्प में हरा भरा हो गया। तैयार हो गया विशाल वनाञ्चल जो वर्त्तमान समय का सुन्दरवन है। उस जंगल के कुछ हिस्सों को साफ करके वे लोग ग्राम तथा वस्तियों का निर्माण किया। प्राकृतिक प्रकोप से निजात पाने के लिए समुद्र तीर बराबर एक मील चौड़ा वनसर्जन करना पड़ेगा। इसमें सीसम, चिलशुजा, काजू, कटहल, पाइन, झाऊ आदि का जंगल तैयार करना पड़ेगा। ये पेड़ स्वाभाविक प्राचीर के तरह साइक्लोन तथा प्राकृतिक ध्वंस से इस अञ्चल को बचाएगा। इससे कृषि-जमीन का परिमाण ह्रास होने से निजात मिलेगा। तथा वनसंर्जन वर्षा की मात्रा को बढ़ाएगा। काजू, कटहल प्रभृति आर्थिक फसलों का उत्पादन बढ़ाएगा। इससे स्थानीय लोगों की क्रयक्षमता बढ़ जायेगी। अगर किसी इलाके में इसी के

बीच इस प्रकार प्राचीर का निर्माण हो चूका है तो उसे नष्ट नहीं किया जा सकेगा। बल्कि वन सर्जन की मात्रा बढ़ानी होगी। अगर सीसम के पेड़ घना कर के लगाया जाय तो उनके पत्तों के छिद्र बादल को खींचकर लाएगा तथा वर्षा कराएगा जो मौसम में परिवर्तन ला देगा।

उस भयंकर तूफान के कारण समतट के मौसम में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। समतट की मिट्टी, खास करके चौबीस परगणा के दक्षिणाञ्चल सम्पूर्ण नमकीन हो गया। नमकीन मिट्टी में अच्छे फसल नहीं होना चाहते हैं। वस्तुतः नमकीन मिट्टी खेती के लिए प्राय अनुपयुक्त ही होता है। मिट्टी तथा ईंट से निर्मित मकानें इस क्षयिष्णु प्रभाव से जल्दी टुट जाते हैं। समुद्र का नमकीन पानी भी खेती के काम में लगाया नहीं जा सकता है। दक्षिण बंग के किसान बहुत मुस्किल से साल में एक फसल उगा सकता है, जो

काफी नहीं है। नमकीन मौसम के कारण समतट का मनुष्य सालो पर पेट की बीमारी से पीड़ित रहते हैं। इसीलिए खेती, व्यवसाय वाणिज्य का भी विशेष सम्भावनाएँ प्राय नहीं है। एक समय यहाँ पर कुछ मध्यम प्रकार के कुटीर शिल्प थे, जो आज समाप्त हो चूके हैं। इस शोचनीय आर्थिक परिस्थिति के साथ समतट प्रचण्ड मानस-अर्थनैतिक (Psycho-economic) शोषण का शिकार हैं।

यही समतट बहुत पहले बंगाल के पचास प्रतिशत सम्पद और गौरव का भागीदार था। प्राचीन रोम के इतिहासकारगण बंगाल को गंगा रिडि के रूप में ही (गंगानदी तथा राढ़ का मध्यवर्ती स्थान) वर्णन किए हैं। बंगाल का ऐतिहासिक उत्तराधिकार के निर्माण में समतट का अवदान समधिक है, क्योंकि इस समतट का बंगाली सग्रांमी चेतना के प्रतीक-स्वरूप था। हर युग में समतट के मनुष्यों विदेशी आक्रमण की आँधी को

सम्भाला है। विदेशी आक्रमणकारीगण हमेशा दक्षिणबंग के उपकूल (तीरवर्ती) अञ्चल से ही बंगाल में प्रवेश करने की कोशिश करते थे। समतट का गौरव, प्राकृतिक सौन्दर्य और आर्थिक उन्नति विदेशी पर्यटकों के निकट विशेष आकर्षणीय था। लेकिन वही इलाका, नमकीन मौसम तथा आर्थिक शोषण के कारण चरम दुर्दशाग्रस्त हो चूका है। अब समतट को नये रूप से तैयार करना पड़ेगा।

प्राय चार हजार वर्ष पहले समतट पर एक प्रतापशाली राजा थे जिसका नाम था सागर। उन्होंने एक दुर्धर्ष नौशक्ति का निर्माण किया था। उनके सार्वभौम कर्तृत्व में ये नौ सेनाएँ बंगाल की खाड़ी को रक्षा करते थे। उनका पुत्र भगीरथ जो एक इञ्जिनीयर थे, पूर्वराढ़ तथा बंगाल के दक्षिणांश में खेती की उन्नति के लिए दक्षिण मालदह से बंगाल की खाड़ी तक एक

खाल (नहर) का निर्माण कराया था। यही आज भागीरथी नदी के नाम से परिचित हैं। बंगला के पुराने कविता में इसे भगारखाल नाम से अभिहित किया गया है। सागर राजा के नामानुसार ही बंगाल की खाड़ी को सागर कहा जाता था।

समतट का सबसे बड़ा अभिशाप है इसकी लबणाक्तता, इसलिए इस इलाके को लोग नमकीन मिट्टी का बंगाल कहते हैं। इसलिए दक्षिणबंग को इस लवणाक्तता के हाथ से बचाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था लेने की जरूरत है। सबसे पहले राढ़ के विभिन्न नदियाँ, जेसे सुवर्णरिखा, कंसावती, दामोदर, अजय, मयुराक्षी, रूपनारायण से मीठा पानी समतट पर लाना होगा। मिट्टी के नीचे बड़े बड़े पाइप विछाकर, उसके माध्यम से मीठा पानी को प्रवाहित करके लाकर, यहाँ के खाल-बिल-तलाब, नदी तथा जोड़ियों में

डालना होगा। इसके फलस्वरूप सागर संगम के निकटवर्ती स्थानों को छोड़कर समतट के सभी नदियाँ मीठा पानी से भर जाएँगी।

इस प्रकार से यहाँ की मिट्टी जब प्राकृतिक रूप में लौट आएगी तथा लवणाक्तता से मुक्त होगी, तब यहाँ पर साल में चार फसल उगाए जा सकेंगे। इसके साथ अन्यान्य आर्थिक फसलें भी उत्पादन किए जा सकेंगे। इसके अलावे इसकी हवा में भी नमकीन का भाव घट जाएगा। सामग्रिक रूप से इस इलाके में उन्नत कृषि, व्यवसा-वाणिज्य तथा शिल्पोंन्नयन का अनुकुल परिवश तैयार होगा।

शिल्प केन्द्रों के लिए बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न लहरों से बिजली उत्पादन किया जा सकेगा। इस प्रकार से दक्षिणबंग के घर-घर में कुटीर शिल्प का निर्माण हो जाएगा। जिससे किसान

परिवार की लड़कियाँ भी शिल्पोत्पादन में हिस्सा ले पाएंगी। इसके सुदूर प्रसारी प्रभाव से आज के समय में बड़ती हुए बेकार समस्या का भी समाधान हो जाएगा। दक्षिण बंग अवश्य ही विद्युत उत्पादन में आत्मनिर्भर होगा। इसके अलावे विण्ड मिल के माध्यम से अतिरिक्त विदयुत का भी उत्पादन किया जा सकेगा।

तो हमलोग देख रहे हैं कि दक्षिणबंग को बचानें के लिए उसे लवणाक्तता विहीन करना पड़ेगा। अभी अधिकांश नदी तथा नहर कीचड़ से भरकर बद्ध जलाशय में परिणत हुआ है। इन सबों का पुनरूद्धार करना पड़ेगा। एक समय दक्षिणबंग जहाज शिल्प के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ पर बहुत सारे जहाज निर्माण केन्द्र भी थे। 150 साल पहले भी इन केन्द्रों पर बड़े-बड़े जहाजों का निर्माण होता था।

दक्षिणबंग का और एक लाभदायक शिल्प हुआ लवण-शिल्प। अतीत में यहाँ का नमक समग्र भारत की माँगों को मिटाकर विदेशों में भी निर्यात किया जाता था। अग्रेजों के जमाने में सुपरिकल्पित रूप से इस लवण शिल्प को ध्वंस किया गया है, जिसके फलस्वरूप पाँच महीनों के लिए वहाँ के मनुष्य उनके वंशानुक्रमिक जीविका से वञ्चित हो चूका है। दक्षिण बंगाल के नव निर्माण में इस लवण शिल्प को फिर से पुनर्जीवित करना पड़ेगा। अतीत काल से ही समतट वार-वार राजनैतिक दुर्गति के कब्जे में आया है। लेकिन इस इलाके का आदमी फिर से जग उठेंगे तथा समस्त बाधाओं को अतिक्रम कर सकेंगें।

दक्षिण बंग के उपकुल अञ्चल में अनेक प्रकार Sea-weeds मिलते हैं। जो दवाई शिल्प में काम आएगा। कृषिभित्तिक तथा कृषि निर्भर (agro and agrico) शिल्प के विकाश के

विषयसूची

माध्यम से जनसाधारण बेकारत्त्व से मुक्त होंगे। साथ में कुटीर-शिल्प, क्षुद्र-शिल्प और समवाय-संस्थाएँ गरीबों का आय वृद्धि करेंगे। लवणाक्तता से मुक्त होकर यहाँ के मनुष्य प्राणशक्ति को फिर जुटा पाएँगे। एक नवजीवन का उत्तरण होगा और वेलोग सुस्वास्थ्य, सुदीर्घ जीवन तथा उच्चमान के जीवनधारण के अधिकारी होंगे।

20 जुलाई, 1989, कलकत्ता

काँथि अववाहिका की परिकल्पनाएँ

समुद्र तटवर्ती काँथि अववाहिका इलाका, रसुलपुर नदी जहाँ पर समुद्र में गिरती है, वहाँ से शुरू करके सुवर्णरखा नदी के समुद्रसंगम तक विस्तृत है। अंग्रेजों ने कॉथि का नाम बदलकर कण्टाई कर दिया था। क्योंकि मुर्शिदाबाद जिला का कान्दि तथा मिदनापुर जिला का काँथि उनलोगों को एक ही तरह सुनाई देती थी। इसलिए उनलोगों ने काँथि का नाम बदल कर कण्टाई (Contai) कर दिया था।

विषयसूची

काँथि इलाका में जितने प्रकार के सम्पद मौजुद है। उन सभी सम्पदों को आधृत करके, छोटे, मझले या बृहत शिल्प उद्योगों के बीच सुसंगठित रूप से परिकल्पना उन्नयन के काम को आगे बढ़ाना होगा। पृथ्वी के प्राय सभी अञ्चलों में ही प्रकृति ने नानान रूप से अकृपण भाव से सम्पद फैलाकर रख दिए हैं। जल में, स्थल में, अन्तरीक्ष में, मरूस्थलोंपर, पहाड़ों पर, समुद्रगर्भ में, गहन जंगल इत्यादि बहुत सारे इलाकों में- प्रकृति ने अपना सम्पद फैलाने में कहीं भी कंजुसी नहीं की है। मनुष्यों की बुद्धि, बोधि, कठोर परिश्रम, पारस्परिक सहयोगिता तथा वाणिज्यिक बुद्धियों के द्वारा उन सम्पदों को कार्यान्वित करके एक-एक अञ्चल को शिल्प, कृषि, वाणिज्य में विकशित करके स्वयं सम्पूर्ण बनाना होगा। प्राउट के अर्थनीति के अन्तर्गत अर्थनैतिक विकेन्द्रीकरण, आञ्चलिक विषमता का दूरीकरण, क्रयक्षमता की वृद्धि, तथा जीवनयापन पद्धति के मान को उन्नत करके स्वयंसम्पूर्ण

अर्थनैतिक अञ्चल का निर्माण करना होगा। काँथि अववाहिका परिकल्पना के क्षेत्र में भी प्राउटिष्ट लोग इन्हीं नीतियों को कार्यान्वित करेंगे।

काँथि अववाहिका का उन्नयन वास्तव में उपभुक्ति (block-level) अर्थनैतिक प्रकल्प के अन्तर्भुक्त होगा। इस प्रकल्प की विशिष्टता होगी बहु कौणिक सन्तुलित सर्वात्मक ग्रामीण उन्नयन प्रकल्प (Multidimentional Balanced Integral Rural Development Planning)। काँथि इलाका में किस परिमाण तथा किन मात्राओं में सम्पद तथा सम्भावनाएँ छिपी हुई है, इस मामले में विगत 40 सालों में किसी भी सरकार ने किसी प्रकार संघठनात्मक कदम नही उठाया है। काँथि इलाका में अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। इन खास समस्याओं को हठाकर उनके सम्पदों को कैसे व्यवहार में लाया जाएगा, इसके लिए

परिकल्पनाएँ बनाने पड़ेंगे। लेकिन काँथि इलाका में अन्यान्य समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या हुई इस अञ्चल का सामुद्रिक तूफान ।

काँथि इलाका समुद्र तीरवर्ती एक निम्न इलाका है। इस स्थान समुद्र उपकूल से 200-300 मील दूरी पर के बंगाल की खाड़ी में प्रायः निम्न दाब की सृष्टि होती है। फलस्वरूप इस अञ्चल के मनुष्य, जनवसति, कृषिक्षेत्र तथा अन्यान्य स्थान प्राय प्रबल आँधी या तूफान से आक्रान्त तथा क्षतिग्रस्त होता है। प्रकृति की इस निष्ठुरता को वश में लाने के लिए काँथि अववाहिका अञ्चल के समुद्र उपकूल बराबर एक मील चौड़ा करके सीसम का पेड़, चिलगुजा पेड़, काजुबादाम की झाड़ियाँ, कटहल के पेड़, पाइन तथा झाउ गाछ आदि लगाकर कृत्रिम जंगल का निर्माण करना होगा। आँधी की तेज हवाएँ तथा तूफान का

जबरदस्त आक्रमण से बचने के लिए जंगल का निर्माण बहुत आवश्यक है। यह वनाञ्चल प्राचीर रूप में काम करेगा। एक नये प्रकार के वन-सर्जन प्रकल्प (afforestation policy) को अपनाना होगा। इससे काफी सुफल भी होगा। समुद्र से आते हुए आँधी को रोका जा सकेगा, कृषि तथा पेड़-पोधों के क्षय-क्षति को प्रतिरोध किया जा सकेगा। नया वनज सम्पद की बृद्धि होगी, वर्षा की मात्रा में बृद्धि होगी। काजू तथा कटहल जातीय अर्थकरी फसल की खेती को बढ़ाकर इस अञ्चल के मनुष्यों की क्रय-क्षमता को बढ़ाया जा सकेगा। वनसर्जन करने में अगर कहीं कोई गाँव या जनपद बीच में आ जाता है, तो उस गाँव या जनपद को तोड़ा नहीं जाएगा। उन्हें बीच में छोड़कर समुद्रतट के बराबर वन रेखा को आगे ले जाना होगा। अगर सीसम का पेड़ घना करके लगाया जाए तो इस पेड़ों के पत्ते बादल को खींचकर लाएगा। उससे वर्षा भी होगी। फलतः अञ्चलिक मौसम में एक बड़ा कल्याणकारी परिवर्तन होगा।

विषयसूची

यह कृत्रिम जंगल काँथि के समुद्र तटीय इलाके का भूमिक्षय को भी रोकने में व्यापक रूप से मददगार होगा। झाऊ तथा सीसम के पेड़ों की जड़ें मिट्टी के अन्दर जाल की तरह विस्तार लाभ करके मिट्टी कणों को जमीन के साथ पकड़ कर रख सकेंगे। फलस्वरूप भूमिक्षय को भी रोका जा सकेगा। गाँव में इस भूमिक्षय को 'खोवाई' कहा जाता है। इसके अलावे काँथि इलाके के समुद्र के बालुकाराशि को व्यवहार करने के लिए समुद्र बेलाओं में तरमूज, खरबूजा, परवल की खेती करके खोवाई को रोका जा सकेगा। इस प्रकार खेती करने से समुद्र तीरवर्ती सैकत भूमि की बालुकाएँ उड़ नहीं जाएंगे। खाली पड़े रहने के कारण ही समुद्र की तेज आँधी से बालुकाएँ उड़ जाती हैं और भूमिक्षय होने लगता है। इसके फलस्वरूप समुद्र जमीन को ग्रास करते-करते आगे बढ़ जाता है।

काँथि अववाहिका में व्यापक रूप में सामुद्रिक शिल्प निर्माण की सम्भावनाएँ मौजूद हैं। जैसे-मोती की खेती, नमक उत्पादन केन्द्र, आयोडिन तथा फसफरास उत्पादन की कारखानाएँ, सितुवा तथा शंख शिल्प, सामुद्रिक लता-गुल्म भित्तिक शिल्प (Sea-weed-industry), अर्थकरी फसलों का उत्पादन इत्यादि।

मोती की खेती

समुद्र के पानी को पकड़ कर रखकर कृत्रिम उपाय से व्यवसायिक आधार पर इस इलाके में सितुवा तथा मोती की खेती की जा सकती हैं। सम्पूर्ण कृत्रिम उपाय से भी यहाँ पर मोती की खेती हो सकती है। इन मोतियों को बाजारों में तथा आन्तर्जातिक

बाजारों में भेजकर काफी पैसे कमाए जा सकते हैं। इसके अलावे काँथि इलाका में मोतियों पर निर्भरशील शिल्प भी तैयार किए जा सकते हैं। इस प्रकार का उद्योग पश्चिम बंगाल के इस अनुन्नत इलाकों के ग्रामीण अर्थनीति को नया सम्पद तथा नयी सम्भावनाओं से भर दे सकता है। जपान में कृत्रिम उपाय से मोती की खेती ने उस देश के समुद्र तटवर्ती ग्रामीण मछुआरों के परिवारों के भी भाग्य बदल दी है। पश्चिम बंगाल के काँथि में भी मोती की खेती का काफी अवसर है।

लवण उत्पादन केन्द्र

काँथि के समुद्र तट के निकट एक मील चौड़ा जो वनरेखा निर्माण किया जाएगा उसी के बीचो-बीच लवण उत्पादन केन्द्र (Salt manufacturing unit) का भी निर्माण किया जा सकेगा।

विषयसूची

समुद्र के किनारे-किनारे नमक का तलाब (Salt-Tank) निर्मित होगा। इससे प्रत्यक्ष रूप से सैकड़ों परिवारों के कर्मसंस्थान की भी व्यवस्था होगी। काँथि अववाहिका अञ्चल की बेकार समस्याएँ भी दूर होगी। बंगाल को नमक के लिए गुजरात, महाराष्ट्र या दक्षिण भारत के उपर निर्भरशील नहीं रहना पड़ेगा। राज्य से अर्थ का बहिर्गमन भी रूक जाएगा तथा उससे बंगाल में सामग्रिक अर्थनैतिक कल्याण साधित होगा।

आयोडिन-फसफरास उत्पादन कारखाना

काँथि इलाका में समुद्र में ऐसे कुछ सामुद्रिक पेड़-पौधे तथा वनस्पतियाँ मौजूद हैं, जिन सबों से वैज्ञानिक यन्त्रपातियों के सहारे आयोडिन, फसफरास, पटासियम, सोडियम, तथा क्लोराइड आदि मूल्यवान रासायनिक पदार्थों का संग्रह करना सम्भव है। इन

सभी रासायनिक द्रव्यों के सहारे इस अञ्चल में वहुत सारे रासायनिक कारखाने बनाए जा सकते हैं। आयोडिन के सहारे इस इलाके में दवाई का कारखाना बनाया जा सकता है।

सितुवा तथा शंख शिल्प

काँथि के समुद्रतट पर नाना प्रकार के सुन्दर-सुन्दर सितुवे पाए जाते हैं। इन सभी सितुओं से गहने, घर का साज निर्माण के साथ नाना प्रकार हस्तशिल्प का निर्माण किया जा सकेगा। शंख शिल्प भी इस इलाके में प्रसार लाभ कर सकेगा।

सामुद्रिक गुल्प-आधारित शिल्प

(Sea-Weed-Industry)

काँथि अञ्चल के समुद्र-गर्भ में नाना प्रकार के जलज पौधे तथा गुल्म लताएँ मौजूद हैं। इन सभी जलज वनस्पतियों के शरीर से विभिन्न प्रकार की दवाइयाँ तथा प्रोटिन जातीय खाद्य पदार्थ निष्कासित किया जा सकता है। इन्हीं सबों के लिए काँथि अववाहिका के विभिन्न जगहों पर एकाधिक Sea-weed-processing factory का निर्माण किया जा सकता है। सामुद्रिक पौधों में प्रोटिन पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं। इन सबों में बहुत सारे पौधे ही तृणवर्गीय हैं तथा उन सबों से काफी प्रोटिन संग्रह किया जा सकेगा। इन तृणवर्गीय पौधों (weeds) से संग्रहीत प्रोटिन निरामिष भोजी लोग सात्त्विक भोजन के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। अगर किसी सामुद्रिक पौधों से प्राप्त प्रोटीन भक्षण करके किसी

के शरीर में एलर्जी उत्पन्न हो, तो उस जातीय सामुद्रिक पौधों के प्रोटीन को तामसिक खाद्य समझना होगा। प्रोटिन जातीय खाद्य दवाई के रूप में व्यवहार के लिए प्रोटिनयुक्त औषध तथा वटिका निर्माण कारखाने भी काँथि इलाका में बनाया जा सकता है।

अर्थकरी फसल उत्पादन

काँथि इलाका में अर्थकरी फसल के रूप में नारियल, परवल, तरमूज, खरबूजा, काजू, कटहल, सबेदा, पान, सुपारी, तथा केले के खेती अच्छी तरह से की जा सकेगी।

मिदनापुर जिला के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वांश की मिट्टी नमकीन है। इसलिए इस अञ्चल में काफी मात्रा में नारियल पैदा

होते हैं। एक ही कारणों से काँथि के समुद्रतट में तथा पार्श्ववर्ती इलाकों में उन्नत किस्म के नारियल पैदा हो सकते हैं। केरल का अधिक फलनशील (high breed) नारियल के पेड़ लगाकर मात्र पाँच साल के अन्दर ही पेड़ों पर नारियल लगना शुरू हो जाएगा। नारियल के पत्तों को जलावन के रूप में व्यवहार किया जा सकेगा। पत्तों के सलाखे को झाडू शिल्प निर्माण में व्यवहार किया जा सकेगा तथा नारियल तेल के कारखाने बनाए जा सकंगे। माथे पर तथा रन्धन (रसोई) के लिए व्यवहार योग्य बहुत साकरे छोटे छोटे नारियल तेल उत्पादन कारखाने बना सकने पर समग्र पश्चिम बंगाल तथा उत्तर-पूर्वी भारत के राज्यों में भी इस तेल का अच्छा बाजार मिल जाएगा। नारियल की खोली से बहुत प्रकार के सुन्दर-सुन्दर बहारी कारूशिल्प का निर्माण किया जा सकेगा। इससे गाँव-गाँव में कुटीर-शिल्प निर्माण का नया अवसर तैयार होगा। नारियल का पानी वैज्ञानिक उपाय से कुतुबन्दी (बोतल में भरकर) पानीय के रूप में दूर-दराजों के जगहों पर विक्रय की व्यवस्था

किया जा सकता है। नारियल के गुड़ों से मिठाइयाँ बनाए जा सकेंगे, नारियल पेड़ की एक सुखी गद्दी गृह निर्माण के काम में भी व्यवहृत होगा। एक वाक्य में कहा जा सकता है कि काँथि इलाका में अगर व्यापक रूप से नारियल के बगीचों का निर्माण किया जाय तो इस प्रखण्ड की अथनैतिक अवस्था का वैप्लविक परिवर्तन घटाना सम्भव होगा। सुखी हुई नारियल के छिलकों से पापोस शिल्प, रस्सी निर्माण शिल्प, गरमी के दिनों में खिड़की-दरवाजों में व्यवहार के लिए ठण्डे पर्दों का निर्माण शिल्प का भी निर्माण किया जा सकता है। सुखा नारियल आयुर्वेद चिकित्सा में दवाई के रूप में व्यवहृत होता है। बंगाल तथा भारत में नारियल गुड़ का बहुत बड़ा बाजार है। इससे भी इलाकों के लोग काफी अर्थ उपार्जन कर सकेंगे।

काँथि, दीघा तथा उस इलाके का समुद्रतट काफी प्रशस्त है। इसलिए समुद्र के किनारे परवल, तरबूज तता खरबूजों की लाभदायक खेती सम्भव है। पानी में डूब न जाये पर समुद्र के किनारों पर बारह महीनें ही परवल की खेती की जा सकती है। इससे स्थानीय गरीब किसानों के भाग्य का नया द्वार खूल जाएगा। इसके अलावे तरबूजों तथा खरबूजों की भी खेती इस इलाके में व्यापक तौर पर किया जा सकेगा। भारत जैसा ग्रीष्म प्रधान देशों में इन सब की काफी माँगे हैं। ये सब जनप्रिय अर्थकरी फसल है।

बंगला में काजूबदाम को हिजलीबदाम कहते हैं। भारत तथा भारत के बाहर काजूबदाम बहुत अर्थकरी फसल के रूप में विवेचित हैं। काँथि अववाहिका इलाका में मिट्टी तथा मौसम काजूबदाम उत्पादन के लिए उपयोगी है। विज्ञान का प्रयोग करके आधुनिक उपाय से उस अञ्चल में काजूबदाम की खेती को

बहुलांश में बृद्धि की जा सकेगी। काजू बदाम को भूझकर, कच्चा या पैकिंग करके अथवा काजूबदाम का चूर्ण मिलाकर मिठाइयाँ बना करके बाजार में बेचने पर तथा काजू का नाना प्रकार अर्थकारी व्यवहार की व्यवस्था करने पर गाँव के लोग अर्थ उपार्जन का एक अच्छा उपाय खोज पाएगा।

कटहल या कण्टकीफल के बीज में भी अनेक सम्भावनाएँ छिपी हुई है। ग्राम बंगला के मनुष्य कच्ची अवस्था में कटहल की सब्जी खाकर पुष्टि साधन कर सकेंगे। पके हुए कटहल का रस टीना में पैक करके बेचा जा सकेगा। कटहल का बीज सुखाकर आलु के विकल्प रूप में व्यवहार किया जा सकता है। भारत तथा बंगाल में आलु का व्यवहार शुरू हुआ है मात्र कई एक सौ वर्ष पहले। उसके पहले बंगाल के माताजी लोग सब्जियों में भी

व्यापक मात्रा में कटहलों के बीजों का व्यवहार करते थे। पके हुए कटहल का रस तथा बीजों का खाद्य-मूल्य बहुत अधिक है।

काँथि अववाहिका की जमीन तथा मौसम सबेदा फल उत्पादन के लिए भी काफी उपयोगी है। समुद्र की नमकीन हवा जितनी दूर जाएगी उतनी दूरी पर सबेदा फल की खेती अच्छी होगी। उससे अधिक दूरी पर जाने से और उतने उत्कृष्ट मान का सबेदा फल उत्पन्न नही होगा। सबेदा बहुत प्रिय, उपादेय तता स्वास्थ्यकर अर्थकारी फसल है।

काँथि इलाकें में काफी मात्रा में सुपारी, पान तथा केले भी उत्पन्न होंगे। ये तीनों फसल अर्थकारी तथा मुनाफादायक है।

पृथ्वी का सबसे बड़ा समुद्र सैकत

दीघा का सागर सैकत दुनिया में सबसे बड़ा समुद्र सैकत है। कहीं-कहीं पर यह सैकत दो मील तक चौड़ी है। दीघा के समुद्र तट बराबर काँथि इलाके में वनसर्जन करके उसके साथ-साथ अगर पक्की सड़क तथा सैकत बराबर रेल लाइन का निर्माण किया जाय, तो भारत तथा बंगाल के भ्रमण विलासी मनुष्य दीघा को आकर्षणीय भ्रमण केन्द्र के रूप में चून लेंगे। उस समय समुद्र सैकत का प्राकृतिक सौन्दर्य उपभोग करने के लिए दूसरे प्रदेशों के लोग भी घूमने आ सकेंगे। अच्छा होटल, पानीय जल की सुव्यवस्था, दाँतन से दीघा तक रेलपथ का निर्माण, सांस्कृतिक केन्द्र स्थापन इत्यादि होने पर दीघा एक जनप्रिय तथा आकर्षणीय सैकातावास हो उठेगा। उसके फलस्वरूप इस अञ्चल के मनुष्यों की आर्थिक दुरवस्था बहुलांश में समाप्त हो जाएगा। नयी-नयी

दुकानें, हाट-वाजार, शाक-सब्जियों की माँग तथा परिबहन व्यवस्था व्यापक कर्मसंस्थान का अवसर लाएगा।

नया बन्दरगाह

दीघा से कुछ दूरी पर जहाँ पर सुवर्णरखा नदी बंगाल की खाड़ी में गिर रही है। इस संगम के मुँह पर अच्छा बन्दरगाह का निर्माण हो सकता है। हलदिया बन्दरगाह का भविष्य बहुत अच्छा नहीं है। इसलिए सुवर्णरखा-बंगोपसागर की मुहाना पर अगर नयी बन्दरगाह का निर्माण किया जाय तो पश्चिम बंगाल के मानचित्र पर और भी एक नया वाणिज्य केन्द्र को स्थान प्राप्त होगा। कलकत्ता बन्दरगाह तथा हलदिया बन्दरगाह से जो सब चीजों की आयात-निर्यात होती है, वे सब तो इस बन्दरगाह से जाएँगे ही, इसके अलावे इस इलाके का कृषिपण्य, नारियल, पान, सुपारि, केला,

तरमूज, परबल इत्यादि सामानों की निर्यात की जा सकेगी। इस बन्दरगाह का निर्माण होने से काँथि अववाहिका में नये-नये निर्यात-शिल्प तथा कारखानों का निर्माण होगा। अब काँथि अववाहिका का मनुष्य नौकरी की तलाश में कलकत्ता, दुर्गापुर, टाटा या मुम्बई में दौड़झाँप नहीं करेंगे। पूरे काँथि अववाहिका में तथा मिदनापुर जिला के दक्षिणांश में एक अर्थचैतिक विप्लव आ जाएगा।

हावड़ा-दाँतन-दीघा रेलवे

काँथि महकुमा में कोई रेलपथ नहीं है (इस लेख की रचना के समय कोई रेलपथ नहीं था। वर्तमान में बना है)। इस अञ्चल के द्रुत विकाश हेतु दाँतन से दीघा अवधि रेलपथ का निर्माण करना ही होगा। इसके फलस्वरूप कलकत्ता से यात्रीगण सीधे दीघा

पहुँच पाएँगे। इस रेलपथ का निर्माण होने से काँथि अववाहिका का उन्नयन परिकल्पनाएँ द्रुत गति से वास्तवायित होना शुरू हो जाएगा। स्थानीय इलाकों में शिल्प-विस्तार तथा व्यवसा-वाणिज्य का भी प्रसार होगा। दाँतन-दीघा रेल-लाइन ही होगा काँथि महकुमा (अनुमण्डल) का life-line | इसके अलावे काँथि शहर से दीघा होकर समुद्र तट के बगल से हल दिया तक रेल-लाइन बिछाने पर इस अञ्चल का व्यवसा-वाणिज्य तथा शिल्प द्रुत गति से आगे बढ़ेगा तथा भ्रमण कारियों के लिए भी समुद्र तटवर्ती यह अञ्चल एक आकर्षणीय रेल-भ्रमण के स्थान के रूप में परिणत होगा।

काँथि का मृतप्राय दो शिल्प

विषयसूची

सोचने पर बहुत कष्ट होता है कि इतने सम्पद तथा संभावनाओं से भरपूर काँथि इलाका में चटाई तथा ताँत-शिल्प छोड़कर तीसरा किसी शिल्प का ही निर्माण नहीं हुआ है। ये दोनों शिल्प भी वर्त्तमान में मृतपाय हो चूका है तथा ध्वंस के कगार पर है। काँथि इलाका को अर्थनैतिक दृष्टिकोण से मजबूत बनाने के लिए विगत 40 वर्ष से विभिन्न कतृपक्षों ने चरम उपेक्षा तथा अदूरदर्शिता का परिचय दिया है। इस का चटाई-शिल्प तथा ताँत-शिल्प वर्त्तमान में पूँजी के अभाव में गहरी साँस ले रही है। कम व्याज पर कर्ज देकर, चटाई शिल्पियों को समवाय प्रथा के माध्यम से उत्पादन हेतु उत्साह देकर, इनके द्वारा बनाए गए वस्तुओं को सर्वभारतीय बाजार में बेचने की व्यवस्था करने पर तथा गर्म-उष्ण मौसम वाले अरवियन देशों में चटाई निर्यात करने की व्यवस्था करके, स्थानीय गरीब चटाई शिल्पियाँ काफी पैसे कमा पाएँगे। बंगाल का 40% चटाई मिदनापुर जिला में ही उत्पन्न होते हैं।

विषयसूची

अनूरूप भाव से काँथि अञ्चल के ताँतियों के द्वारा व्यवहार में लाए गए पुराने ताँत (handloom) के बदले बिद्युत-चालित आधुनिक ताँत चलाने की शिक्षा देना पड़ेगा। तब ही इस इलाके की ताँती लोग तीब्र गति से उत्पादन करके आधुनिक बड़े-बड़े वस्त्र कारखानों के साथ प्रतियोगिता में टीक पाएँगे। ताँतियों का समवाय उत्पादन केन्द्र निर्माण हेतु सरकार को उचित कदम उठाना चाहिए था। लेकिन इस मामले में भी इस अञ्चल में कुछ भी नहीं किया गया है। केवल अति उच्चमान के सूक्ष्म कारूकार्य युक्त विशेष किस्म के वस्त्र निर्माण के लिए ही हस्त-चालित ताँत का व्यवहार किया जा सकता है। आधुनिक रूचि तथा माँग के अनुसार ताँत के उत्पादित सामग्रियों के मान को बरकरार रखने हेतु भी ताँत शिल्प को ध्यान देना पड़ेगा।

काँथि इलाके का ताँती परिवार तथा चटाई शिल्पं में नियुक्त मनुष्यों को संघबद्ध करके इन दो शिल्पों का आधुनिकीकरण तथा उन्नति घटा सकने पर हजार हजार मनुष्यों की आर्थिक अवस्था में परिवर्तन लाना संभव होगा।

काँथि इलाके के मछुआरों का अर्थ उपार्जन का एक बहुत बड़ा स्रोत है – सुखी मछलियाँ। वे लोग मछलियाँ सुखाकर बाजार में चलान देता है। मछलियाँ सुखाने के क्रम में मछलियों का शरीर सड़ने लगता है तथा हवा में दुर्गन्ध फैलाने लगता है। इस से परिवेश तो दूषित होता ही है, इसकी प्रतिक्रिया के कारण अराति अणुजीवत समुह (Negative microvita) इस इलाके की समुद्रतटवर्ती स्थानों को आक्रमण करते है। जनस्वास्थ्य तथा जनकल्याण हेतु यह व्यवस्था एकदम समर्थनयोग्य नहीं हैं। आधुनिक विज्ञान की मदद से यन्त्रपाति प्रयोग करके मछलियों को

dehydration plant में सुखाना पड़ेगा। इससे हवा में दुर्गन्ध नहीं फैलेगा। इस मामले में सरकार या समवाय समितियों को अग्रसर होना पड़ेगा उस प्रकार के कारखाने बनाने के लिए। लेकिन मानस-अर्थनैतिक (psycho-economy) तत्त्व के अनुसार इस प्रकार हानिकारक तामसिक खाद्य उत्पादन को प्रोत्साहन देना उचित नहीं होगा। लेकिन मनुष्यों के दीर्घ दिनों के अभ्यास तथा मनस्तत्त्व की बात को सोचकर तथा मछुआरों के विकल्प रोजगार की व्यवस्था न कर सकने तक, इस प्रकार मछली विक्री की व्यवस्था को अचानक बन्द कर देना उचित नहीं होगा। लेकिन जनस्वास्थ्य तथा परिवेश दूषण की बात को ध्यान में रखते हुए जितनी जल्दी संभव इस प्रकार दुर्गन्ध युक्त मछलियों की विक्री का व्यवसाय को खत्म करना ही उचित होगा।

जून 1988, कलकत्ता

बंगाल के लिए कई उन्नयनमूलक कार्यक्रम

अब दीघा की बात की जाए। पहले दीघा का नाम था दीर्घका 'दीर्घ' का मतलब लम्बाई में बड़ा और क का अर्थ हुआ भूमि। इसी प्रकार से बना है आज का दीघा । दीघा के निकट जो रामनगर है उसका नामकरण हुआ है, मेदिनीपुर जिला के शेष (अन्तिम) महाराजा रामनारायण हाता के नामानुसार। उस समय जिला की राजधानी थी काँथि। रामनगर एकवार प्रचण्ड आँधी के चंगुल में फँसा था, उस समय अंग्रेजों ने ही जिला का मुख्यालय काँथि में स्थानान्तरित किया था। लेकिन उन लोगों ने कॉथि का

विषयसूची

नाम बदलकर कण्टाई कर दिया क्योंकि प्राय सामना-सामनि एक जिला मुख्यालय का नाम था कान्दि। दीघा के साथ चारों ओर का इलाका में प्रधानतः बौद्धों का निवास था।

दीघा का समुद्र तट पृथ्वी में सबसे अधिक चौड़ा है। समग्र दीघा अञ्चल बराबर समुद्रतट के किनारे सामुद्रिक झाव इत्यादि लगाकर बृहत रूप से वन सर्जन करना होगा। जिस के फलस्वरूप सामुद्रिक आँधी को रोका जा सकेगा। यह होनेपर दीघा अञ्चल में नानाप्रकार के पेड़ लगाए जाएँगे। नारियल यहाँ पर अच्छा ही होता है। अगर तुम गाड़ी से दीघा के समुद्र तटवर्ती रास्ता को पकड़ कर पाँच मील जाओ तो देखोगे कुछ वनाञ्चल है। यह ठीक है कि समुद्र के आग्रासन को रोकने के लिए दीघा के समुद्र तट पर उस प्रकार पत्थर का कोई, दीवार नहीं बनाई गई है। आनुमानिक प्रति

सात साल में एकबार विशाल आँधी आकर पेड़-पौधों को धो पोंछ कर लेकर चला जाता है, जिसके

कारण पेड़ें बड़ा होने का अवसर नहीं पाता है। अगर हर साल नियमित रूप से व्यापक रूप में तट बराबर पेड़ न लगाया जाय तथा ठीक से पत्थरों की दीवारें न बनाया जाय, तो भूमिक्षरण और भी बढ़ जाएगा, और आँधी की तीव्रता को रोकने का कोई उपाय ही नहीं रहेगा।

रेल लाइन को भोगराई तक ले जाना पड़ेगा। जहाँ पर सुवर्णरेखा नदी समुद्र में गिरती है। वर्त्तमान में भोगराई उड़ीसा के अन्तर्भुक्त है। वहाँ पर या दीघा के अन्य सुविधाजनक स्थान पर बन्दरगाह का निर्माण करना पड़ेगा जहाँ से नारियल, मछली, पान, सुपारी तथा उन्नत किस्म के काजुबादाम आदि निर्यात किए जा

सकेंगे। इसके फलस्वरूप इस अञ्चल का सामाजिक-अर्थनैतिक उन्नयन द्रुतगति से होगा। भ्रमणकारियों के निकट इसे आकर्षणीय बनाने के लिए दीघा के समुद्र तट बराबर मेरिन ड्राइव का निर्माण करना होगा और इसका उपयुक्त सौन्दर्यायन (सुन्दरी करण) भी करना पड़ेगा।

इतिहास तथा अन्धविश्वास

यह रेनेसाँ युनिवर्सल का सम्मेलन है। आज हमलोगों का आलोच्य विषय है, इतिहास तथा अन्धविश्वास।

विषयसूची

पहले ही मैं तुमलोगों को बता देना चाहता हूँ, अंग्रेजी का हिस्ट्री (history) और संस्कृत का इतिहास दोनों शब्द समार्थक नहीं हैं। अतीत की घटनाओं का कालानुक्रमिक विवरणी जिसे अंग्रेजी में हिस्ट्री कहते हैं। संस्कृत में उसे इतिवृत्त, इतिकथा, पुरावृत्त या पुराकथा कहना चाहिए। इतिवृत्त या हिस्ट्री में जो शिक्षागत मूल्य है इसे हमलोग इतिहास कहेंगे। इतिहास को इस रूप में संज्ञायित किया गया है :

धर्मार्थकाममोक्षार्थं नीतिवाक्य समन्वितम् ।
पुरावृत्त कथा युक्तम् इतिहासः प्रचक्षते ।।

जिस प्रकार का पुरावृत्त भौतिक माँगों, मानसिक आकाक्षाओं तथा मानस-आध्यात्मिक और आध्यात्मिक

वासनाओं को चरितार्थ कर सकता है तथा एक ही साथ में नीति वाक्यों से समन्वित हैं, उसे इतिहास कहना चाहिए।

इस संज्ञा के अनुसार महाभारत को अवश्य ही इतिहास कहा जा सकता है। जो लोग इसे केवल महाकाव्य या शिक्षणीय कहानी के रूप में समझाते हैं, उनलोगों के साथ में एकमत नहीं हूँ। तो अब तुमलोगों ने समझ गया कि स्कूल कालेजों में साधारणतः The history of India" नाम से जो किताब पड़ाई जाती है उसे भारतवर्ष का इतिहास न कहकर भारत की इतिकथा कहना उचित होगा।

जो किताब इतिहास के प्रसंगों को छोड़कर केवल नीतिशिक्षा प्रदान करती है उसे पूराण कहा जाता है। इस प्रकार की किताबें हमारे एतिहासिक घटनाओं का निर्धारण करने में मदद

विषयसूची

नहीं करती हैं। वास्तव में उनलोगों के द्वारा अतिरंजित तथा कल्पित कहानियाँ पाठकों के मन में विभ्रान्तिओं की सृष्टि करतीं है। उदाहरण के लिए हमलोग रामायण की बात का उल्लेख कर सकते हैं। इसका शिक्षणीय मूल्य अत्यन्त महत् होते हुए भी रामायण कोई इतिहास या इतिकथा नहीं है। यह एक पुराण हैं। रामायण के समस्त चरित्र ही काल्पनिक हैं। रामायण में वर्णित उड़ता हुआ विमान पुष्पक रथ, मनुष्यों के मन में भ्रान्त धारणाओं का सर्जन कर सकता है कि रामायण काल में भारतवर्ष के लोग हवाई जाहाज का निर्माण करना जानते थे। हमारे पूर्वजों के सम्पर्क में इस प्रकार लिखित तथ्यों को पड़कर लोग इतिहास को गलत समझने लगेंगे और अवास्तव को वास्तव समझकर मिथ्या विश्वास की और अग्रसर हाने लगेंगे और इस प्रकार से अन्धविश्वास का शिकार बनेंगे। यह केवल रामायण या अन्यान्य विख्यात पुराण-कथाओं की समस्याएँ नहीं है, बल्कि अनेक प्राचीन कहानियों

तथा उपन्यासों की भूल से इतिहास समझाकर पाठकों में अन्धविश्वास का बीज उनके मन के गहराई में पहुँच जाता है।

मनुष्यों के मन में अन्धविश्वास का जड़ पैदा होने के अनेक कारण हैं। इन कारणों को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे इतिहास के सम्पर्क में अज्ञता, विज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञता, विचार-बुद्धिहीन आसक्तिजनित कुसंस्कार, और अन्धविश्वास जो अभ्यास में बदल चूका है। इतिहास के सम्बन्ध में अज्ञता के कारण जो अन्धविश्वास पैदा होते हैं, आज हमलोग उसी के सन्दर्भ में विचार विश्लेषण करेंगे।

सबसे पहले जातिभेद प्रथा को लेकर आलोचना किया जाय। यह बात अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि सृष्टि के ऊषाकाल में धरती पर मनुष्यों की वस्तियाँ नहीं थी। भुमाचक्र की

केन्द्रानुगा शक्ति तथा प्रतिसञ्चर धारा में पञ्चभूत तत्व से पहले वनस्पतियाँ उसके बाद अनुन्नत प्राणियों तथा सब से अन्तिम में मनुष्यों का उदभव हुआ। इतिहास के अध्ययन ने हमें सीखाया है कि प्राय दस लाख वर्ष पहले उस समय के वनमानुष के समतुल्य एक श्रेणी के आधामानव का उद्भव धरती पर हुआ था। ये आधामानव लांगुलविहीन (पूँछ-रहित) वनमानुष.. . मनुष्यों के प्रथम दिक के पूर्वज (गेरिला, शिम्पाञ्जी, ओरांओटां इत्यादि) थे। मानव जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अध्ययन करके तथा मनुष्यों के प्राचीनतम पूर्वजों को खोजकर निकालने के बाद हर शिक्षित मनुष्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा सभी मनुष्य इन्हीं आधामानव गोष्ठी से आए हैं। तर्कसंगत रूप से मनुष्यों की कोई भी गोष्ठी यह दाबा नहीं कर सकता है कि उनके पूर्वज अन्य लोगों के पूर्वजों से उन्नत थे। हर बुद्धिमान मनुष्य को यह मानना ही पड़ेगा कि जातिभेद प्रथा मनुष्य-सृष्ट है, ईश्वर प्रदत्त नहीं। चूँकि मनुष्यों की उत्पत्ति वनमानुष से हुई है, इसलिए सब की जाति एक ही है। क्या

ब्राहाणों का पूर्वज ब्राह्मण बन्दर था या कायस्थों का पूर्वज कायस्थ बन्दर था? इस प्रकार हास्यकर धारणाएँ इतिहासवेत्ताओं के लिए मजाक का खुराक बनेगा। वास्तव में बात की मारपेंच में या बुद्धि की लड़ाई में दूसरों को हराकर प्राचीनकाल के मनुष्य अपनों को उच्च जाति में प्रतिष्ठित किया था आज उनके वंशज उसे उनके पैतृक वंश कहकर दाबा कर रहे हैं। साथ ही अपेक्षाकृत कम बुद्धि के लोगों को नीच जाति के रूप में स्वीकार करने के लिए वाध्य किया गया था।

बहुत लोग खून की शुचिता के बारे में बातें करते हैं। इस विषय पर भी आलोचना की जाए। खून की विशुद्धता का मतलब अगर कोई शुद्ध आर्य-रक्त की बात करें तो मैं उनसे पूछेंगा, कि आर्य लोग मध्य-एशिया तथा आर्कटिक अञ्चलों से भारत के लिए अभिप्रयाण किया था, क्या उनके खून में अनार्य-रक्त का

मिश्रण नहीं हुआ है ? अवश्य ही आर्य तथा अनार्यों के बीच खून का विमिश्रण हुआ था। और इसी कारण से वेलोग जिस रास्तों से भारत में प्रवेश किए थे, उसके अनुसार धीरे-धीरे उनके चमड़े का रंग क्रमशः सफेद से काला अथवा पीताभ (पीले रंग) में परिवर्त्तित हुआ है। आर्य-अनार्यों के खून के संमिश्रण के कारण ही हमलोग भारतवर्ष में काले चमड़े का ब्राह्मण तथा सफेद चमड़े का शुद्र देख पाते हैं।

कुछ लोग जाति प्रथा के बारे में इतिहास की किताबों का उल्लेख करके जाति प्रथा को समर्थन करते हैं। विभिन्न जाति के सम्पर्क में कठिन संस्कृत भाषा में बहुत सारे ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गए हैं। लेकिन इन ग्रन्थों में एक मौलिक विसंगति परिलक्षित होती है। अगर हमलोग इन ग्रन्थों के श्लोकों पर विश्वास करें तो ये ग्रन्थ हमें विश्वास करने के लिए बाध्य करेंगे कि एक जाति

परमपुरूष के मुख से, और एक जाति उनके हाथों से, और एक जाति उनके शरीर के मध्यभाग से तथा एक जाति उनके पैरों से उद्भूत हुए हैं। जो लोग नशाग्रस्थ हैं केवल वही लोग इस प्रकार के शास्त्रों को प्रामाणिक रूप में विश्वास करेंगे। स्पष्टतः कोई भी मनुष्य मुँह से जनम नहीं ले सकता है। यद्यपि दार्शनिकभाव से स्वीकार किया गया है कि इस प्रपञ्चमय महाविश्व की सृष्टि एक विशाल निराकार ब्रह्मदेह से हुई है लेकिन यह सोचना एकान्त मूर्खता है कि ब्रह्म-देह का मुँह, हाथ, पैर जाँघ इत्यादि होते हैं और उससे ऊँच-नीच विशिष्टता सम्पन्न अलग-अलग जातियों का उद्भव हुआ है। वास्तव में ऋग्वेद का यह श्लोक नेहात ही एक प्रक्षिप्त अंश हैं जो जातिप्रथा की त्रुटिपूर्ण धारणा को बचाकर रखने के लिए व्यवहार किया गया है। अधिकन्तु इस श्लोक का वास्तविक अर्थ इससे अलग ही है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत बाहु राजन्योऽभवत ।

मध्य तदस्य यद् वैश्य पदभ्याम् शूद्रोऽजायत ।।

परम सत्ता के मुँह से ब्राह्मण, हाथों से क्षत्रिय जंघों से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है।

वास्तव में यहाँ पर ब्राह्मण शब्द का अर्थ हुआ जो लोग सत्त्वगुणी तथा बुद्धिजीवी स्वभाव के लोग होते हैं। रूपक के माध्यम से समझाया गया है बुद्धि-जीवि वर्ग परम सत्ता के मुँह का प्रतीक स्वरूप है। योद्धागण (रजोगुणी) वीर बाहु-तूल्य, पूँजीवादी वणिक-व्यवसायीवर्ग भूमाशरीर का मध्यभाग सदृश हैं और श्रमिक वर्ग पैरों के प्रतीक स्वरूप हैं। यही है इस श्लोक की उचित व्याख्या।

जातिभेद प्रथा के बीच इतिहास में भी हजारों प्रकार की विसंगतियाँ आसानी से ही पकड़ में आती है। उदाहरण स्वरूप, अगर जातिप्रथा को दृढ़ रूप से माना जाय तो इतिहास के अनुसार मानना पड़ेगा कि मात्र दश श्रेणियों के ब्राह्मण थे, पाँच उत्तर भारत से पाँच दक्षिण भारत से। ब्राह्मणों में अन्यान्य गोष्ठी जो लोक इन दस श्रेणियों में नहीं आते हैं उन्हें अब्राह्मण कहकर मानना पड़ेगा। इसके अलावे विभिन्न जोतियों के इतिहास में व्यापक रूप से नियोग प्रथा (**अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य की पत्नी के गर्भ में सन्तान उत्पन्न करना**) का उल्लेख मिलता है, जिसके फलस्वरूप व्यापक रूप से संमिश्रण हुआ था। इसके अतिरिक्त बौद्धयुग में जाति प्रथा की कठोरता में शिथिलता आ गयी थी और विभिन्न जातियों का संमिश्रण साधारण बात हो गयी थी। निज अञ्चलों में कट्टरबादी लोग जात-पात के नियमों को कड़ाई के साथ अनुसरण करने की कोशिश की थी, वहाँ पर नयी-नयी जातियों तथा उपजातियों की सृष्टि हुई थी।

मैं तुमलोगों को एक कहानी सुनाता हूँ जो जातपात के इतिहास के आपसी विरोध की प्रकृति को सामने ला देगी। बंगाल के ब्राह्मणों के वर्ण इतिहास में उल्लेख किया गया है कि राजा जयन्त शूर ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) से पाँच निष्ठावान ब्राह्मणों को बंगाल में ले आए थे। इन्हीं पाँच ब्राह्मणों को राढ़ तथा वरेन्द्र भूमि में वसनेवाले लाखों ब्राह्मणों के पूर्वज माना जाता है। क्या इन पाँच ब्राह्मणों के प्रत्येक ने काफी संखक बंगाली महिलाओं को शादी की थी ? नहीं तो उनके इतने संख्यक वंशज कैसे पैदा हुए थे? इस में यह भी कहा गया है उन ब्राह्मणों के साथ पाँच शूद्र भी उनके परिचारक के रूप में आए थे और वही लोग बंगाल के कायस्थों के पूर्वज थे। इधर कायस्थों के वर्ण इतिहास में उल्लेख किया गया है कि, राजा जयन्त शूर ने कान्यकुब्ज से पाँच योद्धाओं को बंगाल में लाए थे और वे लोग ही बंगाल के राढ़ तथा वरेन्द्र भूमि में बसनेवाले कायस्थों के पूर्वज थे। ये सभी कायस्थ योद्धा थे और

चमड़े की जूते पहन कर घोड़ा पर चढ़कर बंगाल में आए थे। यद्यपि वे लोग युद्धविद्या में निपुण थे लेकिन वे लोग खाना पकाना नहीं जानते थे। इसीलिए पाँच रसोइये ब्राह्मणों को उनके साथ में ले आए थे। ये रसोइये ही राढ़ तथा बरेन्द्रभूमि के ब्राह्मणों के पूर्वज थे। स्पष्टतः प्रश्न खड़ा होता है कि क्या ये सब वर्ण इतिहास विश्वास के लायक है?

कायस्थों के वर्ण इतिहास के अनुसार बंगाल के कायस्थों के प्रथम पितृपुरूष थे चित्रगुप्त (चार-पाँच गोष्टियों को छोड़ कर सभी कायस्थ चित्रगुप्त को ही प्रथम पितृपुरुष के रूप में मानते हैं)। मजे की बात है कि चित्रगुप्त एक काल्पनिक चरित्र हैं। वे ब्रह्मा के पौराणिक पुत्र थे। वर्ण इतिहास में बताया गया है कि चित्रगुप्त के बारह पुत्र हुए थे। चारू, सुचारू, चित्रचारू, अरूण, यतीन्द्र, हिमवान, मतिमानं, भानु विभानु, विश्वभानु और वीर्यभानु। इन

बारह पुत्रों से बारह कायस्थ परिवारों का सर्जन हुआ-अम्बष्ट, श्रीवास्तव, भटनागर, माथुर, सक्सेना, गँद, सूर्यध्वज, बाल्मीकि, कुलश्रेष्ठ, आस्थाना, निगम और करण। लेकिन मजे की बात है कि इन बारह कायस्थ परिवारों के लोगों के दो-दो हाथ हैं, और उनके पितृ-देव के चार हाथ दिखाए गए हैं। वे अपने चार हाथों में क्रमशः वज्र, गदा, लेखनी तथा स्याही का दवात पकड़े हुए हैं। यद्यपि चित्रगुप्त को मनुष्य के रूप में स्वीकार किया भी जाय तो भी वे एक अदृश्य राज्य के अभिलेखापाल थे। चित्रगुप्त की कहानी विश्वास योग्य है या नहीं यह मैं ने तुम्हीं लोगों पर छोड़ दिया।

भारतवर्ष में कुछ सम्प्रदाय के लोग हैं जो लोग प्राचीन कहानियों तथा पुराणों की बातों पर बहुत अधिक मात्रा में जोर डालते हैं और इस मामले में एक अस्वास्थ्यकर प्रवणता भी मौजुद है। वे ऐसे कहते हैं कि वे लोग इतिहास के बारे में अनभिज्ञ हैं। मैं ने

सुना है कि इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ है पौराणिक राजा भरत के नाम पर। लेकिन वास्तव सत्य कुछ और भी है। राजा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष नहीं हुआ है। नाम के साथ सायुज्य रहने के कारण जनसाधारण विभ्रान्त हुआ था। व्युत्पत्ति के अनुसार 'भर' का मतलब होता है भरण-पोषण करना। वर्ष शब्द का अर्थ होता है विस्तीर्ण भूमि। अर्थात भारतवर्ष वह विस्तीर्ण भूखण्ड हैं जो उनके जनसाधारण के लिए भरण-पोषण की व्यवस्था करती है तथा उनके मानस-आध्यात्मिक विकाश का पथ सुगम करता है। जब आर्य लोग कष्टकर परिवेश से उपजाऊ तथा प्रचुरता सम्पन्न भारत में प्रवेश किया तो वे लोग यहाँ पर सम्पद की प्रचुरता, स्वास्थ्यप्रद परिवेश, हरे भरे खेत तथा प्राकृतिक सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो गए। इसी लिए उन लोगों ने इस भूमि का नाम दिया भारतवर्ष।

आर्यों का स्वभाव था कि वे लोग विभिन्न भूखण्ड की विशिष्टता के अनुसार अथवा वहाँ के अधिवासियों के चरित्र तथा विशेष स्वभाव के अनुसार उस भुखण्ड का नामकरण किया करते थे। उदाहरणस्वरूप जिस हिस्सा में वे प्रथम आए उस अंश में उनलोगों ने प्रचुर मात्रा में शिलाखण्डों को देखा। ऊन शिलाखण्डों का रंग था जामुन के फल के समान। उत्तर-पश्चिम में इन शिलाखण्डों का रंग जामुन की तरह होने की बजह से उनलोगों से इस अञ्चल का नामकरण किया जम्बुद्वीप। इस अञ्चल में दो बृहत जलाशय (Lake) रहने की वजह से इन लोगों ने उसका नाम दिया द्विगर्त्तभूमि। गर्त्त का अर्थ हुआ लेक (झील)। चूँकि उत्तराश में घनी जनवसति थी इसलिए उनलोगों ने नाम दिया खशमेरू। मेरू का अर्थ हुआ देश अर्थात् जो खश जातीय मनुष्यों का देश है। जो भी हो भारतवर्ष की अपनी गुणावलियों तथा सम्पदों की प्रचुरता के कारण लोगों ने नामकरण किया भारतवर्ष। पुराण के राजा भरत के साथ इस नाम का कोई सम्पर्क नहीं है।

विषयसूची

कुछ संख्यक गोष्ठियाँ माथे के पीछे चीटी रखकर तथा देह पर उपवीत (जनेऊ) धारण करने पर जोर देते थे। उन लोगों को विश्वास था कि इन दोनों नियमों का पालन किए बिना मनुष्य धार्मिक नहीं बन सकता है। प्राचीन काल में जब यायावर आर्यगण भारतवर्ष में अभिक्रमण किया तथा स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हुआ उस समय इस देश में द्राबिड़ तथा अष्ट्रिक गोष्ठी के लोग वसवास करते थे। स्वाभाविक रूप से ही आर्यों तथा अनार्यों के बीच जातीय संमिश्रण हुआ था। अन्त में इतनी अधिक मात्रा में सामाजिक मिश्रण हुआ था कि समझना मुस्किल हो रहा था कि कौन लोग आर्य-सस्कृति का मूल धारक है तथा वाहक हैं और कौन लोग नहीं हैं। वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के धारक तथा वाहक के रूप में जनगण के बीच अपनी अलग परिचिति देने के लिए आर्यगण माथे के पीछे चोटी रखना शुरू किया। इसके बीच भारतवर्ष में बहुत अधिक मात्रा में जातीय मिश्रण हो जाने पर भी तथा इस प्रथा अबलम्बनकारियों के अनेकों का रंग काला होने पर

भी चोटी बन्धन के माध्यम से आर्यों ने उनके आर्य परिचय का प्रचार करते थे। वाह्यिक क्रियाकलाप तथा धर्मानुसरण के बीच कैसे विन्दुमात्र सम्पर्क रह सकता है?

उपवीत धारण करने की प्रथा के सम्पर्क में कहा जा सकता है, अपनी आध्यात्मिक प्रगति तथा रूई की धागा धारण करने के बीच कोई सम्पर्क सूत्र खोजकर निकालने के लिए परेशान होने का जरूरत नहीं है। घटना इस प्रकार है, आर्य लोग मध्य एशिया के उत्तरांश तथा रूस के मूल अधिवासी थे, वे लोग अत्यधिक मद्यप्रेमी भी थे। वैदिककालीन आर्य जो लोग भारतवर्ष में आए थे वे लोग रूस के बहुत सारे प्राचीन प्रथाओं का अनुसरण करते थे। जिसका कुछ-कुछ प्रभाव आज के रूस में भी देखा जाता है। विज्ञान के उन्नयन के पूर्व उस आदिम युग में अन्यान्य असंख्य उपजाति तथा गोष्ठी की तरह आर्य लोग भी सर्वप्राणवादी थे।

विभिन्न प्राकृतिक शक्ति को दैविक सत्ता का वहिःप्रकाश के रूप में वे लोग सोचते थे और उनके सभी सौभाग्य तथा दुर्भाग्य को उन सभी देव-देवियों की क्रिया के रूप में मानते थे। प्राकृतिक विपर्ययों से रक्षा पाने के लिए वे लोग मन्त्रोच्चारण करते थे, अपनों के प्रिय खाद्य द्रव्यों को उन्हें उत्सर्ग करते थे, और देव-देवियों को प्रसन्न करने के लिए लकड़ियाँ ज्वालाकर यज्ञ किया करते थे। इसी तरह से यज्ञ तथा होम का उद्भव हुआ था और इसी तरह से आर्य लोग घी, पशुओं का माँस, प्रिय खाद्य इत्यादि यज्ञाग्नि में आहुति देते थे। आसमान में बादल का रंग और धूआँ का रंग एक जैसी होने की बजह से आर्य लोगों में भ्रान्त धारणा पैदा हुई थी कि यज्ञाग्नि की धूआँ ऊँचे आसमान में उठकर बादल बनकर वर्षा लेकर आएगी। आर्यों में भ्रान्त धारणाएँ थी कि, जो व्याधियाँ दुर्गन्ध युक्त, गन्दगी पूर्ण जगहों से जनमता है तथा फैलता है वे सब व्याधियाँ यज्ञ की आहूति की सुगन्धित धूआँ से रोका जा सकता है। उस जमाने में जब विज्ञान बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में थी

अनुन्नत आर्यलोग भौतिक लाभ की आशा से ये सभी यज्ञकर्म किया करते थे। दुर्भाग्यवश अभी भी कुछ जनगोष्ठी हैं, जो लोग सोचते हैं कि यज्ञादि क्रियाकर्म के बिना धर्म साधना असम्पूर्ण रह जाता है।

ब्राह्मण पुरोहितों की पाँच श्रेणियाँ होती थी (होता, ऋत्विक उद्गाता, अध्वर्यु, तथा ब्राह्मण) जो लोग इन यज्ञ क्रियाओं में अंश लेते थे उनलोगों को निश्चल स्थिरता तथा अत्यन्त्य मानसिक प्रशान्ति लेकर इन धार्मिक दायित्वों का पालन करना पड़ता था। आर्यगण आशा करते थे कि उनके पुरोहितगण इसी प्रकार का आचरण ही करेंगे। पुरोहितवर्ग इन यज्ञानुष्ठानों के समय मद्यपान से या मद्यपायियों से सावधानी पूर्वक अपने को अलग रखने की कोशिश करते थे। मद्यपायियों को अपनों से अलग रखने के लिए पार्थक्य चिह्न के रूप में वे लोग बाँए कन्धे पर तिरछा-

विषयसूची

तिरछी रूप से मृगचर्म पहन कर रहते थे। चूँकि यह प्रतीक यज्ञ के समय व्यवहार किया जाता था इसलिए इसे लोग यज्ञोपवीत कहते थे। जब वे लोग उनके पूर्वजों के उद्देश्य से श्राद्धादि क्रियाकर्म करते थे, तब वही प्रतीक दाहिने कन्धे पर तिरछा-तिरछी रूप से पहनते थे। इसे कहा जाता था प्राचीरावीत जब उस प्रनीक को गले में फँसाकर रखा जाता था तब उसे कहा जाता था निवीत। चूँकि नारीगण भी यज्ञानुष्ठान की अधिकारिणी होती थी इस लिए यह माना जा सकता है कि वे भी यज्ञोपवीत धारण करते थे।

आर्यों ने मृगचर्म के बदले रूई के धागों का व्यवहार करना शुरू किया। और भी बाद में चलकर बाँए कन्धे पर हरसमय रूई का धागा पहनना उनलोगों के लिए धर्मीय आचरण का अंश विशेष हो गया। प्राचीनकाल के आर्यों के बीच यज्ञानुष्ठान तथा यज्ञोपवीत का महत्व जो भी रहे, आज के इस उन्नत विज्ञान के

युग में जब मनुष्य उनकी बुद्धिमत्ता तथा उन्नत प्रयुक्ति का व्यवहार करके प्राकृतिक विपर्ययों के साथ संग्राम कर रहा है, और जब देव-देवियों को प्रसन्न करने के लिए यज्ञाग्नि में घी डालने की जरूरत नहीं हो रही है, तब यज्ञोपवीत धारण करने की कितनी यौक्तिकता रह गयी है इस विषय में बुद्धिजीवि सम्प्रदाय ही विचार करें।

शब्दों का वास्तविक अर्थ न जानने की वजह से बहुत से लोग विभ्रान्त हो जाते हैं तथा कुसंस्कार को विश्वास करते हैं। मैं प्रायः देखता हूँ बहुत सारे लोग अनर्थक तुच्छ विषय को लेकर झगड़ना शुरू कर देता है, जैसे राम बड़ा न कृष्ण बड़ा, या शिव बड़ा है या नारायण बड़ा है। संस्कृत में 'रम्' धातु से 'राम' शब्द का निर्माण हुआ है। व्युत्पत्तिगत भाव से राम शब्द का अर्थ होता है, जो सत्ता आनन्दस्वरूप हैं अर्थात् पुरुषोत्तम। ठीक उसी प्रकार

विषयसूची

संस्कृत 'कृष्' धातु से 'कृष्ण' शब्द की निष्पत्ति हुई है। 'कृष्ण' शब्द का अर्थ हुआ, जो सत्ता समग्र महाविश्व को अपनी और आकर्षित कर रहे हैं, अर्थात् पुरुषोत्तम। ठीक उसी प्रकार से 'शिव' शब्द का अर्थ हुआ परम पुरुष (परम चैतन्य)। दो शब्दों के समाहार से नारायण शब्द निष्पन्न हुआ है – 'नार' तथा 'अयन'। नार शब्द का अर्थ हुआ प्रकृति ('नार' शब्द का अर्थ भक्ति भी होती है)। अयन शब्द का अर्थ हुआ आश्रय। तो 'नारायण' शब्द का अर्थ हुआ प्रकृति का आश्रय- परमा प्रकृति का आश्रय चैतन्य। इस प्रकार 'शिव' तथा 'नारायण' एक ही सत्ता का मात्र दो नाम हैं। तब इस विषय को लेकर विवाद का स्थान कहाँ रहा गया है? पारस्य (फारस) का शब्द खुदा और संस्कृत शब्द स्वयंभू (कोई-कोई सोचते है कि वैदिक शब्द 'स्वयम्भू' परिवर्तित होकर पारस्य का शब्द 'खुदा' में बदल गया है) एक ही सत्ता के दो नाम है। तो 'खुदा' बड़ा है या 'स्वयम्भू' बड़ा है इस बात को लेकर क्या विवाद चल सकता है? व्युत्पत्तिगत ज्ञान के अभाव में शब्द का सठीक अर्थ

निर्धारण न करके लोग अनर्थक बात-वितण्डा करके समाज को विभाजित किया है। अगर सभी मनुष्य परम पुरुष के सन्तान हैं, तो यह कैसे संभव होगा कि मुसलमान लोग ही अल्लाह के प्रिय सन्तान है, और हिन्दुएँ नारायण का प्रिय सन्तान हैं?

वास्तव में यह विश्व का समस्त सृष्टवस्तु ही परम ब्रह्म का सन्तान हैं। सब कुछ उन्हीं का ससीम प्रकाश हैं। कोई छोटा नहीं है, कोई तुच्छ नहीं है। सभी भ्रातृत्व के बन्धन में बन्धे हुए हैं।

हमलोगों को कन्धे से कन्धे मिलाकर एक साथ में आगे बढ़ना होगा। अज्ञानता की गन्दी कीचड़ में या अन्ध विस्वास के कुयाशाच्छन्न परिवेश में मनुष्य बन्द रहने पर किसी को उपकार नहीं होगा। अन्धविश्वास तथा महान्मन्यता की मिथ्या धारणाएँ मानव जाति को केवल ध्वंस के रास्ते को ही प्रशस्थ करेगा।

विषयसूची

27 अगस्त 1958 आर. यू., रामनगर

समाज का दायित्व

समाज के समान्तराल मानस तरंग का मूल भाव को मोटामुटी रूप से निम्नलिखित तत्वों के (औसत) माध्यम से निर्धारित किया जाता है। (1) एक साधारण भाषा, (2) एकही

विषयसूची

प्रकार के रीतिरिवाज तथा आचार-पद्धति, (3) एक ही प्रकार के जीवन-यापन प्रणाली, (4) एक प्रकार का ऐतिह्य, (5) जातिगत सादृश्य, (6) भौगोलिक सादृश्य, (7) समान संस्कृति और (8) समान उद्दश्य या लक्ष्य। दुर्भाग्यवश समाज संरचना काल में इन उपादानों को साधारणतः उपेक्षा किया जाता है क्योंकि वे सब सामुहिक मनस्तत्त्व का कारण नहीं हैं, लेकिन उनके निमित्त मात्र जिसके माध्यम से सामुहिक मनस्तत्त्व प्रवाहित होता है। वास्तविक सामाजिक संरचना के लिए अपरिहार्य प्राणशक्ति हुई समान अनुभूति तथा समान मानसतरंग। इसी कारण से हमलोग कहते हैं कि, समाज हुआ सम मानसतरंग की अभिव्यक्ति और एक साथ आगे चलने की मानसिक प्रवणता के लिए ही इसका उद्भव होता है।

यह सुस्पष्ट है कि अनेक मनुष्यों के अपरिमेय समष्टिगत शक्ति के द्वारा ही समाज पोषित है। इसीलिए समाज के सम्पर्क में जनप्रिय धारणा है कि यह वहु-व्यष्टियों की समष्टि है। लेकिन यह केवल बहु-व्यष्टियों की समष्टि नहीं हैं, जिन लोगों का मानस तरंग भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाहित होता है अर्थात् जिन लोगों का मानस तरंग समान्तराल नहीं है, बल्कि मतानैक्य के कारण विपथगामी तथा विकृत हैं, उसे समाज नही कहा जा सकता है।

बौद्धिक या भौतिक रूप से जितना भी अनुन्नत क्यों न हो, जब परिवार का प्रत्येक सदस्य अन्यान्य सदस्यों की स्वच्छन्दता तथा कुशलता को गुरुत्व देता है हमलोग वहाँ पर समाज की एक झलक देख पाते हैं। इस दुनिया में बहुत सारे परिवार हैं जहाँ पर शारीरिक तथा बौद्धिक तारतम्य रहते हुए भी हर सदस्य अन्य सदस्य के कल्याण के लिए सचेतन होते हैं। इसे कहते हैं आदर्श

विषयसूची

परिवार। समाज के लिए भी यहा आदर्श स्वरूप होना चाहिए यद्यपि आज के समय में यह विरल है।

समाज का दायित्व हुआ उनकी साधारण सम्पत्ति के सठीक रक्षणावेक्षण तथा उपयोग करना। समाज को सुनिश्चित करना होगा कि जिससे सभी को इस साधारण सम्पत्ति में समाज रूप से भोग-दखल करने का अधिकार मिल सके, जिससे सभी लोग स्वस्थ शरीर तथा मन को लेकर एक साथ बचकर रह सके।

आज की दुनिया में या तो पूँजीवाद नहीं तो चरम वस्तुवाद को अर्थात् कम्युनिज्म को अनुसरण कर रहा है। इस व्यवस्था में जिनलोगों के पास अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान है, बुद्धि या दैहिक बल है वे अधिक-अधिक करके सम्पद को अयथा रूप से आत्मसात् कर रहे हैं। लोग भूला गये हैं कि हमलोग परमा-प्रकृति

से भौतिक सम्पद के साथ-साथ सूक्ष्म सम्पद का आहरण करता हूँ। परिवार का कोई सदस्य अगर परिवार के अन्य सदस्यों के साथ एकत्व का अनुभव न करें, युक्ति के द्वारा स्वीकृत सभी के प्रयोजन को या यौथ अधिकार की महान नीति को स्वीकार न करें, तो उसे सामाजिक सत्ता के रूप में गणना नहीं की जाएगी। विश्वैकतावादी आध्यात्मिक भावादर्श के अनुसार व्यष्टि मालिकाना को चरम रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। इसलिए समाज के सम्पर्क में आनन्दमार्ग की चिन्ता-भावनाएँ पूँजीवाद को समर्थन नहीं करता है।

एक यौथ परिवार में हरेक सदस्य/सदस्या अपनी इच्छाओं की पूर्ति, खाद्य, वस्त्र, चिकित्सा तथा अन्यान्य प्रयोजनीय वस्तुओं की व्यवस्था परिवार की आर्थिक क्षमता के अनुसार ही करते हैं। अगर कोई विशेष सदस्य उनके प्रयोजन के अतिरिक्त खाद्य, वस्त्र,

किताब या दवाइयों जमा करतै है तो क्या परिवार के अन्य सदस्यगण असुविधा के सम्मुखीन नहीं होंगे ? उस अवस्था में वह सदस्य/सदस्या का कार्य समाज के लिए असंगत तथा हानिकर होगा। समाज का कर्त्तव्य हुआ उस प्रकार त्रुटिपूर्ण समाज व्यवस्था को तत्काल तोड़ देना।

आज के समय में इस दुनिया में पूँजीवादी लोग काफी मात्रा में सम्पद तथा सम्पत्तियाँ जमा कर लेता है तथा अपने कब्जे में रखकर दूसरों को भूखे मरने के लिए बाध्य करते है। वेलोग अच्छे तथा किमती पोशाक पहन कर घुम सके इसके लिए जनसाधारण को फटे कपड़े पहनने के लिए बाध्य करते हैं। अपनी शक्ति बृद्धि के लिए वे दूसरों का प्राण रस चूसकर उसे समाप्त कर देता है। समाज का दायित्व हुआ इन सभी लोगों की गलतियों को किसी भी रूप में पकड़ा देने के लिए तथा समाज विरोधी

क्रियाकलापों को बन्द करने के लिए सभी प्रकार की व्यवस्था ग्रहण करना। दूसरों को शोषण करके धनी बनने की आकाक्षाएँ हर समय की मानसिक व्याधि है।

पूँजीवादियों का तर्क है, हमलोग अपनी बुद्धि तथा परिश्रम के बल पर धन-सम्पत्ति आहरण करते हैं। अगर बुद्धि तथा कर्म-क्षमता है तो दूसरे लोग भी इस प्रकार से धन सम्पत्तियों का संग्रह करें। उन्हें कौन रोक रहा है? वे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं कि धरती पर उपभोग्य वस्तुएँ सीमित है? लेकिन सभी लोगों की मौलिक माँगे पूरी करनी होगी। अगर कोई व्यष्टि काफी मात्रा में धनसम्पत्ति आहरण करना शुरू कर दें तो साधारण रूप से ही दूसरे लोग उनकी न्यूनतम प्रयोजनीयता से वञ्चित रह जाएँगे। दूसरों की प्रयोजनीयता को न समझाना ही एक प्रकार व्याधि है। लेकिन इस व्याधि से ग्रस्त लोग भी हमारे ही भाई-बहन है, एक ही

मानव समाज का सदस्य हैं। मानविक ओवदन के द्वारा अथवा परिस्थिति का दवाब बनाकर उनके इस मानसिक व्याधि को ठीक करना होगा। इसके लिए, उनके स्थूल सम्पद आहरण की नशा को मानसिक तथा आध्यात्मिकता की ओर परिचालित करना होगा। मनुष्यों की भौतिक भूख-प्यास की निवृत्ति के साथ-साथ सभी को वैज्ञानिक पद्धति से अपनी मानस-आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उन्मुक्त रूप से शिक्षादान की व्यवस्था करनी होगी।

एक ऐसी समाज श्रृंखला का निर्माण करना होगा जहाँ पर सभी लोग उनकी क्षमता के अनुसार काम करेंगे। शारीरिक रूप से अधिक सक्षम व्यष्टियों को शारीरिक परिश्रम का काम देना होगा और मानसिक रूप से अधिक सक्षम व्यष्टियों को मानसिक परिश्रम का काम देना होगा। जो लोग शारीरिक या मानसिक

विषयसूची

परिश्रम देने में अक्षम रहेंगे उनलोगों की देख-भाल का दायित्व समाज को लेना पड़ेगा।

जिनलोगों को काम करने के लिए शारीरिक क्षमता है, समाज केवल उन्हीं लोगों को सामाजिक क्षमता प्रदान नहीं करेंगे। सभी को समान अधिकार रहेगा, एक आदमी का अधिकार दूसरों के अधिकारों को लंघन नहीं करेंगे। सभी को उनके क्षमता के अनुसार मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रगति के लिए पूर्ण अधिकार सुनिश्चित करना होगा। किसी प्रकार की कोई बाधाएँ नहीं रहेंगे। लेकिन सामाजिक शान्ति तथा आनन्द बरकरार रखने के लिए भौतिक क्षेत्र में समष्टि स्वार्थ के लिए व्यष्टि अधिकार को संकुचित करना पड़ेगा।

एक सामाजिक संरचना निर्माण काल में हमलोग आध्यात्मिक अभीष्ट को सर्वाधिक अग्राधिकार देंगे। सभी को समझना पड़ेगा कि, अगर जनसाधारण का आध्यात्मिक अभीष्ट कुछ न रहे, तो वे लोग पार्थिव उन्नति प्राप्त करने पर भी आत्मकेन्द्रिक हो जाएँगे और उन लोगों के मन में गोष्ठीकेन्द्रिक भाव-प्रवणता का विकाश होगा। इस प्रकार लोग पार्थिव ज्ञान की चर्चा करेंगे लेकिन आध्यात्मिकता की चर्चा नहीं करेंगे। आध्यात्मिकता की चर्चा में इस प्रकार प्रश्न का गभीर मनन छिपा रहता है जैसा मैं कौन हूँ? मेरा लक्ष्य क्या है ? मेरे लक्ष्य पर मैंने कैसे पहुँच पाऊँगा ? इत्यादि ।

आज के बुद्धिजीवि वर्ग आध्यात्मिकता के प्रसार में प्रतिरोध की कोशिश करते हैं क्योंकि वे नैतिक रूप से असम्पूर्ण और उनका मानस तरंग सामूहिक स्वार्थ की विपरीत दिशा में

प्रवाहित होते हैं। फलस्वरूप आज समाज में अनैतिकता, दुर्नीति तथा असमता अबाध रूप से प्रसार लाभ कर रही है। एक स्वस्थ तथा शक्तिशाली समाज व्यवस्था ही इस प्रवणता को बन्द करेंगे।

इतिहास की खोज से यह सुस्पष्ट है कि, आज तक, इस ग्रह में स्वस्थ तथा सबल समाज का निर्माण नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण है सठीक आध्यात्मिक भावादर्श का अपर्याप्त प्रसार। यद्यपि विभिन्न समय पर अल्प संख्यक लोग एक शक्तिशाली तथा स्वस्थ समाज की प्रतिष्ठा करने की चिन्ता की थी लेकिन सुचिन्तित कार्य तथा अन्य को इस प्रकार समाज की प्रयोजनीयता को समझाने के बदले वे लोग युक्ति और तर्क में फँस गए थे। अन्त में वे लोग भावादर्श के बदले अपने को ही लोग समक्ष में पेश कर चुके थे। इस प्रकार से उनके भावादर्श गौण हो गए और अन्त में समाप्त हो गए क्योंकि जनसाधारण उन्हें महात्मा या महापुरुष के

रूप में पूजा करने शुरू कर दिए थे। भावादर्श के अभाव में एक शक्तिशाली समाज का निर्माण नहीं हो सका और नाना प्रकार त्रुटियाँ अलक्षित रूप से मनुष्यों के जीवन में प्रवेश कर गया।

सर्वप्रथम भगवान कृष्ण ने इस प्रकार एक स्वस्थ तथा सबल समाज निर्माण की प्रचेष्टा की थी, लेकिन महाभारत के युद्ध में उनका बहुत समय नष्ट हो गया। अन्त तक इस प्रकार मानव समाज निर्माण के लिए उनके पास काफी समय नहीं था। ठीक उसी प्रकार भगवान शिव....... जो तन्त्र के आदि प्रवक्ता थे, आध्यात्मिकता की मजबूत बुनियाद की स्थापना करने के लिए काफी समय गँवाना पड़ा था। प्रबल इच्छा रहते हुए भी उन्होंने एक शक्तिशाली समाज व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सके थे। आज उनकी यौथ शक्ति एक स्वस्थ मानव समाज निर्माण में मदद करेगी।

गान्धीवाद की सामाजिक त्रुटियाँ

समाज एक सामूहिक सत्ता है, यह किसी व्यष्टि विशेष के अधिकारभुक्त नहीं हैं। समाज का उद्देश्य हुआ सामुहिक कल्याण को धारावाहिक रूप से उन्नीत करना। समाज का प्रत्येक व्यष्टि, सामुहिक स्वार्थ के लिए जब वैयक्तिक स्वार्थ को त्याग करने की

विषयसूची

अपरिहार्यता को उपलब्धि करेंगे, तब ही और केवल तब ही शक्तिशाली तथा स्वास्थ्यकर समाज निर्माण करना सम्भव होगा। अब प्रश्न हुआ, समाज तथा व्यष्टि के बीच पारस्परिक सम्पर्क किस प्रकार होना चाहिए ?

प्रत्येक व्यष्टि दो असाधारण तथा अमूल्य सम्भाव्य क्षमता का अधिकारी होता है मानसिक तथा आध्यात्मिक..... इन दोनों सम्भाव्य क्षमता के उपर सामूहिक नेतृत्व किसी प्रकार हुक्म जारी नहीं कर सकता है। उनके अधिकार की सीमा केवल पार्थिव सम्पद तक ही सीमाबद्ध है। अगर भौतिक क्षेत्र में व्यष्टि समष्टि के स्वार्थ को लंघन न करे तो व्यष्टि तथा समष्टि दोनों ही समस्याओं को दबा कर के मंगलमय अवस्था का उपभोग करेंगे। इसीलिए सामूहिक स्वार्थ के विरूद्ध में व्यष्टि अधिकार को कम महत्व दिया

विषयसूची

गया है। लेकिन मानसिक तथा आध्यात्मिक जगत में प्रत्येक व्यष्टि को उन्नति तथा प्रगति की सम्पूर्ण स्वाधीनता है।

इस परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवाद हुआ अयौक्तिक, अस्वाभाविक, तथा अवैज्ञानिक तत्व। महाविश्व के समस्त पार्थिव सम्पद को अगर सुचारू रूप से वण्टन कर भी दिया जाए तो भी लोग सन्तुष्ट नहीं होंगे। उनके अन्तःकरण से एक हाहाकार उत्थित होगा, "मुझे और भी चाहिए, मुझे और भी चाहिए"। इसका कारण मनुष्य के मन की वासनाएँ सीमाहीन है। यह असीम वासना एकमात्र अनन्त के जगत में तृप्त हो सकता हैं। पार्थिव जगत में असीम आकांक्षाओं की तृप्ति सम्भव नहीं है। क्योंकि यद्यपि पार्थिव सम्पद का भण्डार अत्यन्त सुविशाल है तो भी वह अनन्त नहीं है। इसीलिए विज्ञ जन उनकी असीम वासना को मानसिक तथा आध्यात्मिक जगत की और घुमा देते हैं।

गान्धीवाद में दो त्रुतियाँ दिखाई पड़ती हैं, मानसिक तथा भौतिक। यद्यपि गान्धीवाद शुद्ध पूँजीवाद नहीं हैं, लेकिन निःसन्देह यह पूँजीवाद को बचाने का एक रास्ता है। पूँजीवादी लोगों को इसके माध्यम से अपने को रक्षा करने का पूरा आश्रय प्राप्त हो जाता है। गान्धीवाद सोचता है कि पूँजीवाद जनगण की सम्पत्ति का न्यास रक्षक (ट्रस्टि) हैं लेकिन यह कैसे सम्भव होगा ? जो लोग जनगण के परिश्रम की खून से अपने को समृद्ध करते हैं वे लोग जनताओं के रक्षक कैसे बन सकेंगे ? जनसाधारण कैसे विश्वास कर सकेंगे कि उनके शोषक ही उनके रक्षाकर्त्ता होंगे ? इसलिए गान्धीवाद पूर्णतः मनोविज्ञान विरोधी तत्त्व हैं।

द्वितीयतः गान्धीवाद सब समय लड़ाई, सभी प्रकार संग्राम, ऐसा है कि श्रेणी-संग्राम से भी दूरी बनाना चाहते हैं।

विषयसूची

मार्क्सवाद के अनुसार दो प्रधान श्रेणियाँ है शोषक तथा शोषित। गान्धीवाद इस प्रकार के विभाजन को स्वीकार नहीं करता है। वास्तव में समाज में चार श्रेणियों है - शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा विप्र । प्रभावशाली तथा क्षमताशील श्रेणी अन्यान्य श्रेणियों को यथासाध्य शोषण करते हैं। शोषक श्रेणी का अन्तर्निर्हित पराक्रम तथा जीवनी शक्ति के उपर शोषण की मियाद कम वेशी हो सकती है लेकिन जागतिक अग्रगति की धाराएँ इसी नमुना को अनुसरण करती हैं। गान्धीवाद के अनुसार युक्ति-परामर्श के द्वारा शोषक के हृदय में परिवर्तन लाया जा सकता है। सैद्धान्तिक रूप से इस वात को स्वीकार कर लेने पर भी यह न तो स्वाभाविक है, न तो वैवहारिक। एक बकरी किसी बाघ को समझाने की कोशिश करने पर भी क्या कोई बाघ बकरी नहीं खाएगा ? संग्राम स्वाभाविक तथा अपरिहार्य है। संग्राम के बदले ही प्रगति आती हैं- इस धारणा को तन्त्र भी स्वीकार करता है। संग्राम को परिहार करना गान्धीवाद

की पूँजीवादी सुलभ त्रुटि है। इसलिए यह दुनिया कभी भी गान्धीवाद को ग्रहण नहीं करेगी।

आनन्द मार्ग के मतानुसार जब युक्ति-परामर्श व्यर्थ सावित होता है तब शक्ति सम्प्रयोग अनिवार्य है। अन्त में हमलोग यही कह सकते हैं कि धार्मिकों की रक्षा करना तथा दुराचारियों का शास्ति विधान करना ही श्रेष्ठ नियम है। अगर इस नियम का अनुसरण किया जायतो अवश्य ही मानव समाज का कल्याण संभव होगा।

जो लोग परम पुरुष को अपना ध्येय मानते हैं तथा जो लोग स्वार्थपरता से मुक्त हैं, एकमात्र वही लोग समाज का विश्वासयोग्य ट्रस्ट्री हो सकतै हैं। जो लोग यम-मियम में प्रतिष्ठित हैं तथा ब्रह्म को ही अपने जीवन का अभीष्ट

स्वीकार कर लिए हैं केवल वही लोग मानव जाति के कल्याण को सुरक्षित रखने में समर्थ होंगे। एकमात्र ऐसे ही लोग सदविप्र होते हैं। और एकमात्र वे लोग ही मानवता का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं- वही लोग नि:स्वार्थभाव से समग्र सृष्टि की सेवा कर सकतै हं। सदविप्रगण अपने आचरण, सेवा के प्रति उनकी निष्ठा, कर्तव्यपरयणता तथा चरित्रबल के माध्यम से परिचित होंगे। वे दृढ़ रूप से घोषणा करेंगे, समस्त मनुष्य ही एक जाति के अन्तर्भुक्त है, सब का समान अधिकार है, सभी एक मानव परिवार का सदस्य हैं। एक मात्र सदविप्रगण ही वज्रदीप्त कण्ठ से शोषकों को सावधान कर सकते हैं, एक दूसरे को शोषण नहीं कर सकेंगे, धर्म के नाम पर शोषण नहीं चलेगा। यही सदविप्रवर्ग समाज के अभिभावक होंगे। समाज चक्र के नियमानुसार अनवरत चलता हुआ श्रेणीसंग्राम को सदविप्रवर्ग कभी बन्द नहीं करेंगे। वे केवल सुनिश्चित करेंगे कि

शासक किसी भी रूप में समाज को शोषण न कर सकें। अर्थात् वे लोग शासक को शासन करेंगे।

गान्धीवाद के प्रवक्ता विनयी स्वभाव के मनुष्य थे। वे इस संग्राम को पसन्द नहीं करते थे। लेकिन वह तो अस्वााभिक तथा अवैवहारिक भी है। केवल मात्र वैवहारिक तत्व को ही ग्रहण किया जा सकता है। केवल भाववाद के माध्यम से वास्तविकता या वैवहारिकता का जन्म नहीं होता है।

सितम्बर 1960 राँची

मानव समाज को कैसे एकताबद्ध किया जा सकेगा

व्यष्टि तथा समाज के उन्नयन तथा समृद्धि साधन हेतु विभिन्न सम्प्रदाय के जीवनयात्राओं के बीच में जिस-जिस क्षेत्र में मेल तथा ऐक्य मौजूद हैं केवलमात्र उन्हीं सब विन्दुओं पर अधिक उत्साह प्रदान करना होगा। पार्थक्यों को नहीं अर्थात जिन विन्दुओं पर विभेद है उन्हें उत्साहित नहीं करना है। यह स्वाभाविक है कि समाज में पोषाक-परिच्छद, आचार-व्यवहार, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, खाध्याभ्यास, भाषा प्रभृति विषयों में अन्तर है और रहेगा। लेकिन इन सब अन्तरों पर अगर अप्रयोजनीय रूप से अधिक महत्व दिया जाय तो सामाजिक समस्याएँ बढ़ती जाएँगी

और उसके फलस्वरूप सामाजिक संहति नष्ट हो जाएँगे। ऐसा है कि इससे उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएँगे। वर्तमान समाज की अधोगति को रोकने के लिए अगर कोई व्यवस्था शीघ्र न लिया जाए तो विभिन्न कारणों के फलस्वरूप कालक्रम में स्वतःही समाज में नेतिवाचक विधि-व्यवस्था तैयार हो जाएँगे। अतः विभेदमूलक विषयों को कभी भी किसी रूप में उत्साह प्रदान करना उचित नहीं होगा।

समाज में विभेदात्मक विन्दुओं को लेकर हो हल्ला करने से समाजपतियों तथा राजनैतिक नेताओं को दूर रहना चाहिए। बल्कि इस बात पर जोर देना होगा कि, जटिल विभेदात्मक विन्दुओ को उत्थापित करने का अभी समय नहीं है। उदाहरण के लिए भारतीय भाषाओं को लिया जाये। भारत में बहुत सारे लोग हैं जो लोग भाषा को लेकर अनर्थक लड़ाई करते हैं। लेकिन जब देश

के इतने लोग भूख, अकाल, व्याधि, अशिक्षा तथा आर्थिक दुरवस्था से भोग रहा है तब इस भाषा समस्या को लेकर उत्तेजित होने का क्या यही उपयुक्त समय है? क्या भारत के जनसाधारण तुलनामूलक विचार से इस कम महत्वपूर्ण भाषा समस्या को लेकर उनके मूल्यवान समय नष्ट कर सकता है? वैसा न करके तुरन्त शोषण के विरुद्ध प्रचाराभियान शुरू कर देना उन लोगों के लिए उचित होगा। क्योंकि यही विभेद सृष्टिकारी शक्तियों को नियन्त्रण में रखेगा। अगर ऐसा न किया जाए तो विभेद सृष्टिकारी शक्तियाँ समाज में बहुत सारे किस्म के बाधाओं तथा विरोधों का सर्जन करेंगे और इस से लोगों की ज्वलन्त समस्याओं का समाधान नहीं होंगे।

एकता बद्ध करने का उपाय :-

किसी देश की प्रगति देश की एकता पर निर्भर करती है। इसलिए एकता बढ़ाने वाले विन्दुओं पर ही अधिक महत्व देना चाहिए। विभेद सृष्टिकारी शक्तियों को दूर रखने के लिए हमें निम्नलिखित तीन विन्दुओं पर विरामहीन संग्राम चलाना होगा।

(1) सामाजिक-आर्थिक अधिक्षेत्र :-

समाज में कुछ लोग अत्यधिक धनी हैं और जनसाधारण का एक विराट अंश अत्यधिक गरीबी में पल रहे हैं। स्वाभाविक रूप से ही एक दृढ़ समाजव्यवस्था का निर्माण करने के लिए समाजिक-आर्थिक विषमता को सम्पूर्णरूप से निर्मूल करना होगा।

सामाजिक-आर्थिक विषमता दूरीकरण के साथ-साथ सामूहिक सम्पद का परिमाण प्रगतिशील दर से बढ़ाना होगा। तब ही जनसाधारण के क्रम बर्धमान माँगों को सफलता के साथ पुरा करना संभव होगा। उड़ीसा का ही उदाहरण लिया जाय। इस राज्यमें कृषि उत्पादन प्राय सम्पूर्णरूप से, विशेष करके वर्षाकाल में मौसमी वायु के उपर निर्भरशील है। लेकिन अगर सिंचाई व्यवस्था यथायथ रूप से उन्नत होता तो. इस राज्य में कृषि उत्पादन 300 प्रतिशत बृद्धि होता और उसमें अतिरिक्त चार करोड़ मनुष्यों के खाद्य संस्थान की व्यवस्था होती। वर्तमान उत्पादन में मात्र देड़ करोड़ लोगों की खाद्य संस्थान की व्यवस्था है। उड़ीसा खनिज सम्पद से भी समृद्ध है। जहाँ पर काफी मात्रा में कोयला, वक्साइट, मैंगानीज तथा अन्यान्य खनिज सम्पद सहजलभ्य है, लेकिन इन सभी खनिज सम्पदो में से बहुतों का निर्यात अन्यान्य देशों में किया जा रहा है। अगर इन सभी कच्चे मालों का यथायथ रूप से इसी राज्य में ही शिल्पजात द्रव्य उत्पादन में व्यवहृत होता

विषयसूची

तो उड़ीसा में कम से कम चार वृहदायतन इस्पात शिल्प स्थापित किया जा सकता था। इसमें जनसाधारण की क्रयक्षमता बहुत अधिक बढ़ जाएगा। दुर्भाग्यवश देश के अयोग्य राजनेता वर्ग युक्ति संगत रूप से कुछ चिन्ता-भावनाएँ नहीं करते हैं। बल्कि, वे लोग ऐसे सभी परिकल्पनाओं की रचना करते है जिससे सामाजिक-आर्थिक असमता तो दूर होगा ही नहीं, और सामूहिक सम्पत्ति की भी बृद्धि नहीं होगी। ये नेताएँ घोड़ा के सामने गाड़ी को रखकर बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं।

एक सामाजिक-आर्थिक संग्राम की साधारण कर्मसूची के माध्यम जे विश्व के समस्त देशों के आर्थिक रूप से वंचित जनसाधारण को एकताबद्ध किया जा सकता है। इस संग्राम में एक ओर पूँजीपतियों के निर्मम शोषण के खिलाफ संग्राम को आगे बढ़ाना होगा और दूसरे तरफ है उन्नयनमूलक कर्मसूची के माध्यम

विषयसूची

से सामूहिक सम्पद को बढ़ाना होगा। सिंचाई व्यवस्था, खनिज सम्पद, कृषि सम्पद तथा शिल्प का व्यापक उन्नयन घटाकर देश की सामूहिक सम्पत्ति को बहुत सहज ही बृद्धि किया जा सकता है।

सामाजिक विषमता को सूक्ष्म रूप से हटाने के लिए तथा सामूहिक सम्पत्ति की वृद्धि करने के लिए सारी दुनिया को मिलाकर सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल करना होगा। एक राजनैतिक सिद्धान्त के आधार पर राज्य निर्माण की प्रक्रिया को सतर्कता के साथ बन्द करना होगा। एक राजनैतिक इकाई (unit) (राज्य या राष्ट्र) कई सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल अपनी अपनी आर्थिक समस्याओं को लेकर एक साथ रह सकते हैं। जैसे, विहार एक राजनैतिक (unit) इकाई है लेकिन वहाँ पर छोटानागपुर (उस समय झाड़खण्ड बिहार में ही था) पहाड़ी इलाका अपर्याप्त सिंचाई व्यवस्था से मर रहा है और उत्तर विहार का समतल भूमि (मैदानी

इलाका) बाढ़ के कारण जलनिष्कासन समस्याओं से ग्रस्त है। रायलसीमा, श्रीकाकुलम और तेलांगाना अञ्चल आन्ध्रप्रदेश की राजनैतिक (unit) इकाई में अवस्थित है लेकिन सामाजिक-अथनैतिक सम्भावनाएँ सम्पूर्णतः अलग है। इन सभी अञ्चलों से सर्वाधिक परिमाण में कल्याण (benefit) पाने के लिए एक ही राजनैतिक इकाई के अन्तर्गत है या नहीं इसका विचार न करके अलग-अलग सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल (Socio-Economic zone) का निर्माण करना होगा। राजनैतिक सिद्धान्त या भाषा के आधार पर राज्य का निर्माण करना बहुत बड़ी गलती है। अगर एक पूँजीपति तथा एक श्रमिक एक ही भाषा में बाते करते है तो क्या कोई ऐसा सोच सकता कि भाषा में मिल रहने के कारण वे दोनों एक दूसरे के दोस्त हैं?

(2) मानस भावावेश का अधिक्षेत्र :-

विषयसूची

मानसिक क्षेत्र में भी कुछ-कुछ विषय हैं जो विभिन्न भाषा-भाषी जनगोष्ठियों को एकता के बन्धन में बाँध कर रखता है। जिस प्रकार उत्तर भारत की समस्त भाषाएँ तथा दक्षिण भारत की कुछ भाषाएँ संस्कृत सें उद्भूत हुआ है तथा विकाश प्राप्त किया है। ये भाषाएँ संस्कृत के द्वारा काफी प्रभावित है। इस अवस्था में संस्कृत पठन-पाठन का विरुद्धाचरण करना किसी के लिए भी उचित नहीं होगा। इसे सामान्य बात के रूप में समझ में आ सकता है लेकिन उत्साहित करने पर यह भारतीय समाज को एकता के बन्धन में बाँधने के लिए एक विराट हेतु का काम करेगा।

सामाजिक ऐतिह्य में भी एक मिलनसूत्र का निर्माण किया जा सकता है। प्रत्नतात्विक गवेषणाएँ तथा खनन कार्यों से प्राप्त गौरवमय अतीत सभ्यता का प्रत्नतात्त्विक निदर्शन तथा मनीषियों

का जीवन चरित एक दृढ़ जातीय भावावेग का निर्माण करने में मदद करेगा। जिस प्रकार खनन कार्य में आविष्कृत महेञ्जोदोरो तथा हरप्पा सभ्यता प्राचीन भारतीय संस्कृति की उत्कर्षता को उपर उठा दिया है।

इतिहास पाठ में भी उत्साह प्रदान करना उचित है।

इतिहास तथा संस्कृत शब्द इतिकथा (अंग्रेजी प्रति शब्द History) समार्थक नहीं है। इतिकथा शब्द का अर्थ हुआ अतीत की घटनाओं का पञ्जीकरण ग्रन्थ। इतिहास शब्द का अर्थ हुआ इतिकथा (history) का वह हिस्सा जिस में शिक्षागत मूल्य मौजुद है। किसी देश का इतिहास या सांस्कृतिक इतिकथाएँ उस समाज के सदस्यों के बीच एकता का भाव जागृत करता है तथा वे उनके ऐतिह्य के बारे में सचेत होते हैं। जिस प्रकार ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत पाठ करके जनसाधारण के मन में गर्व तथा प्रेरणा का

संचार होता है, और यह एक समष्टिगत चेतना को जागृत कर रहा है।

प्राचीन मूनि-ऋषियों के दिव्य-जीवन के स्मृति-चारण भी जनसाधारण को एक सूत्र में गूँथ देता है। जब लोग अतीत के महान नेताओं तथा सन्त महात्माओं की बातें अपने अपने हृदय में धारण करते हैं, तो वह समष्टिगत ऐक्य की भीत को मजबूत बनाता है।

(3) आध्यात्मिक भावावेग का अधिक्षेत्र :-

सम-आध्यात्मिक उत्तराधिकार तथा सम-आध्यात्मिक लक्ष्य का भावावेग ही एक मात्र भावावेग (Sentiment) है जो

जनसाधारण को स्थायी रूप से एकता के बन्धन में आबद्ध कर सकते हैं। सामाजिक-आर्थिक तथा मानसिक भावावेग के विषय समूह सामाजिक ऐक्य तथा संहति सृष्टि के लिए काफी प्रयोजनीय है इसमें कोई सन्देह नहीं लेकिन ये सब सृष्ट भावावेग नितान्त ही सामयिक तथा क्षण स्थायी हैं।

भूमा की भावना से जो भावावेग तैयार होता है वही स्थायी होता है। हृदय में विश्वैकतावाद की भावना ग्रहण करने पर समाज में सामाजिक-अर्थनैतिक ऐक्य तथा भ्रातृभाव एक सुदृढ़ बुनियाद में स्थापित होगा। लोग विश्वपिता तथा विश्व भ्रातृत्व की भावना से भावित होंगे। हम सभी एक ही सत्ता से आए हैं फिर हम सभी एक ही सत्ता में लौट जाएँगें इस प्रकार का एक दृढ़-प्रत्यय सब के मन में एक अभिनव ऐक्य के भावावेग का निर्माण करेगा। सभी लोग विश्वप्रेम तथा सौहार्घ के बन्धन में आबद्ध रहकर अपने

को एक रूप में अनुभव करेंगे जो अन्त तक विश्व समाज संरचना के पथ को प्रशस्त करेंगे। निम्नलिखित कविता में महान विश्वप्रेमिक कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त ने इसी भावावेग को स्पष्ट किया है :

राগে অনুরাগে নিদ্রিত জাগে

राগे अनुरागे निद्रित जागे
आसल मानुष प्रकट हय।
वर्णें वर्णें नाहिक विभेद
निखिल भुवन ब्रह्ममय ॥

जब प्रेम निद्रित (सुप्त) आत्मा को जगा देता है तब ही अन्दर का असली मनुष्य निकल आता है। तब वर्ण-वर्ण में, जात-जात में कोई भेद-विभेद नहीं रह जाता है। क्यों कि परम पुरूष इस विश्व ब्रह्माण्ड में सभी जगह विराजमान हैं।

विषयसूची

जहाँ जहाँ पर मिलन सूत्र मौजुद हैं, उन सभी विन्दुओं को उत्साहित करना पड़ेगा, हटा देना पड़ेगा। समाज की एकता को बरकरार रखने के लिए तथा मनुष्यों की समृद्धि साधन के लिए इस मौलिक दृष्टिभंगी को (Fundamental approach) अवश्य ही रखना पड़ेगा। हमलोगों को हमेशा याद रखना पड़ेगा :

"जगत् जुड़िया एक जाति आछे
से जातिर नाम मानुष जाति
एकइ पृथिवीर स्तन्ये पालित,
एकइ रवि शशी मोदेर साथी ।।"

विषयसूची

पार्थक्य का विषय समूह :

मानव समाज के चार क्षेत्र में विभिन्नता है-खाद्य, पोषाक भाषा तथा धर्ममत।

(1) खाद्य :-

भारत में चार खाद्याञ्चल हैं जहाँ पर या तो नारियल तेल, सरसों का तेल, तिल का तेल, नहीं वनस्पति तेल या घी का व्यवहार होता है। पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश के अधिकांश लोग ही रोटी ज्यादे पसन्द करते हैं जहाँ पर पूर्व तथा दक्षिण भारत के लोग भात ही अधिक पसन्द करते हैं। मनुष्य जो खाद्य ग्रहण करते हैं वह भौम प्राकृतिक अवस्था के उपर निर्भर करता है। इस भौम

प्राकृतिक अपरिहार्यता को अग्राह्य करके भारत के सभी लोगों को एक ही प्रकार खाना खाने के लिए बाध्य किया जाय तो वह एक बहुत बड़ी गलती होगी।

(2) भाषा :-

प्रत्येक देश में गोष्ठीगत (racial) सांस्कृतिक प्रकृति के अनुसार भाषा का उद्भव तथा विकास होता है। यद्यपि भाषा का मूल स्रोत सभी जगह एक ही है फिर भी स्थान-स्थानान्तर में भाषा का अन्तर ही जाता है।

खून की प्रकृति तथा नाक, आँख, बाल की आकृति, तथा चमड़े की रंग से गोष्ठीगत (racial) वैशिष्ट्य निर्णय किया जाता है। नृतात्त्विक मानव संरचना में अन्तर होने के कारण गोष्ठीगत

(racial) वैशिष्ट्य में भिन्नता आ जाती है। पृथ्वी में चार मौलिक जनगोष्ठियाँ (race) हैं-आर्य (ककेशीय), मंगोलीय, अष्ट्रिक तथा निग्रो। आर्यों के शरीर का रंग लाल या सफेद, मंगोलियों का रंग पीला, अष्ट्रिकों का रंग श्यामवर्ण (हल्का काला) तथा निग्रों का रंग एकदम काला होता है। अष्ट्रिक तथा निग्रो के विमिश्रण से उत्पन्न गोष्ठी को द्राबिड़ कहा जाता है।

आर्यों को तीन शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम हुआ-नर्डिक आर्य। इन लोगों के शरीर का रंग लाल मिश्रित सफेद । बाल का रंग लाल जैसा या सुनहरा, आँख की तारों का रंग विल्ली के आँखों जैसे भूरे, शरीर में उष्ण रक्त प्रवाहित होता है तथा नाक का आकार तोते की ओठ जैसी टेढ़ी। दूसरा हुआ अलपाइन आर्य। इन लोगों के शरीर का रंग दूध जैसा सफेद, बाल का रंग काला मिश्रित नीला, आँख के तारे नीला,

नर्डिकों की तुलना में शरीर का खून कम उष्ण 17 नाक बाज पक्षी जैसी नुकीला। तीसरा हुआ-भूमध्य सागरीय आर्य। इनके शरीर का रंग दूध जैसा सफेद, बाल काला, आँख के तारे काले, नाक साधारण, अल्पाइनों की तुलना शरीर का खून कम गरम तथा शरीर का आकार मध्यम प्रकार का होता है। जो लोग दक्षिणी फ्रान्स, अरब देशों तथा बल्कान राष्ट्रो में वसवास करते हैं वे लोग भूमध्यसागरीय उपगोष्ठी के अन्तर्गत आते हैं।

मंगोलियों को पाँच शाखाओं में भाग किया जा सकता है। पहला हुआ निप्पन (जपान)। इनलोगों का नाक चिपटा होता है, कपाल ऊँचा होता है तथा चेहरा बड़ा बड़ा होता है। दूसरा है मूल चैनिक। इनलोगों के नाक चिप्टे तथा आँखे पतली तथा छोटा। तीसरा हुआ मालय शाखा। इनलोगों का शरीर छोटा तथा नाक चिपटा। चौथा हुआ -इन्दोवार्मान शाखा। इनलोगों का नाक

चिपटा शरीर तुलना मूलक रूप से बड़ा होता है। पञ्चम हुआ इन्दो टिबेटान शाखा। इन लोगों का नाक चिप्टा होता है और ये लोग देखने में भी सुंदर होते है। इन सभी शाखाओं के सभी लोगों के शरीर पीला होता है और उनके शरीर में रोंए प्राय नहीं होते है।

अष्ट्रिकों का चेहरा मध्यम आकृति की होती है और उनके शरीर का रंग काली मिट्टी की तरह होती है।

निग्रो के शरीर का रंग काला होता है, बाल घूँघरैले होते है, ओठ मोटे होते हैं, आर्यों की तुलना में उनके खून ऊछ कम उष्ण होते हैं और प्रायश ऊँचाई में लम्बा होता है।

भारत में विभिन्न जनगोष्ठियाँ मौजूद हैं, उनलोगों में है, इन्दो टिबेटान गोष्ठी, जैसे- लद्दाखी, किन्नरी, गढ़वाली, नेपाली,

विषयसूची

सिक्किमी, भुटानी, नेवारी, मिजो तथा गोरो, भूमध्य सागरीय (आर्य-गोष्ठी), जैसे कश्मीरी ब्राह्मण तथा सफेद तथा लाल जैसे रंग का मनुष्य तथा द्राबिड़ (गोष्ठी) जैसे तामिल। आन्ध्रप्रदेशीय, कर्णाटकी, केरलीयन तथा

प्रागैतिहासिक युग में समग्र उत्तर अर्थात् बिन्ध्य पर्वत के उत्तर से तिब्बत तक समग्र अञ्चल समुद्र के नीचे था। बिन्ध्य पर्वत के दक्षिण अंश में वर्तमान अरब सागर, दक्षिण अफ्रिका, अष्ट्रेलिया तथा दक्षिण-पूर्व एशिया लेकर गण्डोयाना द्वीप पूञ्ज का निर्माण हुआ था। अष्ट्रिक लोग गण्डोयाना भूमि के दक्षिणांश में वास करते थे, निग्रोलोग रहते थे दक्षिण-पश्चिमांश में तथा अष्ट्रिक-निग्रो जो लोग आजके द्राबिड़ है वे रहते थे मध्याञ्चल में। विभिन्न नृ-गोष्ठी की (ethnic group) जैव-गोष्ठीगत संरचना

(bio-racial structure) को देख कर निर्णय किया जाता है कि कौन किस जनगोष्ठी के अन्तर्गत आते हैं।

साधारण नियम के अनुसार एक सबल संस्कृति एक दुर्बल संस्कृति के उपर काफी प्रभाव विस्तार करती है। विभिन्न संस्कृति के मनुष्यों की भाषा स्वाभाविक रूप से (automatically) अन्य श्रेणियों के उपर प्रभाव विस्तार करती है। जैसे, यद्यपि आर्यों तथा अनार्यों की संस्कृति के बीच काफी अन्तर था फिर भी आर्यों की भाषा का प्रभाव इतना अधिक था कि पूर्व तथा उत्तर-भारत के समस्त भाषाओं को मुख्यतः संस्कृत के उपर निर्भर करना पड़ा था। संस्कृत का प्रभाव इतना व्यापक था कि दक्षिण भारत में द्राबिड़ीय भाषाओं के उपर भी यह भाषा काफी प्रभाव विस्तार की थी। निम्न परिसंख्यान से पता चलता है कि पूर्व तथा उत्तर भारत

विषयसूची

की भाषाएँ किस प्रकार से वैदिक संस्कृत के द्वारा प्रभावित हुई थी। बंगला में 92% संस्कृत शब्द मौजूद है। उड़िया में 90%। मैथिली में 85% तामिल में 3% तथा मलयालम में 75%। उत्तर भारत से कुछलोग समुद्रपथ से जाकर मद्राज के पश्चिमांश में जाकर वस गए थे। इस लिए मलयालम भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार देखा जाता है यद्यपि उनकी क्रियापदें तामिल भाषा से आए हुए हैं।

समाज में उच्च श्रेणियों के मनुष्यों के उपर आर्य संस्कृति का प्रभाव विशेष प्रकार होने पर भी अन्यान्य श्रेणियों के उपर भी उनका साधारण प्रभाव था। कुछ कुछ अष्ट्रिक जनगोष्ठी के लोग हैं जैसे-घांगृश इत्यादि जो लोग अपने परिवारों में अष्ट्रिक उपभाषा में बातें करते है लेकन परिवार के बाहर वे लोग भोजपुरी भाषा में बातें करतें हैं। उसी प्रकार राँची जिला कि सिंमुड़ा और त्रिपुरा के त्रिपुरिया लोग घर में अपनी उपभाषा में बातें करते हैं लेकिन बाहर

में लोग बंगला में बातें करते हैं। गढ़वा ल तथा हुमायूँ के लोग तिब्बती तथा चीनी भाषा के बदले इन्दो-आर्य भाषा में बातें करना शुरू कर दिए हैं। तामिल, तेलेगु, मलयालम, कन्नड़ तथा तुलु भाषाएँ द्राविड़ीय भाषाओं के अन्तर्गत है। तिब्बती, चैनिक तथा इन्दो-चैनिक भाषाओं की वर्णमालाएँ एक है, यद्यपि चैनिक तथा जापानी भाषाओं की लिपि चित्रलिपि हैं। सिंहल (श्रीलंका) के जनसाधारण सिंहली भाषा (इसमें 87% संस्कृत शब्द हैं) में तथा तमिल (3% संस्कृत शब्द) भाषा में बातें करते हैं। गुणतिलक तथा बन्दर नायक सम्प्रदाय के लोग बंगाल से जाकर सिंहल (श्रीलंका) में वसवास किए थे तथा सिंहली सम्प्रदाय में सामिल हो गए थे। वर्मा के लोग विभिन्न भाषाएँ वर्मा, काब, काचीन, थान तथा अन्यान्य महत्वपूर्ण तथा कम महत्वपूर्ण भाषाओं में बातें करते हैं। सिंहलियों के तरह उनकी वर्णमालाएँ भी इन्दो-आर्य वर्णमाला के आधार पर तैयार हुआ है।

इन्दो-आर्य भाषाएँ हैं - माराठी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी, खड़िबली, ब्रज, बुन्देलखाण्डी, अवधी, छत्तिशगढ़ी, भांजपुरी, मगही, बंगला, उड़िया, असमिया, गढ़वाली, कुमायुनी, तथा गोर्खाली। अष्ट्रिक भाषाओं में है- मुण्डाभाषाएँ, संथाली, केराई तथा मानखामा की उपभाषाएँ तिब्बती-बर्मी भाषाओं के अन्तर्गत आते हैं- असमिया तथा मणिपुरी भाषा तथा नागर उपभाषा को छोड़कर असम की समस्त भाषा तथा उपभाषाएँ तिब्बती-चैनिक भाषाओं के अन्तर्गत आते हैं लद्दाखी, किन्नरी, किरात, लेपचा, नेवारी, गारो, खासी, तथा मिजो। चैनिक-जपानी भाषा के अन्तर्गत आते हैं- मन्दारिन चैनिक, कैन्टोनीज, जपानी, कम्बोडीय, इन्दोनेशीय, मालयेशिय भाषाएँ तथा उपभाषाएँ।

लिपियाँ मूलतः चार प्रकार के होते हैं सेमितिक (ग्रीक भाषा में अलफा, बिटा, गामा इत्यादि तथा हिब्रु भाषा में अलीफ, बे, गिमले इत्यादि) तथा चैनिक या चित्रलिपि। सबसे पुराणी लिपि आज से 6000 वर्ष पहले उद्भावित हुई थी जिसका नाम दिया गया था सैन्धवी लिपि। इसके करीब एक हजार वर्ष बाद में खरोष्ठी लिपि आई थी। ब्राह्मीलिपि बाँए से दाहिने की ओर लिखी जाती है तथा खरोष्ठी लिपि लिखी जाती है दाहिने से बाँए की ओर।

इलाहाबाद तथा इलाहाबाद के पूरब में कुटिला लिपि का व्यवहार होता था। विहार, पूर्वी उत्तरप्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, तथा असम में कुटिला लिपि व्यापक रूप से व्यवहृत होती थी। सम्राट अशोक की प्राचीन शिलालिपि ब्राह्मी लिपि में लिखी गयी थी। इलाहाबाद, ढाका, कलिकाता, पटना, प्रभृति अञ्चल में प्राप्त

शिलालिपियाँ कुटिला लिपि में लिखी हुई है। राजा हर्षबर्धन उनकी शिलालिपियों में तथा सरकारी मुहर में कुटिला लिपि का व्यवहार किए थे। इसीलिए बाद में यह लिपि श्रीहर्षलिपि नाम से परिचित हुआ था। बर्तमान में बंगला लिपि श्रीहर्ष लिपि है।

सारदा लिपि उत्तर पश्चिम भारत में व्यवहृत होती थी और नारदा था नागरी लिपि व्यवहृत होती थी दक्षिण-पश्चिम भारत में। नागरी लिपि में अक्षरों के माथे पर सरलरेखा खींच कर मात्रा नहीं दी जाती है। जब मात्रा देना शुरू हुइ हुआ तब उसका नाम हो गयी देवनागरी लिपि। कश्मीर तथा पञ्जाब के सारस्वत ब्राह्मण लोग सारदा लिपि का व्यवहार करते थे और गुजरात में नागर ब्राह्मण नागरी लिपि का व्यवहार किया करते थे। वर्त्तमान श्रीहर्ष लिपि का उम्र प्राय 1000 वर्ष है और नागरी लिपि का उम्र 300 वर्ष।

प्राचीन भारत में वैदिक संस्कृत द्राबिड़ीय तथा अष्ट्रिक भाषाओं को अवदमन करने की कोशिश की है, जैसे यूरोप में लातिन भाषा अन्य सभी यूरोपीय भाषाओं को ध्वंस करने की कोशिश की थी। मध्य प्राच्य में अरबी भाषा समस्त फार्सी भाषाओं को ध्वंस करने की कोशिश की थी। जब बुद्धदेव ने उनका दर्शन पालि भाषा में प्रचार करना शुरू किया तब संस्कृत पण्डितों ने उन्हे उनको संस्कृत भाषा का व्यवहार करने के लिए कहा था। लेकिन बुद्ध ने उनकी सलाह नहीं मानी। भारत में मध्यकाल मे कबीर ने भाव प्रकाश के माध्यम के रूप में संस्कृत भाषा के व्यवहार के विरोध में विद्रोह की घाषणा की थी। उन्होंने कहा था:-

"संस्कृत कुपोदक भाखा बहता नीर"

संस्कृत कुआँ के अन्दर चारों ओर घिरा हुआ पानी की तरह है, लेकिन जनगण की मुँह की भाषा शुद्ध प्रबहमान (बहता हुआ) पवित्र जल के समान है।

बंग देश में संस्कृत पण्डित लोग बंगला भाषा को जब दमन करने की कोशिश की थी लेकिन **नवाब हुसेन साह** ने बंगला भाषा की उन्नति विधान के लिए सभी प्रकार की मदद तथा उत्साह प्रदान किया था। तब तक रामायण, महाभारत, तथा भागवत संस्कृत में ही लिखित थी। बाद में कवि **कृत्तिवास**, कवि **काशीराम दास** तथा कबि **मालाधर वसु** (गुणराज खाँ) ने यथाक्रम से रामायण, महाभारत तथा भागवत का अनुवाद बंगला में किया था। संस्कृत पण्डितों ने गुजब रटवा दिया कि नवाब हुसेन शाह हिन्दु धर्म को ध्वंस करने का षड्यन्त्र कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं के पवित्र धर्मग्रन्थों को संस्कृत से बंगला में

अनुवाद कराना शुरू किया है। उनलोगों ने कृत्तिवास ओझा को सामाजिक बायकट तथा हिन्दु धर्म से वहिष्कार किया था। यह आज से प्राय 450 वर्ष पहले की घटना है। साम्प्रतिक काल में कनाडा तथा वेलस् के कुछ लोग उनकी भाषा के उपर अंग्रेजी को चढ़ा देने के विरोध में विद्रोह किया था। क्योंकि वे लोग उनकी अपनी भाषा को भाव प्रकाश के माध्यम के रूप में माँग कर रहे थे। उसी प्रकार भोजपुरी, मैथिली, मगही, छत्तीसगढ़ी (इस प्रवचन के बाद छत्तीसगढ़ नाम का एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण हुआ है-सम्पादक), अंगिका, अवधी, बुन्देलखण्डी, माड़ोवारी, कोंकनी और भी अनेक महत्वपूर्ण भारतीय भाषाएँ विभिन्न कायमी स्वार्थवादी लोगों के द्वारा अवदमित हो रहे हैं।

धर्ममत (Religion) :

इस धरती पर सभी लोग एक ही धर्ममत (religion) का पालन भी नहीं करता है, और धर्ममत मानव समाज गठन का कोई साधारण उपादान (factor) भी नहीं है। बल्कि बात कुछ उल्टा ही है। धर्ममत प्राय ही मानव समाज को विभाजित ही कर देता है। धर्ममत (religion) का अरबी प्रतिशब्द "मजहब" है और व्युत्पत्तिगत अर्थ में धर्म कहने पर वस्तु या जीव का चारित्रिक विशिष्टता या गुण का बोध होता है। वास्तव में अगर धर्म को उसके यथार्थ अर्थ में ग्रहण किया जाय तो देखा जाता है कि समग्र मानवजाति का धर्म एक है तथा अभिन्न है। धर्म एक मानस-आध्यात्मिक शक्ति (Psycho-spiritual faculty) है। यह पर्यायक्रम में मनुष्य के अन्दर स्थित प्रसुप्त देवत्त्व का अभिस्फूरण घटाता है तथा मनुष्य को परमास्थिति अर्जन में सहायता करती है। इसमें कोई उपकरण की जरूरत नहीं है। दूसरी ओर, धर्ममत (religion) एक मनस्तात्त्विक भावावेग (Psycho-sentimental factor) है। यह जागतिक तथा प्रथागत अनुष्ठान पालन की विधि

व्यवस्थाओं का समष्टि मात्र है। धर्ममत (religion) बहुत हो सकते हैं लेकिन सभी मनुष्यों का धर्म एक ही है।

धर्ममत हर समय नाना प्रकार आचार-आचरण पालन के लिए व्यवस्था पत्र देता है- जैसे-विशेष रूप से प्रदीप को जलाना, विशेष उपाय से बत्ती को पकड़ना, एक रूप से बैठना या अन्य प्रकार खड़ा होना। निर्दिष्ट संख्यक माला का जप करना इत्यादि। केवल अनुमोदित व्यष्टियों को ही विशेष विशेष देव-देवियों के लिए पूजारी बनाकर लाना, उनके लिए निर्दिष्ट राशि की प्रणामी की व्यवस्था करना, देव-देवियों के लिए शास्त्र में निर्धारित पशुवलियों की व्यवस्था करना, बेदियों को एक विशेष रूप से बनाना, इस प्रकार और भी कितने प्रकार के कामों में मन को व्यस्त रखना। इन सभी कामों को करते करते मन धर्मानुष्ठान की रीतिनीतियों में तथा जागतिक विषयों में मन आबद्ध हो जाता है।

इसलिए कैसे वह भक्ति स्रोत में तैरते हुए उनके आराध्य लक्ष्य की ओर दौड़कर जा सकेगा ? एक विशेष धर्ममत के अनुयायियों को एक निर्दिष्ट संख्यक बार घूँटनों के बल पर बैठना पड़ता है तथा खड़ा होना पड़ता है। फलतः स्वाभाविक रूप से ही हर समय उन्हें याद रखना पड़ता है कि उसने कितने बार उठ बैठ किया और इसी के चलते उनका मन अंग संचालन तथा बाह्यिक अनुष्ठान के उपर उठ नहीं सकता है।

कुछ लोग हैं जो लोग एकान्त रूप से विश्वास करते हैं कि मन्दिर सब ही एकमात्र पवित्र स्थान हैं लोकेन मसजिद, गिर्जाघर, तथा सिनागग आदि नहीं हैं। फिर अन्य धर्ममत के अनुयायी लोग केवल मात्र अपने को ही ईश्वर के प्रियपात्र समझते हैं तथा अन्यों को काफर या ईश्वर में विश्वास नहीं करनेवाले के रूप में समझते हैं। लेकिन ईंट, पत्थर, पत्थर के टुकड़े पवित्र या अपवित्र कैसे हो

सकते हैं। वे सभी तो वस्तुमात्र ही है। जो सब राजमिस्त्रियाँ तथा लकड़ी मिस्त्रिया मन्दिर निर्माण में नियुक्त हुआ था उनके अधिकांश लोग ही तथाकथित अन्य धर्ममतावलम्बी थे। फिर भी मन्दिर निर्माण के बाद ही उस स्थान को पवित्र स्थान के रूप में घोषित कर दिया जाता है। उस समय उन्हीं के धर्ममत की नीति के अनुसार यह विवेचित नही हुआ कि किनलोगों ने इनका निर्माण किया है। क्या यह मजाक नहीं है?

धर्ममत वाह्यिक क्रिया अनुष्ठानों के उपर आधारित है। इस लिए इन सबों में जागतिक वस्तु का ही प्रधानता होती है। काल क्रम में वही वस्तु लोगों का आराध्य हों जाता है। गाय का ही उदाहरण लीजिए। हिन्दुएँ गाय को बहुत अधिक पवित्र समझते हैं क्योंकि गाय दूध देती है। अब, गाय अगर दूध देने के कारण पवित्र माना जाता है तो भैंस के बारे में क्या होगा ? भैंसें तो और भी

विषयसूची

अधिक दूध देती है। भैसें को तो और भी अधिक पवित्र समझना चाहिए लेकिन धर्ममतीय भावजड़ता (dogma) के अनुयायीगण इस प्रकार की आलोचना पसन्द नही करते हैं। धर्ममत की भावनाओं से मनुष्य का मन जड़त्व प्राप्त होता है। किसी भी प्रकार बौद्धिक आलोचना या युक्ति से वह मानसिक जड़ता हटती नही हैं। बचपन से ही मनुष्यों के मन में अनेक अयौक्तिक धारणाएँ घुसा दी जाती है। इसके फलस्वरूप जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, तो भी उनके मन से उन बद्धमूल धारणाओं को हटाना बहुत कठिन हो जाता हैं, जैसे विज्ञान के छात्र अच्छी तरह से जानते हैं कि सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण का वैज्ञानिक कारण क्या है तथा इसमें पौराणिक राहु तथा केतु की कोई भूमिका नहीं है। फिर भी पुराणे संस्कार के कारण बहुत सारे लोग ग्रहण के दिन में पूण्यस्नान करने के लिए गंगा नदी में जाते हैं। क्या यह उस बद्धमूल धारणा यानि धर्ममतीय विश्वास के कारण ही नही हो रहा है?

जब मनुष्यों के मन में कोई धारणा इस प्रकार डाल दिया जाता है कि किसी प्रकार आलाप-आलोचनाएँ या युक्तियाँ सुनने के लिए आदमी तैयार नही होते हैं तब उसे 'अन्ध बिश्वास' कहा जाता है। कहा जाता है कि यह धर्मीय विश्वास की बात है, युक्ति का नहीं। भारत में ऐसे अनेक धर्मान्ध व्यष्टियाँ हैं। धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता के कारण अतीत में असंख्य बार दंगे-फँसाद हुए हैं। सामान्य एक बाल के कारण हजार हजार लोग मर चूके हैं। यह कितनी घृणित बात है, कहो तो ? ये सब धर्मान्ध लोग दूसरों की भाव-भावनाओं पर ध्यान नहीं देते हैं। और, इसके अलावे दूसरों का वक्तव्य सुनना उनलोगों के निकट पाप के रूप में परिगणित होते हैं। एक प्रकार से वेलोग पशुओं से भी अधिक अधम हैं; क्योंकि पशुएँ साम्प्रदायिक मनोभाव का पोषण नहीं करते हैं। इस प्रकार के धर्ममतों के अभिप्रकाश से जागतिक भावावेग की ही प्रधानता प्रकट होती है। मनुष्यों को हर समय धर्ममत के बन्धनों से दूर रहना पड़ेगा। समस्त धर्ममतों की भावजड़ताओं के पीछे

जागतिक मामले ही प्रकट होते हैं। एक सम्प्रदाय गाय का मांस खाना पाप समझता है, लेकिन बकरे या हिरणों के मांस खाने को नहीं। भारतीय महिलाओं की माँग पर सिन्दुर लगाने की प्रथा धर्मीय भावावेश का अभिप्रकाश है। अन्यान्य देशों में यह प्रथा मान्य नहीं है। अगर सभी भारतीय महिलाएँ इस प्रथाको बन्ध भी कर दे तो ऐसी कोई बहुत बड़ी बात नहीं हो जाएगी। समस्त धर्ममत ही धर्मीय भावावेग को उस्काकर मनुष्यों को शोषण करते हैं।

बहुत सारे लोग हैं जो लोग विशेष विशेष धर्म ग्रन्थों की पूजा करते हैं। इन ग्रन्थों के अधिकांश भाग की ही छपाई तथा मढ़ाई अन्य धर्ममतावलम्बियों के द्वारा की जाती है। कोई भी शास्त्रीय ग्रन्थ प्रकाशित होते मात्र ही हिन्दुएँ उन किताबों को देवी सरस्वती के रूप मानने लगते हैं। बहुत सार्र लोग हैं जो लोग काफी

पैसे खर्च करके मूर्तियों का निर्माण करते हैं और फिर एक या दो दिन बाद उनकी पूजा करके बहुत बड़ी जुलूस निकाल कर काफी उन्मादना के साथ उस मूर्ति को नदी में विसर्जन करते हैं। अगर अन्य कोई धर्ममतावलम्बी आदमी आकस्मिक दुर्घटनावश उस मूर्ति का कोई अंश क्षतिग्रस्त कर चुके होते है तो अकल्पजीय अनभिप्रेत घटना घट सकती है।

मतान्धता तभी दिखाई देती है जब मनुष्यों की स्वस्थ विचार बुद्धि की तुलना में स्थूल विषय समूह अधिक प्रधानता पाती है। जब ये मतान्धताएँ किसी धर्ममत में केन्द्रीभूत हो जाती है तब धर्मान्धता का उद्भव होता है। धर्ममतान्ध व्यष्टियों को सठीक रास्ते पर लाने के लिए बल प्रयोग के बदले उनलोगों के पास बौद्धिक आवेदन करना पड़ेगा, क्योंकि बल प्रयोग की प्रतिक्रिया में धर्ममतान्धता और भी प्रबल हो जाएगा।

विषयसूची

कोई-कोई सामाजिक व्यवस्थाएँ शुरू में केवल एक लोकाचार या प्रथा थी। वे धर्मीय अनुष्ठान नही थे। युहुदी लोगों ने मुशा के आविर्भाव के बहुत पहले से ही छुन्नत (लिंगाग्र के चर्मच्छेदन) का अनुष्ठान शुरू किया था। जब मुशा (Moses) ने उनके समसामयिक व्यष्टियों को युहुदी धर्म में धर्मान्तरित किया और बाद में महम्मद ने कुछ स्थानीय लोगों को इसलाम धर्म में धर्मान्तरित किया उस समय दोनों ने ही उनके नये अनुयायियों को इस प्रथा को त्याग करने का निर्देश देने का साहस नहीं किया। इसके फलस्वरूप धर्मान्तरकरण के बाद भी (इन दोनों धर्ममतों में) वह प्राचीन प्रथा चालु ही रह गया। प्राचीन काल में अष्ट्रिक सम्प्रदाय के लोग सूर्य की पूजा करते थे क्योंकि वे विश्वास करते थे कि सूर्यदेव तुष्ट होने पर वे काफी वर्षा देंगे और उससे फसल बहुत अच्छा होगा। अष्ट्रिक समाज में नारियों का स्थान बहुत उपर में था और इसी लिए वहाँ पर पुरोहितों की भूमिका का कोई विशेष

महत्त्व नहीं था। अष्ट्रिकों में विश्वाष था कि सूर्य एक देवी है तथा चन्द्र एक देवता हैं। इसलिए वे लोग सूर्य को माता कहकर सम्बोधन करते थे। उनलोगों ने छठ पूजा के नाम पर सूर्येदवी की उपासना का प्रवर्त्तन किया था। प्राचीनकाल में लोग साल में एकबार सूर्येदवी की पूजा करते थे लेकिन मगध में यह पूजा दोबार होती थी। दो प्रधान फसल के समय। मगध के अधिवासियों में छठपूजा का ऐतिह्य इतनी मजबूत हो गयी थी कि आर्य, बोद्ध तथा मुसलमानों का प्रबल प्रताप होते हुए भी छठ पूजा की प्रथा अपरिवर्तित रह गयी थी। ऐसा है कि आज भी मगध में कही-कहीं पर मुसलमान लोग भी छठ पूजा करते हैं। कहीं पर ये लोग स्वयं छठ पूजा करते हैं। और कहीं कहीं हिन्दुओं को सामग्रियाँ देकर छठपूजा करवाते हैं। उसी प्रकार बंगाल में भी मुसलमान लोग सत्यनारायण भगवान की तथा देवी ओलाबीबी की पूजा करते हैं। ये सभी ऐतिह्यगत विश्वास का अभिप्रकाश है जो प्रजन्म से प्रजन्मान्तर में चला आ रहा है।

विषयसूची

धर्ममतान्धता के विरोध में संग्राम करने का एकमात्र उपाय है युक्तिवादी आन्दोलन को और भी मजबूत करना। विज्ञान शिक्षा से हमलोग समझ चूके हैं कि ग्रहण एक प्राकृतिक घटना है। राहु तथा केतु नामक उपदेवताओं की इसमें कोई भूमिका नहीं है। यद्यपि इस प्रकार का कुसंस्कार आजकल क्रमशः ह्रास हो रहा है फिर भी कुछ-कुछ लोग आज भी इस पौराणिक उपदेवता की पूजा करते हैं, क्योंकि वे विश्वास करते हैं कि सूर्य तता चन्द्र को ग्रहण मुक्त करने के लिए उन देवताओं को सन्तुष्ट करना पड़ेगा। इसका कारण है कि मनुष्यों के मन में युक्तियों की तुलना में भय-वृत्ति बहुत अधिक प्रबल है। जब मनुष्यों का विचार बोध (rationality) और भी मजबूत हो जाएगी तब समाज से सभी कुसंस्कार दूर हो जाएँगे।

बहुत सारे लोग आजकल धर्मराष्ट्र निर्माण की बातें करते हैं। लेकिन "धर्मराष्ट्र" शब्दका व्यवहार करने पर भी वे लोग वास्तव में धर्ममत भित्तिक राष्ट्र की बातें करते हैं, न्याय धर्म पर आधारित राष्ट्र की बातें नहीं। हमें ऐसा राष्ट्र का निर्माण करना होगा जहाँ पर वास्तविक धर्म की प्रतिष्ठा होगी और इसके लिए धर्ममत का मूल आधार जागतिक भावावेग को (physical sentiments) महत्त्वहीन करना पड़ेगा। जनसाधारण को भावजड़ता भित्तिक धर्ममतादर्श से दूर रहना ही पड़ेगा। कुछलोग चाँद के सम्पर्कित धर्मीय अनुष्ठानों का पालन करते हैं। चाँद का दर्शन करने के बाद ही उनके धर्मीय व्रतपालन शुरु होता है। लेकिन भविष्य में जब लोग चाँद में वसवास करना शुरू करेंगे तो उनलोगों के क्षेत्र में क्या होगा? एकमात्र युक्ति सम्मत विचारधारा ही मनुष्यों विचारशीलता के मन से भीतन्मन्यता को खत्म करेगी (rationality) मतान्धता को पराजित करेगी।

भारत में आर्यों ने अष्ट्रिक धर्म को समाप्त करके वैदिक सभ्यता को प्रतिष्ठित करना चाहा था। बौद्ध काल में मगध में विशेष कर राजा विम्बिसार के राजत्त्वकाल में अबोद्धों के उपर बौद्ध धर्म चढ़ा दिया गया था। परवर्तीकाल में हिन्दु मतावलम्बियों ने बल पूर्वक बौद्ध तथा जैनियों को हिन्दुत्त्व में धर्मान्तरित किया था। मुसलमान युग में मुसलमान शासकों ने बलपूर्वक भारत में, इराण में तथा मिश्र में इसलाम धर्म को जनता पर चढ़ा दिया था। वास्तव में समकालीन मिश्र अरब सभ्यता तथा इसलाम धर्म का विमिश्रण है। असंख्य युहुदियों को बलपूर्वक ईसाई धर्म में धर्मान्तरित किया गया था। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में इसाई लोग मनस्तात्त्विक उपाय से इसाई धर्म का प्रचार किया था और उसके फलस्वरूप हजारों हजार हिन्दुओं ने इसाई धर्म ग्रहण किया था। भारत में अंग्रेजों के आने के पहले इस देश में इसाई धर्मामतावलम्बी प्रायः था ही नहीं। मुसलमानों के शासनकाल में बहुत सारे हिन्दुएँ मनस्तात्त्विक दवाब तथा बलप्रयोग के माध्यम

से इसलाम धर्ममत में धर्मान्तरित हुए थे। इसके अलावे भी बहुत सारे हिन्दुओं ने इसलाम धर्म को इसलिए ग्रहण किया था कि वे लोग हिन्दु धर्ममत की त्रुटि-विच्च्युतियों से वीतश्रद्ध हो चुके थे। उस समय उत्ताल धर्ममतीय विक्षोभ के साथ-साथ चरम सामाजिक विषमता भी दिखाई दी थी, और इसी के फलस्वरूप बहुत सारे हिन्दुएँ मुसलमान हो गए थे। आज भी कुछ-कुछ धर्मप्रचारक अशिक्षा, कुसंस्कार, तथा दरिद्रता का सुयोग लेकर मनुष्यों को अपने-अपने धर्ममत में धर्मान्तरित किए जा रहे हैं। मध्यकालीन इसाईयों का क्रुसेड या धर्मयुद्ध एक धर्ममत के द्वारा दूसरे धर्ममत का अवदमन करने का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

(आर० यू० प्रवचन, मई, 1970)

विषयसूची

विकेन्द्रित अर्थनीति

दुनिया के बड़े बड़े नेताओं के समक्ष आज सबसे अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक विषय हुआ देश के आर्थिक उन्नयन के माध्यम से कैसे जनसाधारण की जीवनयात्रा का मान को उपर उठाया जाए। विशेष करके उन सभी देशों में जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, उनलोगों के लिए यह एक मुख्य समस्या है। यह मसला उतना आसान भी नहीं है क्योंकि बहुत सारे देशों में अभी भी साधारण मनुष्य उनके जीवन धारणा के लिए प्रकृति के उपर निर्भरशील हैं। केवल मात्र अल्प कई देशों के मनुष्य उनके ज्ञान तथा बुद्धि को कार्यान्वित करके अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हुआ है।

विषयसूची

दुनिया का अधिकांश देश, चाहे वह पूँजीवादी या कम्युनिष्ट देश ही क्यों न हो, आर्थिक केन्द्रीकरण की नीति का ही अनुसरण किया है। जहाँपर पूँजीवादी देशों में इने-गिने पूँजीपतियों के हाथों में अर्थनीति केन्द्रीभूत है, वहीं पर कम्युनिष्ट देशों में अर्थनैतिक इकाई को पार्टी नियन्त्रित कर रहा है। लम्बे समय से इस आर्थिक केन्द्रीकरण की नीति को अनुसरण करके क्या वे लोग (दो प्रकार के देश) वहाँ के जनसाधारण की जीवनयात्रा का मान उपर उठाने में समर्थ हुए हैं? इस विषय का मूल्यांकन करने के लिए देखना पड़ेगा कि प्रधानतः उन देशों में आर्थिक शोषण समूल उत्पाटित हुआ है या नहीं और साधारण मनुष्यों की क्रम बर्धमान क्रयक्षमता की निश्चितता है या नहीं। वास्तव सत्य यह है कि केन्द्रित अर्थनीति में आर्थिक शोषण के अवसान की कोई सम्भावना ही नहीं है, और वहाँ पर जनसाधारण की आर्थिक समस्या का स्थायी समाधान भी नहीं हो सकता है।

अगर भारत की बात लिया जाय तो देखा जाएगा। वहाँ पर साधारण मनुष्य को कायमी स्वार्थवादी लोगों ने बारबार बेवकुफ बनाया है। राजनैतिक नेताएँ असंख्य प्रतिश्रुतियों की बाढ़ बहा दिये हैं। लेकिन ये सभी बातें अन्त तक निष्ठुर धोखाबाजी में परिणत हुआ है। वह बात स्पष्ट हो चुकी है कि आर्थिक केन्द्रीकरण की नीति वास्तव में पूँजीपतियों के लिए अधिकतर धन सञ्चय करने का कौशल है। इसमें एक तरफ अविश्वासी जनसाधारण की आशाओं को लम्बित रखा जाता है, दुसरी और पूँजीपतिवर्ग सम्पत्ति का पहाड़ बनाता जाता है। अगर हमलोग खोजकर देखें कि ऐसा क्यों हो रहा है, तो देखेंगे कि इनके कारण भी स्पष्ट हैं। कुछ गिने-चुने लोग ही देश की समस्त आर्थिक नीतियाँ बना रहे हैं जो लोग पूँजीवाद के खम्भे हैं।

आर्थिक शोषण को प्रतिहत करने के लिए और जनसाधारण की दुःख-दुर्दशा को दूर करने के लिए एकमात्र उपाय है और वह है आर्थिक सभी क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण की नीति को रूपायित करना। किसी क जगह पर शीतताप नियन्त्रित घर में मजे के साथ बैठकर हजार-हजार मील दूरी पर बसे किसी स्थान के लिए सार्थक परिकल्पना का निर्माण करना संभव नहीं है। केन्द्रित व्यवस्था में सुदूर गाँव की आर्थिक समस्या का समाधान कतई संभव नहीं हैं। आर्थिक परिकल्पना का सूत्रपात सबसे नीचे की स्तर में करना होगा जिससे वहाँ के स्थानीय मनुष्यों की अभिज्ञता, दक्षता, तथा वैवहारिक ज्ञान को कार्यान्वित करके एक सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल के सभी अधिवासियों का वास्तविक कल्याण किया जा सकता है। सभी प्रकार आर्थिक समस्याओं का समाधान तभी सम्भव होगा जब आर्थिक संरचना का आधार विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था होगी।

मूल प्रश्न है कि कैसे केन्द्रित अर्थनीति के अस्वास्थ्यकर प्रभाव से मुक्त रहा जाय। वास्तब बात यह है कि बिल्ली के गले में घण्टी कौन बाँधेगा ? अगर कायमी स्वार्थवादी व्यष्टियाँ शुभबुद्धि के द्वारा परिचालित न होना चाहे तो जनसाधारण को ही अपने हाथों में इसका दायित्व लेना पड़ेगा। इस स्थिति में उन सबों को एकत्रित करके सभी ओर से दवाब डालना पड़ेगा। उस समय सम्मिलित स्लोगान होगा "शोषण का अन्त करने के लिए केन्द्रित अर्थनीति समाप्त करो, विकन्द्रित अर्थव्यवस्था चालु करें।" क्योंकि विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से ही जनसाधारण का सार्विक कल्याण संसाधित होगा क्योंकि इस व्यवस्था में आर्थिक उन्नयन तो सुनिश्चित होता ही है, इसके अलावे इसके माध्यम से व्यष्टि तथा समष्टियों का मानस-आध्यात्मिक प्रगति का पथ भी प्रशस्त होता है। जब जनसाधारण का जागतिक तथा वैषयिक समस्या का समाधान एकबार हो जाता है तब उन्हें सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में उनकी अन्तर्निहित सम्भावनाओं को

विकसित करने का अधिक अवसर प्राप्त होता है। विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित होनेपर आर्थिक तथा मानस आर्थिक शोषण का भी मूलोच्छेद होता है तथा धनी और दरिद्रों के बीच की खाई घटती है, और व्याप्ति तथा सामूहिक, कल्याण उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करता है। इसी के फलस्वरूप समाज के सभी मनुष्यों की मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रगति सुनिश्चित होती है।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की मूल-नीतियाँ :

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की प्रथम नीति है कि एक सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल के सम्पद का नियन्त्रण स्थानीय जनसाधारण करेंगे। विशेष करके न्यूनतम प्रयोजन परिपूर्ति के लिए अत्यावश्यक पण्यों का उत्पादन हेतु जो सब आर्थिक सम्पद का प्रयोजन होगा वे सभी वस्तुएँ स्थानीय जनसाधारण के हाथ में

रहेंगे। स्थानीय कच्चेमालों का सर्वाधिक उपयोग के माध्यम से उन सभी चीजों का ही उत्पादन करना होगा जो एक सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल के आर्थिक उन्नयन के लिए आवश्यक है। इसलिए उन सभी सम्पदों का उपयोग सम्पूर्ण रूप से स्थानीय जनसाधारण के द्वारा नियन्त्रित होगा।

स्थानीय जनसाधारण का मतलब हुआ जो लोग अपने व्यष्टिगत सामाजिक-आर्थिक स्वार्थ को उस सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल जहाँ पर वेलोग वसवास करते हैं, वहाँ के सामाजिक अर्थनैतिक स्वार्थ के साथ एकात्म कर चुके हैं। अतः स्पष्ट है कि स्थानीय जनसाधारण के सम्बन्ध में यह जो धारणा है, उसके साथ व्यष्टि के शरीर, शरीर का रंग, उनके जातपात, श्रेणी, सम्प्रदाय, धर्मविश्वास, भाषा या जन्मस्थान के साथ कोई सम्पर्क नहीं हैं। मूल बात यह है कि संश्लिष्ट सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल के हर मनुष्य तथा

परिवार उनके व्यष्टिगत सामाजिक अर्थनैतिक स्वार्थ को सामूहिक स्वार्थ के साथ एकात्म कर सके हैं या नहीं। इस आधार पर जो लोग स्थानीय जनसाधारण के रूप में स्वीकृति नहीं हों तो वे लोग ही बहिरागत के रूप में मान्य होंगे। किसी भी बहिरागत को स्थानीय आर्थिक कार्य-कलाप में या उत्पादन तथा बण्टन व्यवस्था में नाक गलाने की उनुमति नहीं दी जाएगी।

ऐसा न होने पर एक भासमान जनेगाष्ठी तैयार हो जाएगा जो लोग स्थानीय इलाका से सम्पद का बहिःस्रोत जारी रखेगा। फल स्वरूप वह अञ्चल आर्थिक शीषण के जाल में फँस जाएँगे। इससे आर्थिक विकेन्द्रीकरण का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा।

स्थानीय अञ्चल के मनुष्यों के न्युनतम प्रयोजन परिपूर्ति के बाद शेष सम्पद प्रतिभावानों के बीच उनकी योग्यता के मान के

अनुसार वण्टन कर देना होगा। उदाहरणस्वरूप- डाक्टर, इंजीनीयर, वैज्ञानिक तथा अन्यान्य विशेष गुणसम्पन्न मनुष्य जो लोग विभिन्न कामो में नियोजित हैं उन्हें विशेष सुविधा (amenities) देने की जरूरत है जिससे लोग समाज की अधिक सेवा कर सकेंगे। जहाँ पर एक साधारण मनुष्य का काम एक साइकिल से चल सकता है, वहाँ पर हो सकता है कि एक डक्टर को एक मोटर गाड़ी देना पड़े। लेकिन आर्थिक व्यवस्था में ऐसा अवसर प्रदान करना होगा, जिसमें न्युनतम प्रयोजन तथा प्रतिभावानों की विशेष सुविधा - इन दोनों के बीच का अन्तर घटता रहे। साधारण मनुष्यों की जीवनयात्रा का मान बढ़ाने के लिए एक समय उन्हें साइकिल के बदले स्कूटर देना पड़ेगा। यद्यपि स्कूटर तथा मोटर गाड़ी के बीच का अन्तर रह ही जाता है फिर भी इन दोनों की बीच का अन्तर कुछ तो कम हुआ है। इस प्रकार से घटाते-घटाते साधारण मनुष्य और प्रतिभावानों के बीच के दूरी जहाँ तक सम्भव घटाने का विरामहीन प्रयास चलाता रहना होगा। लेकिन याद रखना होगा

कि कभी बीज का अन्तर समाप्त नहीं होगा। दोनों के बीच का अन्तर अगर बढ़ता ही रहे तो साधारण मानुष्य फिर धोखे की दायरे में आ जाएँगे विशेष सुविधा की आड़ में समाज में फिर से शोषण बरकरार हो जाएगा। विकेन्द्रित अर्थनीति में इस प्रकार की गूँजाइश नहीं रहती है। क्योंकि इस व्यवस्था में एक तरफ मनुष्यों की न्युनतम आवश्यकता का मान हर समय बढ़ता ही रहेगा। दूसरी तरफ उसी प्रकार कौन कितने विशेष सुविधा के अधिकारी होंगे वह भी निर्धारित होगा और वह निर्धारित होगा सामूहिक कल्याण की बात विवेचना करके।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की दुसरी नीति होगी कि उत्पादन का आधार होगा उपभोग (consumption), मुनाफा (Profit) नहीं।

दुनिया का अधिकांश देश जिस अर्थनैतिक व्यवस्था को ग्रहण किया है वह मुनाफाभित्तिक अर्थनीति है अर्थात मुनाफा कामाने के लिए ही उत्पादन किया जाता है। उत्पादन करने वाले उसी वस्तु के उत्पादन को अग्राधिकार देता हे जिसके माध्यम से सर्वाधिक मुनाफा कमाया जा सके। इसी लिए उसी प्रकार के वस्तुओ के उत्पादन में - ही जबरदस्त प्रतियोगिताएँ चलती है। भारत में भी यही नियम चलता है। मनुष्यों की जीवन यात्रा का मान बढ़ाने के लिए एक नया उत्पादन व्यवस्था का प्रवर्तन करना होगा। मुनाफा के बदले उपभोग को ही उत्पादन का मूल प्रेरक तत्त्व के रूप में स्वीकार करना होगा।

विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था में किसी एक सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल में जो सब भोग्यपण्य उत्पादित होगा वह स्थानीय बाजार में ही बेचा जाएगा। इसके फलस्वरूप स्थानीय

मनुष्यों के आर्थिक जीवन में किसी प्रकार अनिश्चितता नहीं रहेगी। इसके अलावे स्थानीय बाजार में ही अर्थ सचल रह जाएगा तथा इसी कारण से मूलधन का बहिः स्रोत भी बन्द हो जाएगा। इस प्रकार से स्थानीय अर्थनीति में आर्थिक विपर्यय की सम्भावनाएँ बहुत घट जाएगी। इस व्यवस्था में जन साधारण की आय ऊर्द्धमुखी होती रहेगी और उनकी क्रयक्षमता भी बढ़ती रहेगी। दुनिया की किसी भी आर्थिक व्यवस्था में मनुष्यों की क्रयक्षमता की क्रमागत वृद्धि संभव नहीं हुई है। इसका एकमात्र कारण है, आर्थिक क्षमता मुष्टिमेय लोगों के हाथों में केन्द्रीभूत रहना।

विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था की तृतीय नीति होगी, उत्पादन और बण्टन का काम सभी अवस्था में समवाय के द्वारा परिचालित होगा।

अतीत में समवाय की व्यर्थता का प्रधान कारण था आर्थिक केन्द्रीकरण। शोषण, व्यापक दुर्नीति और जड़वाद-भित्तिक आर्थिक परिवेश में समवाय व्यवस्था सफल होना बहुत कठिन है। इसीलिए वहाँ पर जन साधारण सर्वान्तःकरण से समवाय को स्वीकार नही कर सकते हैं। स्थानीय बाजार को कब्जा करने के लिए समवाय को एक चटिया पूँजीपतियों के साथ प्रतियोगिता में उतरना पड़ता है। इसमें कच्चे माल के उपर स्थानीय मनुष्यों का अधिकार स्वीकृत नहीं होता है। इसी परिस्थिति के लिए दुनिया के अनेक देशों में समवाय आन्दोलन व्यर्थ हुआ है।

दूसरी और विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था समवाय सफल होने का अन्यतम प्रधान कारण के रूप में विवेचित होते हैं। स्थानीय कच्चे माल की सहजलभ्यता समवायों में उनकी आपूर्ति सुनिश्चित करेंगे और समवाय व्यवस्था में तैयार सामग्रियाँ आसानी से

स्थानीय बाजार में बिक जाएँगें। यह आर्थिक सफलता समवाय के सदस्यों के बीच समवाय के सम्पर्क में आग्रह पैदा करेंगे तथा योगदान की इच्छा को बढ़ाएँगे। इस प्रकार से स्थानीय मनुष्य को आर्थिक निरापत्ता मिलेगी और इस कारण से वे लोग सर्वान्तःकरण से समवाय व्यवस्था को ग्रहण कर लेंगे।

जितना दूर सम्भव कृषि, शिल्प तथा व्यवसा-वाणिज्य समवाय के माध्यम से परिचालित होना चाहिए। आर्थिक व्यवस्था के इन क्षेत्रों में व्यष्टिगत मालिकाना (मलकीयत) धीरे-धीरे समाप्त करना होगा। केवल मात्र जहाँपर उत्पादन की पद्धति जटिल है या छोटे उद्योगों पर निर्भरशील होने की वजह से समवाय पद्धति से उत्पादन संभव नहीं है केवल उन्हीं क्षेत्रों में व्यष्टिगत मालिकाना रह सकता है। प्रयोजनीय भोग्य सामग्रियों का बण्टन भी उपभोक्ता

समवाय के माध्यम से होना चहिए। इसके अलावे समवाय के लिए औरभी कुछ रक्षाकवचों की व्यवस्था रखना होग।

समवाय व्यवस्था को छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है और वह केवल विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है। इस लिए विकेन्द्रित अर्थ-नीति और समवाय अर्थव्यवस्था एक दूसरे का अविच्छेद्य अंग है।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की चौथी नीति है एक अञ्चल के अर्थनैतिक कार्य-कलाप में स्थानीय मनुष्यों की नियुक्ति तथा अंशग्रहण ।

जब तक स्थानीय अर्थनीति में वहाँ के मनुष्यों की शत प्रतिशत कर्मनियुक्ति नहीं होगी तब तक बेकार समस्याएँ कभी भी

समाप्त नहीं होगी। स्थानी मनुष्यों की माँग पर ही सर्वनिम्न आवश्यकता का परिमाण निर्धारित होगी। और उनके आर्थिक स्वच्छन्दता को ध्यान में रखकर ही आर्थिक मूल्य की नीति स्वीकृत होगी। यह नीति रूपायित होने पर स्थानीय अर्थनीति में बहिरागतों के हस्तक्षेप की समस्याएँ रहेगी ही नहीं।

समवाय में स्थानीय लोगों को काम मिलेगा और इसमें उनकी दक्षताओं तथा क्षमताओं का पूर्ण सदव्यवहार होगा। समवाय में शिक्षित लोगों के लिए भी नौकरी की व्यवस्था रहेगी जिससे वे लोग कर्म की खोज में स्थानीय इलाका छोड़कर बाहर न जाए तथा ग्रामाञ्चल को छोड़कर शहर में आकर भीड़ न जमाएँ।

खेती की उन्नति में विशेषज्ञों तथा प्रयुक्तिविदों की विशेष भूमिका होती है। इस लिए समवाय के माध्यम से अदक्ष लोगों को

विषयसूची

प्रशिक्षण देना होगा जैसे वे लोग कृषि व्यवस्था को उन्नीत करने के लिए प्रयोजनीय दक्षता अर्जन कर ले सके। इसके अलावे भी स्थानीय अञ्चल के सम्पद तथा प्रयोजन के आधार पर सभी प्रकार कृषिभित्तिक तथा कृषि सहायक शिल्प का निर्माण करना होगा और वे सब भी समवाय के माध्यम से ही परिचालित होंगे।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की पाँचवी नीति है कि जो सब भोग्यपण्य स्थानीय रूप से उत्पादित नहीं होते हैं उसे उस अञ्चल के बाजार में बेचने नहीं दिया जाएगा।

चूँकि विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होता है स्थानीय शिल्प को विकसित करके स्थानीय जन साधारण के लिए काम का अवसर तैयार करना, इसलिए जो सब सामग्रियाँ उस अञ्चल में उत्पन्न नहीं होती है जहाँतक सम्भव हो वहाँ के बाजार से उन

वस्तुओं को बहिष्कृत कर देना होगा। यह आवश्यक रूप से देखना पड़ेगा कि अपनी इलाका में उत्पन्न सभी प्रकार प्रयोजनीय भोग्य सामग्रियों का व्यावहार वहाँ स्थानीय लोग कर' सके। इसी से ही स्थानीय अञ्चल की अर्थनैतिक स्वनिर्भरता सुनिश्चित होगी। हो सकता है कि शुरू-शुरू में स्थानीय रूप से उत्पन्न सामग्रियाँ बाहर से आयात किए गए वस्तुओं की तुलना में महँगी हो तथा सुलभ नहीं होंगे, फिर भी उस अञ्चल के लोगों को स्थानीय रूप से उत्पन्न पण्यद्रब्य मनुष्यों की माँग के अनुरूप या आशानुरूप न हों, उस स्थिति में तात्क्षणिक व्यवस्था लेना पड़ेगा। जिससे उन वस्तुओं का गुणमान बढ़ सके, कीमत घटाई जा सके और स्थानीय रूप से सभी प्रयोजनीय वस्तुओं की आपूर्ति बढ़ सके। ऐसा न होने पर गैर कानुनी आयात व्यवस्था कायम हो जाएगी।

विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था में इस नीति का प्रयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अगर इसकी अवहेलना की जाय तो स्थानीय शिल्प बैठ जाएगा। स्थानीय मनुष्यों के हाथों से वहाँ के बाजार का नियन्त्रण खत्म हो जाएगा और बेकार समस्या बढ़ जाएगी। दुसरी और नीतिगत रूप से स्थानीय भित्ति से उत्पन्न द्रव्य ही अगर बाजार में रहेगा तो स्थानीय शिल्प बच जाएंगे। केवल यही नहीं, स्थानीय अर्थनीति शक्तिशाली होगी। अर्थ का बहिःस्रोत बन्द होने पर चूँकि वह संश्लिष्ट इलाके में ही रह जाएगा। इसलिए वह अर्थ उत्पादन वृद्धि तथा स्थानीव मनुष्यों के विकास के काम में ही व्यवहृत होंगे। स्थानीय रूप में उत्पन्न द्रव्यों की माँग की वृद्धि के साथ साथ बृहत मध्यम तथा क्षुद्र शिल्प भी तैयार होंगे।

आर्थिक रूपान्तरण :

विषयसूची

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की मूलनीति के अनुसार कृषि, शिल्प तथा व्यवसा-वाणिज्य संक्रान्त कर्मपन्थाएँ (Policy) निर्धारित करनी होगी। इसमें सबको काम मिलने का अधिकार को सुनिश्चित करना होगा। स्थानीय सम्पद तथा संभावनाओं का सर्वाधिक उपयोग तथा युक्तिसङ्गत बण्टन को अग्राधिकार देना होगा। और इसलिए याद रखना पड़ेगा कि एक सामाजिक-आर्थिक युनिट के अन्तर्गत सभी अञ्चलों की आर्थिक उन्नति समान रूप से हो।

कृषि उत्पादन, मूल्य-निर्धारण और कृषिपण्यों का विक्रय इन संभी मामलों पर समवाय के सदस्यगण ही कर्मपन्था स्थिर करेंगी। स्थानीय मनुष्य समवाय के सदस्यगण ही कर्मपन्था स्थिर करेंगे। स्थानीय मनुष्य समवाय समितियों के नियन्त्रण तो करेगा ही, उसी के साथ वे लोग स्थानीय सभी आर्थिक कार्यकलापों को

विषयसूची

भी नियन्त्रण करेंगे। समवायों की आर्थिक अवस्थाओं की उन्नति के लिए स्थानीय प्रशासन प्रयोजनीय सहायताएँ प्रदान करेंगे। सभी प्रकार कृषिपण्यों के दाम युक्तिसंगत रूप से तथा निम्नलिखित विन्दुओं के आधार पर निर्णीत होंगें। जैसे-श्रम की मजदूरी, कच्चेमाल की खपत, परिवहन तथा स्टोरेज का खर्च, नुकसान (depreciation), प्रतिपूरक निधि (sinking fund) अन्यान्य खर्च के आधार पर। इसके अलावे इस कीमत में उत्पादन खर्च का 15% मुनाफा के रूप में रखना पड़ेगा। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में कृषि को उद्योग की मर्यादा दी जाएगी।

शिल्प व्यवस्थाएँ भी विकेन्द्रित आर्थिक परिकल्पनाओं की मूल नीति के अनुसार अलग ढंग से सजाना होगा। अगर देश का कोई एक अंश अधिक शिल्पोन्नत हो जाय, तो वह दूसरे अंचल के आर्थिक उन्नयन में व्याघात उत्पन्न करेंगें। आर्थिक

विकेन्द्रीकरण होने पर यह अवस्था नहीं आएगी। वहाँ पर मूल या भारी शिल्प (key industry), मध्यम शिल्प, तथा क्षुद्र शिल्प भिन्न-भिन्न मनुष्यों के द्वारा परिचालित होंगे। केन्द्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी हो या कम्युनिष्ट हो ये बृहत शिल्प साधारणतः व्यष्टिगत उद्योग या राष्ट्रीय उद्योग के माध्यम से परिचालित होता है। लेकिन वे "न-लाभ-न हानि-नीति" का अनुसरण नहीं करते है। अधिकांश मध्यम शिल्प समवाय के द्वारा परिचालित होंगे। लेकिन वे लोग एक तरफा उत्पादित या मुनाफा नीति अनुसरण नहीं करेंगे। समवाय क्षेत्र ही अर्थव्यवस्था का प्रधान क्षेत्र होगा। समवाय के माध्यम से ही स्थानीय लोगों को स्वतन्त्ररूप से संघटित किया जाता है, उनकी जीविका की निश्चितता दी जाती है, और इसमें उनके आर्थिक कल्याण को वे स्वयं ही नियन्त्रण करते हैं। अधिकांश क्षुद्र तथा कुटीर शिल्प व्यष्टिगत मलीकयत में रहेगा। क्षुद्र उद्योगों, प्रधानतः जो अत्यावश्यकीय पण्य नहीं हैं, वे कुछ-कुछ विलास द्रव्यों के

उत्पादन में नियोजित रहेंगे। ये सब व्यष्टिगत मलीकयत में रहने पर भी वे लोग समवाय क्षेत्र के साथ संगति स्थापन करके चलेंगे जिससे आर्थिक समता बरकरार रहेंगे।

अगर कुटीर शिल्प को उचित ढंग से संघटित किया जाय नो गाँव के महिलाएँ भी उनके माध्यम से अर्थ-संस्थान कर पाएँगे। कुटीर उद्योगों को कच्चामाल आपूर्ति करने का दायित्व समवाय समितियों तथा स्थानीय सरकार के हाथों में रहेगा जिससे उनलोगों को कच्चा माल का अभाव नहीं होगा।

शिल्पोत्पादन के लिए काफी मात्रा में विद्युत शक्ति की आपूर्ति करने की व्यवस्थाएँ भी स्थानीय सरकार करेगी। एक सामाजिक-अर्थनैतिक युनिट को विद्युत उत्पादन में आत्म निर्भर होने का लक्ष्य लेकर चलना होगा। इसके लिए उस सरकार को

स्थानीय रूप से उत्पन्न या सहज उपलब्ध बिद्युत के उपर निर्भर करना होगा। वे सब हैं - जैसे, सौरशक्ति, बायोगैस, जलविद्युत, तापशक्ति, परमाणुशक्ति, वायुशक्ति, इलेक्ट्रोमेगनैटिक शक्ति तथा तरंग (समुद्र) शक्ति। "न-लाभ-न-क्षति" नीति के आधार पर विद्युत उत्पादन शिल्प परिचालित होगा क्योंकि वह एक मूल उद्योग है। इससे उत्पादन का खर्च कम के अन्दर रहेगा और साधारण मनुष्यों की क्रयक्षमता वृद्धि में सहायक होगी। जैसे, अगर बैटरी-उत्पादन कुटीर शिल्प के माध्यम से हो तो उन लोगों को न-लाभ-न-हानि के आधार पर विद्युत आपुर्त्ति की जाएगी। लेकिन बैटरी उत्पादकें उनके उत्पादित द्रव्यों को उचित मुनाफा लेकर बेच सकेंगे। यहाँ पर बैटरी उत्पादन में जो विजली व्यवहृत हुआ वह शिल्प-पण्य नहीं है कच्चामाल के रूप में मान्य होंगे। सामाजिक क्षेत्रों में गतिशीलता बरकरार रखने के लिए साधारण परिवहन, योगायोग व्यवस्था, स्कूल-कॉलेज-अस्पतालों में भी "न-लाभ-न-हानि" के आधार पर विद्युत आपूर्ति की जाएगी। स्थानीय सरकार

या राज्य सरकार का द्वायित्व होगा कि मूल शिल्प के रूप में विद्युत उत्पादन करके उसकी आपूर्ति करें।

मूल शिल्प से लेकर कुटीर शिल्प तक समस्त शिल्पोद्योग स्थानीय मनुष्यों की सहयोगिता के माध्यम से ही संघटित करना होगा। स्थानीय मनुष्य जैसे ये सब व्यष्टिगत उद्योगों का निर्माण कर सके इसके लिए भी उचित व्यवस्था करनी होगी। नौकरी में स्थानीय मनुष्यों को अग्राधिकार देकर उन सबों को काम में बहाल करके रखना पड़ेगा। इस नीति के फलस्वरूप मनुष्यों में उवृत्त श्रम या घाटति श्रम कहकर कुछ नहीं रहेगा। और अगर काम के लिए बाहर से अनेक लोग आभी जाएँ तो उनलोगों को स्थानीय अर्थनीति में कोई जगह न मिलेगा। अगर किसी अञ्चल में भासमान जनगोष्ठी मौजुद रहें तो आर्थिक बहिर्गमन को रोका नहीं

जा सकता है और इसी कारण से वहाँ की अर्थनीतिक उन्नति भी बाधाप्राप्त होती है।

विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था में व्यवसा-वाणिज्य इस प्रकार से सुसंघटित होगा जिससे प्रयोजनीय भोग्य सामग्रियाँ उपभोक्ता समवाय के माध्यम से वण्टित हो। आयकर कहकर कुछ नही रहना चाहिए, उसके बदले हर उत्पादित वस्तुओं पर कर लगाना होगा। पण्यद्रव्य एक सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल से दूसरे सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल में समवाय के माध्यम से ही निर्यात करना होगा।

प्राउट के विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में स्थानीय कच्चामाल की निर्यात का समर्थन नहीं किया जाता है। निर्दिष्ट कुछ परिस्थितियों में केवल तैयार माल (finished goods) निर्यात

किया जा सकता है। किसी एक सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल में सभी स्थानीय मनुष्यों के सभी प्रयोजनों की परिपूर्ति हो जाने पर उद्धृत्त भोग्यपण्य अन्य सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल में निर्यात की जा सकती है। लेकिन वह भी उसी प्रकार के सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल में निर्यात किया जाना चाहिए जहाँ पर वहाँ के लोगों के अपनी आवश्यकता के अनुसार उन सभी वस्तुओं के उत्पादन में तत्कालिक सुविधा नहीं है या संभावनाएँ नहीं है। इसके अलावे भी आयात-निर्यात के सभी प्रकार के आदान-प्रदान केकाम प्रत्यक्ष रूप से समवाय के माध्यम से ही निर्वाह होना चाहिए। निर्यात के पीछे मुनाफा कमाना मूल उद्देश्य नहीं रहेगा। किसी सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल में अगर मनुष्यों की सर्वनिम्न आवश्यकता की परिपूर्ति के यथेष्ट कच्चामाल न हो, तो उसे दूसरे सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल से आयात की जा सकती है। लेकिन उस स्थिति में अच्छी तरह से देख लेना पड़ेगा कि, कच्चामाल जिस संश्लिष्ट सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चल से

मंगाया जा रहा है वहाँ पर वह वस्तु उवृत्त है या नहीं। सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चलों में जब आर्थिक आत्म निर्भरता आ जाएगी तब अबाध व्यवसा-वाणिज्य को प्रात्साहित किया जाएगा क्योंकि उसके फलस्वरूप सामाजिक अर्थनैतिक अञ्चलों में उत्तरोत्तर आर्थिक उन्नयन सहजतर होगा। इस प्रकार से उनके बीच आर्थिक समता आती रहेगी जो बृहत्तर सामाजिक-अर्थनैतिक इकाई निर्माण में सहायक होंगे।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का और एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है, इसमें अर्थ हर समय सचल रहेगा। इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था हमेशा तेज गति से आगे बढ़ती जाएगी। अर्थ का मान उसकी चलमानता (circulation) के उपर निर्भर करता है। अर्थ जितना ही अधिक हस्तान्तरित होगा उसका आर्थिक मूल्य उतना ही बढ़ता जाएगा। और अर्थ का मूल्य जितना ही अधिक

होगा व्यष्टिगत तथा सामूहिक जीवन में उतनी ही स्वच्छन्दता आएगी तथा इसके माध्यम से सर्वात्मक कल्याण का पथ प्रशस्त होगा।

मनुष्यों की आर्थिक स्वच्छन्दता और उनके मानसिक तथा सांस्कृतिक विकाश एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से स्म्पर्कित हैं। व्यष्टिगत तथा सामूहिक जीवन में उन्नति सर्वात्मक कल्याण को ही सुनिश्चित करेंगे। अगर स्थानीय मनुष्य उनके आर्थिक कामकाज में निरापत्ता का अनुभव न करें तो वे लोग मानसिक रूप से दुर्बल हो जाएँगे। और यह अन्तर्निहित दुर्बलता उनके आर्थिक उन्नयन में बाधास्वरूप बनकर खड़े हो जाएँगे। इस प्रकार की जनगोष्ठी कायमी स्वार्थवादियों के हाथों में आसानी से आर्थिक, राजनैतिक तथा मानस अर्थनैतिक शोषण का शिकार बन जाएगा। इस अवाञ्छनीय परिस्थिति को मजबूत हाथों से

प्रतिरोध करना पड़ेगा। इसके लिए स्थानीय भाषा को व्यवहार में लाना होगा। इसका अर्थ हुआ प्रशासन, शिक्षाव्यवस्था, अर्थनीति तथा सांस्कृतिक कर्मधारा का माध्यम स्थानीय भाषा होगी। एक सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल के सभी सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रतिष्ठान तथा कार्यालयों में योगायोग के माध्यम के रूप में स्थानीय भाषा को ही व्यवहार में लाना पड़ेगा।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का चरम लक्ष्य है - समाज का सार्विक कल्याण। यही हुआ एक-बृहत्तर आदर्श तथा इसे सभी सामाजिक आर्थिक इकाइयों में प्रतिष्ठा करना होगा। इसी के फलस्वरूप वास्तविक आर्थिक स्वच्छन्दता आएगी तथा उसी के परिणति स्वरूप समाज के सभी सदस्यों का मानसाध्यात्मिक विकाश अधिक सुनिश्चित होंगे।

16 मार्च 1982, कलकत्ता

विषयसूची

अर्थनैतिक गणतन्त्र

वर्त्तमान विश्व के प्राय सभी देश किसी-न-किसी गणतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। एक तरफ मार्किन युक्तराष्ट्र, ब्रिटेन, फ्रान्स, कनाडा प्रभृति देशों में उदारनैतिक गणतन्त्र की प्रतिष्ठा है, दूसरी और (तदानीन्तन) रूस, चीन, वियतनाम तथा पूर्व यूरोप के देशों में समाजतान्त्रिक गणतन्त्र की प्रधानता है। आपात दृष्टि से उदारनैतिक गणतन्त्र की प्रधानता है। आपात दृष्टि से उदारनैतिक गणतन्त्रवाले देशों में साधारण मनुष्यों की अवस्था कम्युनिष्ट देशों की तुलना में अच्छी है। क्योंकि कम्युनिष्ठ देशों में पार्टी के कर्मकर्त्ताओं के द्वारा चढ़ाया गया

राजनैतिक तथा अर्थनैतिक व्यवस्था चल रहा है जिसका विषैला फल हुआ है, मनुष्यों का असहनीय कष्ट और दुर्दशा तथा चरम मानस-अर्थनैतिक शोषण (psycho-economic exploitation) । उदारनैतिक तथा समाजतान्त्रिक इस दो प्रकार के गणतन्त्रों को राजनैतिक गणतन्त्र कहना ही उचित होगा क्योंकि ये दोनों ही आर्थिक केन्द्रीयकरण नीति के अनुयायी हैं।

जिन सभी देशों में वर्त्तमान में गणतन्त्र प्रचलित है, वहाँ के जनसाधारण के साथ प्रतारणा करके उन्हें विश्वास दिलाया गया है कि, राजनीतिक गणतन्त्र से अच्छी व्यवस्था और कुछ हो ही नहीं सकता है। राजनैतिक गणतन्त्र में जनसाधारण का कागज-कलम में क्षेत्राधिकार देने पर भी उनकी अर्थनैतिक समता छीनली गयी है तथा जनसाधारण की क्रयक्षमता में बहुत बड़ी असमता आ गई है।

बेकार समस्याएँ, खाद्यों की कमी, दरिद्रता, तथा सामाजिक सुरक्षा के अभाव की सृष्टि हुई है।

भारत में जो गणतान्त्रिक व्यवस्था प्रचलित है वह एक राजनैतिक गणतन्त्र को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। और यह प्रमाणित सत्य है कि यह व्यवस्था वास्तव में आँखों को चोंधियाने वाले शोषणमूलक व्यवस्था है। भारत का संविधान तीन शोषक गोष्ठियों के द्वारा निर्मित है ब्रिटिश साम्राज्यवादी, देशी साम्राज्यवादी और भारतीय पूँजीपतियों के प्रतिनिधित्व करनेवाले शासक दल। इसीलिए भारतीय संविधान के सभी नीति-निर्देशनाओं में इन सुविधाभोगियों के कायमी स्वार्थ की रक्षा की गयी है। भारत के करोड़ों मनुष्य बहुत अधिक गरीब हैं और कुसंस्करग्रस्त तथा अशिक्षित हैं, और इसी का सुयोग लेकर शोषक तत्व वोट के समय आतंक सृष्टि करके शासनक्षमता का

विषयसूची

अपव्यवहार करके और जाल वोट इत्यादि के माध्यम से हरबार निर्वाचन जीतकर क्षमता हासिल कर रहा है। यह व्यवस्था गणतन्त्र के नाम पर एक प्रहसन के अलावा और कुछ भी नहीं है। एकबार कोई दल निर्वाचन जीतकर पाँच साल तक अबाध रूप से दुर्नीति तथा राजनैतिक अत्याचार चलाता रहता है। परवर्ती निर्वाचन में- राज्यस्तर या केन्द्रीय निर्वाचन का फल जो भी क्यों ना हो एक ही अवस्था का अनुवर्तन होता रहता है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही भारत में इस प्रकार राजनैतिक सुविधावाद चला आ रहा है। विगत पैंतीस साल (वर्तमान समय तक प्राय 68 साल) से राजनैतिक दिग्गजों ने एक ही चिड़ियाँ की बोली की पुनरावृत्ति करती आ रही है कि, युरोप या अन्यान्य शिल्पोन्नत देशों की भाँति आर्थिक विकास निश्चित करने के लिए भारत में गणतान्त्रिक व्यवस्था कायम रखने के

अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस युक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए वे लोग अमेरिका, ब्रिटेन, अथवा चीन या सोवियत रूस का दृष्टान्त खींचकर लाता है। राजनैतिक नेतागण निर्वाचन के समय निर्वाचकमण्डली को अपने अनुकूल में लाने के लिए इस प्रकार प्ररोचित करता है कि इसी के बाद देश में निरन्न तथा निपीड़ित जनसाधारण वास्तव आर्थिक उन्नयन का सुफल प्राप्त करेगा। लेकिन निर्वाचन पर्व समाप्त होने के तुरन्त बाद से ही राजनैतिक गणतन्त्र के नाम पर साधारण मनुष्यों पर अबाध शोषण तथा अत्याचार एक ही तरह चलता रहता है। इसी के साथ सामाजिक जीवन के विभिन्न दिशाओं में चरम अवहेलना तथा वंचनाएँ चलती रहती है। आज करोड़ों भारतीय नागरिक सर्वनिम्न प्रयोजन पूर्ति से वंचित हैं। एक तरफ वे लोग खाद्य-वस्त्र अवास-शिक्षा-चिकित्सा की व्यवस्था करने के लिए प्रति मुहुर्त्त तीव्र संग्राम करता जा रहा है, और दूसरी तरफ कुछ मुष्टिमेय सुविधाभोगी मनुष्य आसानी से प्राप्त वित्त संभार लेकर विलासिता के स्रोत में

अपने शरीर को बहा रहा है अर्थात विलासिता पूर्ण के स्त्रोत में अपने शरीर को बहा रहा है अर्थात विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करने में ही वे व्यस्त हैं।

गणतान्त्रिक व्यवस्था की त्रुटियों में एक प्रधान त्रुटि है, प्राप्त वयस्कों के वोटाधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार उम्र के उपर निर्भरशील है। एक निर्दिष्ट वयोप्राप्ति के बाद ही मान लिया जाता है कि निर्वाचन के समय वे लोग स्वयं सबकुछ ठीक-ठाक विचार-विश्लेषण करके उपयुक्त प्रार्थी को निर्वाचित करने में सक्षम हैं। लेकिन वास्तव चित्र है कि, इन प्राप्तवयस्कों में अधिकांश लोगों का निर्वाचन में कोई आग्रह तो है ही नही, उपरन्तु उनलोगों में से बहुत ही लोग समकालीन सामाजिक तथा अर्थनैतिक विषयों के सम्बन्ध में सचेतन भी नहीं है। अधिकांश क्षेत्र में ये लोग प्रार्थी विचार न करके अपने पसन्द के दल को ही वोट देता है। वे लोग

राजनीतिक नेताओं के प्रचार के कुट कौशल और झुठी वादों की बाढ़ से प्रभावित हो जाते हैं। लेकिन ऐसे भी लोग हैं जो लोग उस समय तक प्राप्तवयस्क नहीं हुई है फिर वोटाधिकार प्राप्त लोगों की तुलना में उपयुक्त प्रार्थी निर्वाचन में अधिक सक्षम हैं। इसलिए निर्दिष्ट उम्र सीमा ही वोटाधिकार का मापदण्ड नहीं हो सकता है।

कौन निर्वाचित होगा यह निर्भर करता है कि वह किस राजनैतिक दल के अन्तर्भुक्त है, तथा राजनैतिक दादागिरी और निर्वाचन में यथेष्ट खर्च करने की क्षमता के उपर। बहुत से क्षेत्रों में यह निर्भर करता है प्रार्थी के असामाजिक कामकाज के उपर। दुनिया भर में निर्वाचन प्रक्रिया में आर्धिक शक्ति का ही आधिपत्य है। प्राय सभी क्षेत्रों में ही आर्थिक क्षमता सम्पन्न तथा बाहुबलियों का ही एक तरफा अधिकार है। जिन सभी देशों में वोट देना जरुरी

नहीं है वहाँ पर जनसाधारण का बहुत कम हिस्सा ही निर्वाचन में अंश ग्रहण करते हैं।

गणतन्त्र सफल होने की पूर्वशर्तें हैं- नैतिकता, शिक्षा का प्रसार और सामाजिक-अर्थनैतिक-राजनैतिक सचेतनता। जो लोग नेतृत्त्व प्रदान करेंगे उनका नैतिक मान अवश्य ही बहुत ऊँचा होना पड़ेगा ? नहीं तो सामाजिक कल्याण में बाधा पहुँचना जरुरी है। लेकिन आज के अधिकांश गणतान्त्रिक देशों में दुर्नीतिग्रस्त तथा कायमी स्वार्थवादी लोग ही निर्वाचित होते हैं। ऐसा है कि कुख्यात खुनी तथा डकैत-माफिया निर्वाचन जीतकर सरकार में अंश ग्रहण करते हैं।

दुनिया के प्राय सभी देशों में ही जनसाधारण में राजनैतिक सचेतनता का अभाव है। चालाक और चतुर राजनीतिविद लोग

इस मामले को काफी अच्छी तरह से समझते हैं। इसलिए वे लोग आसानी से जनसाधारण को विभ्रान्त करके क्षमता हासिल कर लेते हैं। वे लोग घुस, छप्पाभोट, बुथ कब्जा, वोट खरीदना इन सभी मामलों में सिद्धहस्त होते है। और इसी प्रकार से ये लोग प्राय विना प्रतिद्वन्धिता के निर्वाचन में जीत हासिल कर लेते हैं। यही कारण है कि आज समाज में नैतिकता का मान बहुत ही नीचे चला गया है। सत् तथा योग्य व्यष्टियों का कोई स्थान ही नहीं हैं। नीतिवादियो को जीतने का कोई अवसर ही नही रहता है। क्योंकि नीतिहीन लोग पैसों के बल पर निर्वाचन-विधि को अंगुठा दिखाकर, भीति प्रदर्शन (डरा-धमकाकर) और जरूरत पड़ने पर पाशविक शक्ति को काम में लगाकर जीत को छीन लेता है। आज की गणतान्त्रिक व्यवस्था में समस्त प्रकार अनैतिकता और भ्रष्टाचार का काफी अवसर है। इस प्रकार से समाज का अस्तित्व ही विकृत तथा अर्थहीन हो जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था में स्वमावतः ही केवल पूँजीपतियों का ही आधिपत्य बरकरार रहता

है। शासन व्यवस्था नीतिहीनता और पापाचारिता के कब्जे में चला जाता है।

यह असार गणतन्त्र कठपुतली नाच के साथ तुलनीय है जहाँ पर मुष्टिमेय क्षमतालोभी राजनीतिविद लोग पर्दे की आड़ में चाबी कसते रहते हैं। उदारनैतिक गणतन्त्र में पूँजीपतियाँ विभिन्न गणमाध्यम से जैसे रेडियो, टेलविशन, पत्र-पत्रिकाएँ इत्यादि को हथिया कर अपने असदुददेश्यों को रूपायित करते हैं, और समाजतान्त्रिक गणतन्त्र में आमलातान्त्रिकता देश को ध्वंस के कगार पर पहुँचा देता है। दोनों ही प्रकार के गणतान्त्रिक व्यवस्था में समाज के इमानदार तथा योग्य नेताओं को आगे बढ़ने का कोई अवसर ही प्राप्त नहीं होता है। इसीलिए जनसाधारण को अर्थनैतिक स्वाधीनता प्राप्ति सुदुरपराहत ही रह जाता है।

विषयसूची

इसलिए दुनिया में राजनैतिक गणतन्त्र एक धोखेबाजी में परिणत हो चुका है। इस व्यवस्था में देश की श्रीवृद्धि, अथनैतिक-सामाजिक ममता, शान्ति और सुस्थिति के सम्पर्क में केवल स्तोक वाक्य या बड़ी-बड़ी वादें ही की जाती है। लेकिन वास्तव में यह व्यवस्था केवल अपराधियों की संख्या ही बढ़ाती जाती है। शोषण को बढ़ावा देती है और जन-साधारण को चरम दुःख-दुर्दशा के बीच धकेल देता है।

राजनैतिक गणतन्त्र का दिन समाप्ति की ओर है। प्राउट की माँग है - राजनीतिक गणतन्त्र नहीं, अर्थनैतिक गणतन्त्र की प्रतिष्ठा। प्राउट के अनुसार गणतन्त्र की सफलता का वास्तविक पथ है कि आर्थिक क्षमता जनसाधारण के हाथों में न्यस्त हो और उनका सर्वनिम्न प्रयोजन पूर्ति सुनिश्चित हो। जनसाधारण की अर्थनैतिक मुक्ति को वास्तवायित करने का सही एकमात्र उपाय है।

प्राउट का स्लोगन है- राजनीतिक गणतन्त्र की धोखेबाजी नहीं, हमलोग चाहते है अर्थनैतिक गणतन्त्र, शोषणमुक्त समाज।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण :

अर्थनैतिक गणतन्त्र (Economic democracy) में आर्थिक और राजनैतिक क्षमता दो भागों में विभाजित रहता है। अर्थात प्राउट की नीति है राजनैतिक केन्द्रीकरण लेकिन अर्थनैतिक विकेन्द्रीकरण राजनैतिक क्षमता नीतिवादियों के हाथों में रहेगा लेकिन अर्थनैतिक क्षमता न्यस्त रहेगा जनसाधारण के हाथों में। शासन व्यवस्था का मूल लक्ष्य है जनसाधारण की आर्थिक प्रयोजनपूर्ति के रास्ते में समस्त बाधाएँ और असुविधाओं को हटाना। अर्थनैतिक गणतन्त्र का सार्वजनीन लक्ष्य है समाज के सभी स्तरों पर मनुष्यों की न्युनतम प्रयोजन-पूर्ति का गैरण्टी देना।

विषयसूची

पृथ्वी के सभी अञ्चलों के लिए ही प्रकृति ने अकृपण हाथों से अठेल प्राकृतिक सम्पद ढाल दिया है। लेकिन समाज के सभी सदस्यों के बीच यह सम्पद संभार न्याय संगत रूप से वण्टन करने की कोई नीति-निर्देशन प्रकृति ने दान नहीं किया है। समाज के ज्ञान बुद्धि सम्पन्न मनुष्यों को ही इस महान दायित्त्व का पालन करना होगा। जो लोग दुर्नीतिग्रस्त हैं तथा स्वार्थपरता और नीच मानसिकता के द्वारा परिचालित हैं वे लोग इन सभी सम्पदों को समग्र समाज कल्याण के कामों में तो लगाता ही नहीं है, वल्कि वे लोग अपना क्षुद्र स्वार्थ या गोष्ठी के क्षुद्र स्वार्थसिद्धि के लिए ही सम्पदों का अपव्यवहार करता है। जागतिक सम्पद सीमित हैं, लेकिन मनुष्यों की इच्छाएँ असीमित हैं। इसलिए समाज के सभी मनुष्यों को शान्ति या समृद्धि देने के लिए वहीं व्यवस्था काम्य है जो सम्पद का सर्वाधिक उपयोग (maximum utilisation) और न्यायसंगत वण्टन (rational distribution) को सुनिश्चित करना

होगा। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मनुष्यों को नीतिवाद में प्रतिष्ठित होना ही पड़ेगा, और समाज में नैतिकता के विकाश के पथ कों सुगम करना ही पड़ेगा। १९

आर्थिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ हुआ कि अत्यावश्यक वस्तुओं की आपुर्ति के लिए (for conjumption) उत्पादन करना पड़ेगा, लाभके लिए नहीं (Not for profit) । पूँजीवादी व्यवस्था में कभी भी विकेन्द्रीकरण संभव नहीं है क्योंकि वहाँ पर उत्पादन का लक्ष्य होता है अधिक से अधिक मुनाफा कमाना। पूँजीवादी लोग सवसे कम खर्च में उत्पादन करके सबसे अधिक मुनाफा कमाना चाहता है। वे लोग उत्पादन का केन्द्रीकरण चाहता है जिसकी अवश्यम्भावी परिणति है आञ्चलिक विषमता उत्पन्न करना। प्राउट की विकेन्द्रित अर्थनीति में उत्पादन भोग के लिए होगा जिससे सबकी न्युनतम प्रयीजन-पूर्ति सुनिश्चित हो। इस

व्यवस्था में देश का सभी अञ्चल उनकी आर्थिक संभावनाओं का पूर्ण सदुपयोग कर सकेगा। इसके फलस्वरूप भासमान जनगोष्ठी संक्रान्त समस्याएँ या शहराञ्चलों में जनसंख्या की अधिक दवाब की सृष्टि होने की समस्याएँ उत्पन्न नहीं होगी।

कोई देश शिल्प के साथ-साथ अन्यान्य क्षेत्रों में सर्वाधिक उन्नति विधान न कर सकने पर आर्थिक रूप से सम्पन्न होना उनके लिए असंभव होगा। अगर कृषि (खेती) में नियुक्त लोगों का प्रतिशत तीस से चालीस के अधिक हों तो कृषि पर अत्यधिक दवाब बना रहेगा। वह देश आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं हो पाएगा। उस देश में सामंजस्यपूर्ण या विकेन्द्रित आर्थिक उन्नयन सम्मवपर नहीं होगा। इस क्षेत्र में भारतवर्ष एक उपयुक्त दृष्टान्त है। भारत में 75 प्रतिशत लोग जीवन-धारण के लिए खेती पर निर्भरशील है।

कनाडा या ओस्ट्रलिया जैसे देश में एक विपुल संख्यक जनसाधारण कृषिपण्यों के उत्पादन में नियुक्त हैं। इसलिए वे कृषि उन्नत देश होते हुए भी शिल्पोन्नत देशों के उपर निर्भरशील हैं। क्योंकि वेलोग स्वयं शिल्प में अनुन्नत हैं। उदाहरणस्वरूप कनाडा अमेरिका के उपर और अस्ट्रेलिया इंगलैंड के उपर चिराचरित रूप से निर्भरशील हैं। भारत में जब तक 75 प्रतिशत लोग खेती पर नियुक्त रहेंगे तब तक यहाँ के मनुष्यों की आर्थिक दुर्दशा का अवसान नहीं होगा। इस प्रकार समस्याओं में ग्रसित कोई भी देश अभ्यन्तरीण या आन्तर्जातिक क्षेत्रों में उनके कर्तव्यों का सम्पादन करने में काफी असुविधाओं के सम्मुखीन होंगे। जनसाधारण की क्रयक्षमता घटती ही जाएगी और आर्थिक विषमता बढ़ती ही जाएगी। समग्र देश का राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवेश कलुषित होता ही जाएगा। भारतवर्ष इन सभी कुफलों से जर्जरित रहने का सुस्पष्ट उदाहरण हैं।

इसलिए आर्थिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह नहीं है कि देश के संख्यागरिष्ठ जनसाधारण जिन्दा रहने के लिए खेती के उपर सम्पूर्ण निर्भरशील रहेगा या अन्नान्य क्षेत्रों में अनुन्नत रह जाएगा। वल्कि वह देश प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र में अवश्य ही सर्वाधिक उन्नत होने की कोशिश करेंगे, और वे लोग सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक विकेन्द्रीकरण करने का प्रयास करेंगे।

पृथ्वी के सभी गणतान्त्रिक देशों में आर्थिक क्षमता मुष्टिमेय कुछ लोगों के हाथों में सीमित है। उदारनैतिक गणतन्त्र के देशों में आर्थिक क्षमता अल्प कुछ संख्यक पूँजीपतियों के एकचटिया अधिकार में है, और समाजतान्त्रिक देशों में वह क्षमता पार्टीतन्त्र के हाथों में सीमित है। उपर्युक्त हर क्षेत्र में ही इने गिने कुछ संख्यक मनुष्य समग्र समाज का आर्थिक कल्याण को लेकर जुआ खेल रहा है। जनसाधारण के हाथों में क्षमता न्यस्त होने पर

इन सभी लोगों की दादागिरि बन्ध होगा और राजनीतिक दलें भी हमेशा के लिए निश्चिह्न हो जाऐंगे।

मनुष्य को राजनैतिक गणतन्त्र या आर्थिक गणतन्त्र में से किसी एक को चुन लेना पड़ेगा। अर्थात् उनकी आर्थिक व्यवस्था का आधार केन्द्रित अर्थनीति या विकेन्द्रित अर्थनीति होगा। किसको चुन लेना युक्ति संगत होगा ? राजनीतिक गणतन्त्र जनसाधारण की आशा आकांक्षाओं की पूर्ति करने में या एक शक्तिशाली तथा स्वच्छ समाज प्रतिष्ठा करने में व्र्थ होगा। एकमात्र आर्थिक गणतन्त्र की प्रतिष्ठा से स्वच्छ समाज की प्रतिष्ठा होगी।

अर्थनैतिक गणतन्त्र के लिए क्या-क्या जरूरत होगी :

विषयसूची

अर्थनैतिक गणतन्त्र के लिए पहली आवश्यकता है कि एक विशेष युग में सब की न्यूनतम प्रयोजन पूर्ति (जैसे-खाद्य-वस्त्र-वासस्थान-चिकित्सा-शिक्षा) को सुनिश्चित करना। आवश्यकता की पूर्ति सुलभ और सहज होने पर समाज का सार्विक कल्याण भी वास्तवायित होगा।

दूसरी आवश्यकता है कि प्रत्येक की क्रयक्षमता की क्रमवृद्धि सुनिश्चित करना होगा। अर्थनैतिक गणतन्त्र में आर्थिक क्षमता स्थानीय जनजाधारण के हाथों में रहते हैं। फलस्वरूप किसी स्थान की आर्थिक श्रीवृद्धि के काम में वहीं के कच्चामाल (raw materials) व्यवहृत होंगे। इसका अर्थ हुआ कि किसी एक सामाजिक-अर्थनैतिक अञ्चल में उत्पादित कच्चामाल दूसरे अञ्चल में स्थानान्तरित नहीं होगा। इस के फलस्वरूप जहाँ पर

कच्चामाल उत्पादित होता है वहीं पर शिल्प केन्द्र का निर्माण होगा। इस प्रकार स्थानीय रूप से प्राप्त कच्चामाल के उपर आधृत हो कर शिल्प का निर्माण होगा जिससे स्थानीय सभी मनुष्यों की कर्मनियुक्ति (full employment) निश्चित होगा।

आर्थिक गणतन्त्र की तीसरी आवश्यकता है कि अर्थनैतिक सिद्धान्त ग्रहण करने की क्षमता स्थानीय जनसाधारण के हाथों में रखना होगा। आर्थिक मुक्ति सभी व्यष्टियों का जन्मगत अधिकार है। स्थानीय जनसाधारण के हाथों में आर्थिक क्षमता न्यस्त रहने पर ही इस प्रकार आर्थिक मुक्ति संभव पर होगी। अर्थनैतिक गणतन्त्र में स्थानीय मनुष्यों को आर्थिक सिद्धान्त ग्रहण की क्षमता तो रहेगी ही उसके साथ-साथ स्थानीय प्रयोजन के अनुसार वस्तुओं के उत्पादन तथा सभी कृषिपण्यों और शिल्पपण्यों के वण्टन की क्षमता भी उन्हीं लोगों के हाथों में रहेगी।

चतुर्थ आवश्यकता है स्थानीय अर्थनीति में बहिरागतों का कोई अधिकार नहीं रहेगा। स्थानीय अञ्चल से अर्थ की बहिर्गमन रोकना ही पड़ेगा। इसके लिए यह भी देखना होगा कि स्थानीय अञ्चल के आर्थिक काम काजों में बहिरागत या भासमान जनगोष्ठी का हस्तक्षेप न हो सके।

अर्थनैतिक गणतन्त्र को सफलीभूत करने के लिए मनुष्यों की आर्थिक अवस्था का उत्तरोत्तर उन्नति साधन करना होगा। इसी के फलस्वरूप समग्र मानवता की आध्यात्मिक विमुक्ति की बृहत्तर संभावनाएँ तैयार होंगे।

अन्त में यह भी याद रखना पड़ेगा कि केवल मात्र मनुष्यों की आर्थिक विमुक्ति के लिए ही अर्थनैतिक गणतन्त्र की

वश्यकता है। ऐसा नहीं, वनस्पति जगत् तथा जीवजगत् और पशुजगत् के सार्वजनिक कल्याण के लिए भी इसकी जरूरत है। मनुष्य जगत् तथा मनुष्येतर जगत् इन दोनों को लेकर ही जो महत्तम मूल्यबोध है उसकी स्वीकृति के लिए आर्थिक गणतन्त्र की नीतियाँ पथ और पन्था निर्धारण करेंगे, जिसके फलस्वरूप समाज की स्वच्छन्द प्रगति संभवपर होगी।

जून, 1986, कलकत्ता

मादक द्रव्य

'गुड़ोत्पन्न' शब्द का अर्थ है 'शराब' या खमीर किया हुआ (fermented) गुड़ या झोलागुड़ जिससे शराब तैयार होती है। तुमलोग चीनी मिल के बगल से गुजरने के समय जो विशेष प्रकार गुड़ का गन्ध पाते हो अधिकांश क्षेत्रों में वह झोलागुड़ ही होता है। इस गुड़ से सरकार द्वारा निर्दिष्ट डिस्टिलरियों में शराब बनाया जाता है। मृतसंजीवनी सुरा तथा मृतसंजीवनी सुधा भी इसी प्रकार डिस्टलारी (चुलाई खाना) से तैयार होता है। बचपन में देखा करता था कि उत्तर विहार तथा उत्तर प्रदेश के अधिकांश चीनी मिलों के निकट एक प्रकार डिष्टलरी हुआ करता था। झोलागुड़ के खाद्यगत व्यवहार की उपेक्षा करके शराब का निर्माण करना किसी भी अवस्था में वाञ्छनीय नहीं हैं. लेकिन दवाई के रूप में भी शराब

का व्यवहार होता है। इसीलिए शराब का निर्माण करना ही पड़ता है।

चावल की खमीर बनाकर जो अमानी बनाया जाता है वह भी एक प्रकार कम नशा करनेवाली खमीरीकृत शराब (fermented wine) ही है। इसकी नशा ताड़ी या शराब से बहुत कम है। लेकिन इसमें नशा के साथ-साथ औषधीय गुण भी होता है। यह नींद ला देती है। अनपच होने पर पाचन क्रिया में भी मदद करता है। गर्भवती नारियों की अत्यधिक दुर्बलता में भी कुछ काम करता है। (fermented wine) या खमीरीकृत शराब-ताड़ी भी किडनी के अनियमित कार्य-कारिता में भी कुछ फल देता है। तलछटीकृत (अवसादित) खमीरीकृत शराब को सिरका या भिनिगर कहा जाता है जिस में नशा का गुण नहीं हैं, वल्कि कई सात्त्विक गुण है। तलछटीकृत तथा खमीरीकृत शराब की तलछटी

(sediment) को गाद या yeast कहा जाता है। बेकारी शिल्प में इसकी विशेष जरूरत होती है। प्रसुति की मृत्युकालीन अवस्था आ जाने पर द्राक्षारिष्ट के साथ गुडुचि का चीनी पीलाने पर मृत्यु की सम्भावनाएँ भी कटने पर कट जा सकता है। द्राक्षारिष्ट के अभाव में मृतसंजीवनी सुरा से भी काम चल सकता है।

हाँ, हमारे देश की सबसे सस्ती शराब चावल से बनी शराब होने पर भी जौ की माँड़ से बनी शराब और भी सस्ती होगी। चावल की शराब बंगाल के ग्राम्य-जीवन को काफी क्षतिग्रस्त की है। आदिवासी तथा अनुन्नत समाज के मनुष्य इसी चावल की शराब की नशा में बहुत बार सर्वस्वान्त हो जाते हैं, घर में झगड़ा झंझट करते हैं, पारिवारिक शान्ति को नष्ट करके अन्त तक स्वयं भी रास्ते की भिखारी बन जाते हैं। इसीलिए मद्य-निर्माण या

मद्यपान पर केवल राष्ट्रिक नियन्त्रण रहने से ही नहीं चलेगा। कठोर सामाजिक नियन्त्रण का भी जरुरत है। इस मामले पर राष्ट्र तथा समाज को हाथ से हाथ मिलाकर काम करना होगा। तम्बाकु का निकोटिन विष शरीर के विभिन्न अंश में कैंसर का घाव बना देता है, और शराब लीभर को खत्म कर देती है। अफीम (opium) कर्मशक्ति को नष्ट कर देता है। इस समय आदमी बैठकर झपकी लेना पसन्द करता है। सिद्धि (heap, भाँग) बुद्धि तथा बोधशक्ति को नष्ट कर देती है। इसीलिए ये सभी कोई अच्छा नहीं है। धर्म के नाम पर हो या अन्य कोई बहाने में ही हो शराब का व्यवहार सीमायित होना चाहिए। दवाई के रूप में चिकित्सार्थ छोड़कर तथा चिकित्सक की अनुमति छोड़कर किसी को शराब नहीं पीना चाहिए। चिकित्सकों का भी उचित होगा कि किसी चिकित्सक के लिखित अनुमति के आधार पर ही काम करना चाहिए।

जिस छात्र में जितना भविष्यत् छिपा रहता है मद्यपान से उसका बीस प्रतिशत नष्ट हो जाता है। अत्यधिक चञ्चलता और उसके बाद अल्प चञ्चलता के फलस्वरूप जड़ता आ जाती है, कम उम्र में पौरूष तथा तेजस्विता घट जाती है। स्नायु-कोष (Nerve-cell) को पूरी तरह काम में नहीं लगाया जा सकता है। पूजा के अंग के रूप में भी जो लोग शराब का व्यवहार करते हैं, उन्हें भी अनुरोध करूँगा कि उसके लिए अगर अन्य कोई विकल्प स्वीकृत व्यवस्था अगर रहे तो वे लोग उसका आश्रय लें। जेसे कुछ तान्त्रिक प्रक्रिया में शराब के बदले काँसा के बरतन में सुखे नारियल का पानी बहुत देर तक रख देने के बाद उस पानी का व्यवहार करने से भी काम चलेगा। उस प्रकार के क्षेत्र में वे लोग शराब का व्यवहार न करके सुखा नारियल के पानी का व्यवहार करें।

मनुष्य अपनी बुद्धि तथा बोधि को प्रखरतर करने के लिए तथा उसकी विस्तार करने के लिए साधना करता है। इसलिए शराब मनुष्य की सर्वाधिक उन्नति में बाधक है। शराब का एक अंश शरीर के अभ्यन्तरस्थ स्नायुकोष, स्नायुतन्तु तथा ग्रन्थि-उपग्रन्थियों को क्षतिग्रस्त करने के काम में लग जाते है, दूसरा अंश पसीने के साथ निकल जाता है, एक अंश पैखाने के साथ निकल जाता है तथा बाकी अंश पेशाब के साथ निकल जाता है। तम्बाकु का निकोटिन नामक विष का कार्यधारा भी कुछ हद तक इसी प्रकार है, और यह भी उसी तरह से शरीर को हानि पहुँचाता है और शरीर से निकल जाता है। इसीलिए उस प्रकार के नशाग्रस्त्र आदमियों का मल-मूत्र तथा पसीना उस प्रकार नशा के दुर्गन्ध से दुषित होता है। कोई मद्यपायी या निकोटिन-विष व्यवहार करनेवाले मनुष्य कमरा में प्रवेश करते ही समझ मैं आ जाता है कि वह आदमी नशाग्रस्त हैं। जो लोग हुक्का में तम्बाकू सेवन करते है उस हुक्का के पानी में तम्बाकु की धुआँ का कुछ अंश निषिक्त हो

जाता है। इसलिए धुआँ का बाकी अंश शरीर में कम हानि करता है। लेकिन थोड़ा कम करता है, मतलब यह नहीं है कि एकदम नहीं करता है, हानि तो करता ही है। तुमलोगों ने हुक्का का पानी देखा होगा, वह किस प्रकार काला-पीला रंग का हो जाता है। जो लोग बिड़ी-सिगरेट पीते है, खास करके जो लोग, सिगरेट पीते हैं उनके शरीर के अन्दर सिगरेट की धुआँ से उस प्रकार लाल जैसे दाग लग जाता है। बहुत से मामले में लांस (Lungs) कार्बोनेटेड हो जाता है, यानी फेफड़ें में उस प्रकार का दाग लग जाता है। स्वाभाविक नियम में उस प्रकार के फेंफड़ों में कर्कट रोग के आक्रमण की संभावनाएँ रह जाती है।

जर्दा, खैनी में विशेष करके खैनी में तम्बाकु का पत्ता जब जीभपर गिरता है तब जीभ में एक विरूप प्रतिक्रिया होती है। इसीलिए उस समय लोग बार-बार थूकता है। इसी से समझ में आ

जाता है कि वह वस्तु स्वास्थविज्ञान विरोधी है। पान के साथ जो जर्दा खाया जाता है वह भी तम्बाकु पत्ता का ही बहुधा प्रसारित रूप है। मनुष्य नशामुक्त रहे, शरीर तथा मन में सर्वतोभाव से सर्वतोप्रयास में उर्द्धलोक की ओर आगे बढ़ते जाय, यही वाञ्छनीय है।

चाय-कफि-कोको में नशा का परिमाण बहुत ही कम है. इन सबों में कोको में कुछ पुष्टिमूल्य भी है। चाय का पुष्टिमूल्य कम है। सामयिक उद्दीपना लाती है। लेकिन नींद घटा देती है। परिपाक (पाचन) शक्ति घटा देती है। कफि भी सामयिक उद्दीपना लाता है, नींद घटाता है, पाचन शक्ति घटाता है। इसमें नशा की मात्रा चाय से भी अधिक है, पुष्टिमूल्य भी चाय से कुछ अधिक है। अधिक मात्रा में चाय पीने का फल विषवत् होता है। तैयार चाय को दूसरी बार उबाल कर या गरम करके पीना भी अतिमात्रा में विषवत् फल

देता है। चाय में जो जहर है, उसका नाम है 'टैनिक एसिड' (Tanic acid)। प्राचीन भारतीय समाज में लोग चाय नहीं पीते थे। साधु-सन्यासीगण दुर्गम गिरिकन्दरों को पार करने के समय सामयिक रूप से चाय पीते थे या चाय के पत्ते के कुचलकर चबा कर खाते थे।

शब्दचयनिका

न्युक्लीयर विप्लव

विषयसूची

समाज उसी को कहा जाएगा, जहाँ पर असंख्य समान्तराल मानसिक तरंग संग्रथित हो रहा है तथा जिसकी उद्भूति सभी के मिलित रूप में ऐक्यमत्य के पथ पर चलने की मानसिकता से हुई है। मनुष्य समाज का गौरव वहीं पर निहित है जहाँ पर मनुष्य महिमान्वित आदर्श में उद्बुद्ध होकर एक विश्वैकतावादी युथबद्ध संरचना का सर्जन किया है।

व्यष्टि तथा समष्टि दोनों जीवन के चलने के क्षेत्र में गतिमयता तथा स्थितिशीलता अंगागी भाव से अवस्थान करते हैं। समाज निरन्तर भाव से चलता जा रहा है रूककर रहने का अर्थ हुआ मृत्यु। इसीलिए सामाजिक गति का अर्थ हुआ सक्रिय प्रचेष्टा जो हर समय ही स्थानुत्व (staticity) को ध्वंस करके गति के बीच में द्रुति का संचार करता चलता है। इस चलमानता की

विशिष्टता है कि यह हर समय ही छन्दायित तथा संकोच विकाशी होता है, कभी एक रैखिक नहीं होता है।

सभी युगों में ही व्यष्टिगत तथा समष्टिगत जीवन हमेशा ही देश-काल-पात्र के परिवर्तन के साथ परिवर्त्तित होता आ रहा है। तूलनामूलक रूप से सामाजिक, अर्थनैतिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन की धारा में विगत 500 से 600 साल से विंश शताब्दी में बहुत अधिक द्रुति संचारित हुई है। भविष्य में समाज में यह परिवर्तन और भी द्रुतशील गति से होगा।

समाज परिवर्तन का अन्यतम वैज्ञानिक पद्धति हुआ 'विप्लव' संस्कृत शब्द विप्लव की उत्पत्ति हुई है - वि-प्लु + अल प्रत्यय जोड़ कर। हर विप्लव ही व्यष्टि जीवन तथा समष्टि जीवन में

आमूल परिवर्तन लेकर आता है तथा व्यष्टि और सामूहिक मनस्तत्त्व में सुदूरप्रसारी परिवर्तन लाता है।

समाज की गति को त्वरान्वित करने के लिए तीव्र शक्ति प्रयोग करके ही विप्लव घटाना चाहिए। इसलिए प्राउट के विचार से "तीव्र शक्ति सम्पातेन गतिबर्द्धनं विप्लवः । अर्थात् तीव्र शक्ति प्रयोग करके समाज-गति में द्रुति का संचार करना ही विप्लव है। अल्प समय में तीव्र शक्ति प्रयोग के माध्यमसे शोषण को उच्छेद करके सामूहिक मनस्तत्व में परिवर्तन लाकर चलनेवाले युग को हटाकर उसके परवर्ती युग ले आने का नाम ही विप्लव है। लेकिन तीव्र शक्ति सम्पात करने के बाद समाज की चक्का अगर विपरीत दिशा में घुमने लगे तो उसे प्रतिविप्लव कहा जाएगा। प्रतिविप्लव में समाज पूर्ववर्ती युग में ही लोट जाता है। प्रतिविप्लव की संज्ञा देते हुए प्राउट ने कहा है "तीव्र शक्ति सम्पातेन विपरीत धारायां

प्रतिविप्लवः"। अर्थात् तीव्रशक्ति प्रयोग करके समाज चक्र को विपरीत धारा में घुमा देना ही प्रतिविप्लव है।

विप्लव का मुख्य उद्देश्य हुआ समाज के सामुहिक मनस्तत्त्व की स्थितिशीलता तथा स्थानुत्व के बाधाओं को अतिक्रम करके एक युग से अन्य युग में समाज को प्रतिष्ठित करना। समाज चक्र सर्वदा अप्रतिरोधनीय रूप से ही चलता रहता है। फिर भी जो लोग सामुहिक जीवन का कल्याण चाहते हैं वे लोग शोषण के विरूद्ध में निरलस रूप में संग्राम में लीन होते हैं जिससे समाज गतिके बीच में द्रुति लाकर सब मिलित रूप में एक ही भावना से चल सके।

समाज जीवन में मनस्तात्त्विक भारसाम्य के माध्यम से जब वैप्लविक परिवर्तन घटता है तब उस परिवर्तन के साथ कुछ

विषय अविच्छेद्य रूप से अंगीभूत रह जाता है। वे सब है, शोषण के विरुद्ध गणरोष, स्थितावस्था के विरूद्ध विद्रोह, अशुभ शक्तिके विरूद्ध शुभशक्ति का संग्राम तथा नवीन सामूहिक मनस्तत्व को वरण कर लेने का गण-प्रयास।

मानव सभ्यता आज एक जटिल युग सन्धिक्षण पर आ पहुँची है। मनुष्यों के द्वारा मनुष्यों का शोषण एक विपत्ति के संकेत को वहन करके ला रहा है। अतीत में भी इस प्रकार संकटमय मुहुर्त्त में जब शोषण चरम स्तर पहुँचा है तभी एक युगपुरुष का आविर्भाव हुआ है, समाज में व्याप्त सभी प्रकार के समस्याओं के अतिक्रम करने का पथ दिखाया है। वर्त्तमान में भी ऐसे एक महान नेतृत्व की निर्देशना की जरुरत है जिन्होंने सर्वात्मक आदर्श के माध्यम से मानव समाज को उनके ध्वंसात्मक अवस्था से बचा कर गौरवाण्वित भविष्य में प्रतिष्ठा करेंगे। आज के समय में उसी

विषयसूची

प्रकार एक ऐतिहासिक महान पुरूष का आगमन इतिहास रचना के क्षेत्र में अत्यावश्यक है।

समाज चक्र :- समाज चक्र के परिघुर्णन में चार प्रकार के सामुहिक मनस्तत्वों में से किसी एक वर्ण की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। ये मनस्तत्त्व हैं - शूद्र, क्षत्रिय, विप्र तथा वैश्य। इसके साथ जात-पात का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एकान्त रूप से ही गुण तथा कर्म निबन्धन-मानसिक आधारिक संरचना पर निर्भरशील है। शुद्र वही है जो लोग जड़-जागतिक भोग मानसिकता से पुष्ट हैं। वे लोग उनके मानसिक शक्ति के द्वारा किसी भी रूप में उस जड़-जागतिक मानसिकता के उपर उठ ही नहीं सकते हैं। दैहिक शक्ति ही उनके दिन गुजारने का एकमात्र सम्बल है। क्षत्रियगण जड़-जागतिक चेतना को भौत-मानसिक चेतना के द्वारा नियन्त्रण में रखता है। विप्रवर्ग उनकी मानसिक

शक्ति को काम में लगाकर सबकुछ अपने नियन्त्रण में रखते हैं। शारीरिक शक्ति तथा वीरत्व के द्वारा के क्षत्रियवर्ग सामाजिक निरापत्ता को अपने कब्जे में रखते हैं। दुसरी और विप्रवर्ग उनकी बुद्धि के उपर ही अधिक निर्भरशील है। इतिहास के गहराई में पर्यवेक्षण करने पर यह सच्चाई पकड़ में आता है कि उनकी बुद्धि पर विश्वास रख कर ही क्षत्रियों के मन में श्रद्धा तथा अधीनस्थ रहने की मानसिकता तैयार कर देते हैं। और इसी प्रकार से विप्रवर्ग क्षत्रियों की शारीरिक शक्ति तथा क्षमता को नियन्त्रण में रखता है। वैश्य मनस्तत्व कुछ व्यतिक्रम है। वैश्य वर्ग साधारणतः भौतिक वस्तुओं को उपभोग करने के प्रति अधिक आग्रहशील नहीं है वल्कि भौतिक सम्पदों को अपने कब्जे में लाकर अधिक आनन्द पाते हैं।

आदिम समाज शूद्र मानसिकता के द्वारा परिचालित होता था। धीरे धीरे समाज क्षत्रिय मानसिकता के द्वारा पुष्ट तथा क्षत्रियवर्ग ने ही समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की। इस युग को राजा या क्षत्रिय युग कहा जाता है। क्षत्रिय युग में फिर परिवर्तन आया विप्रयुग के द्वारा - वह था बुद्धिजीवियों तथा पुरोहितों का युग। इसी के बाद आया वैश्य युग। वैश्य युग के साथ पहले के दो युगों अन्तर यही था कि वैश्य कदाचित शासन क्षमता में आते है। वे लोग क्षत्रिय तथा विप्रों को क्षमता में रखकर समाज को नियन्त्रण करता है- नियन्त्रण करता हैं समाज की अर्थनीति, राजनीति सब कुछ। साधारणतः क्षत्रिय तथा विप्रयुग में शारीरिक तथा मानसिक यन्त्रणाएँ वैश्य युग की तुलना में कम होती है क्योंकि वहाँ पर गरीबी, वञ्चनाएँ तथा शोषण बहुत अधिक होता है।

एक युग से अन्य युग का परिवर्तन स्वभाविक रूप से हो सकता है। क्रान्ति या विप्लव के माध्यम से हो सकता है। प्राकृतिक परिवर्तन अथवा क्रान्ति क्षत्रिय युग से विप्रयुग में तथा विप्रयुग से वैश्य युग में आसानी से परिवर्तन ला सकता है लेकिन वैश्य युग के शोषण को हटाने के लिए अवश्य ही तीव्र शक्ति की जरूरत होगी।

वैश्य युग के शोषण के फलस्वरूप क्षत्रिय तथा विप्र मानसिकता सम्पन्न मनुष्य वैश्यों के अधीन हताशाग्रस्त क्रीतदास में परिणत हो जाता है। वे लोग उस समय भी उदरपूर्ति के लिए वैश्यों के अधीन काम करने के अलावे कुछ सोच ही नहीं सकते हैं। इस प्रकार के क्षत्रिय तथा विप्र जो लोग शूद्र मानसिकता में परिवर्त्तित होकर पारिपार्श्विक दवाब से एक प्रकार हताशाग्रस्त विक्षुब्ध हृदय लेकर जीवन बीताते हैं तब उसे विक्षुब्ध शूद्र कहा

जा सकता है। इस प्रकार शोषित विक्षुब्ध शूद्रगण जनसाधारण की हताशा को काम में लगाकर धारावाहिक रूप से इसकी समाप्ति के लिए कोशिश कर सकती है। इसी श्रेणी के लोग स्वतन्त्र विप्लवी मानसिकतापूर्ण श्रेणी तैयार कर देते हैं।

एक मात्र इसी प्रकार विक्षुब्ध शूद्रों के द्वारा परिचालित विप्लव ही वैश्य युग का अवसान घटा सकता है। शूद्र कभी भी वास्तब विप्लवी नहीं हो सकेंगे, क्योंकि उनके अन्दर यथेष्ट परिमाण नैतिक मानसिकता का अभाव मौजूद है। दायित्वबोध तथा संग्रामी मानसिकता का भी काफी अभाव है। वे विभिन्न प्रकार से क्षत-विक्षत है लेकिन मानविक मौलबोध में वे लोग सुप्रतिष्ठित नहीं है। इसीलिए वे लोग किसी हालत में प्रयोजनीय विप्लवी मानसिकता तैयार नही कर सकते हैं। एक मात्र विक्षुब्ध शूद्र ही यथार्थ विप्लवी मानसिकता को तैयार कर सकेंगे, क्योंकि

विषयसूची

उनके अन्दर जिस प्रकार नैतिक साहस भी मौजूद है उसी प्रकार शोषण के विरूद्ध श्रृंखला के साथ लड़ने की मानसिकता भी वे अर्जित कर सकते हैं।

पूँजीवादी शोषण के विरूद्ध इस प्रकार के विप्लव को शुद्र विप्लव कहा जाता है। यद्यपि क्षत्रिय तथा विप्रवर्ग पूँजीवादी शोषण के फलस्वरूप विक्षुब्ध शुद्र में परिणत होता है फिर भी शुद्र विप्लव के बाद वे लोग फिर से क्षत्रिय तथा विप्र मानसिकता में लौट जाता है। लेकिन शूद्र विप्लव के सामरिक मनस्तत्त्व के कराण अन्त तक क्षत्रियों के हाथों में नेतृत्व चला जाता है। स्वभावतः ही एक नया क्षत्रिय युग जन्म लेता है। इस प्रकार क्षत्रिय युग में भी विप्रवर्ग उनकी बुद्धि के जोर पर प्रभाव विस्तार करके विप्र मानसिकता को बरकरार रखने के लिए सचेष्ट होतेहैं। इस प्रकार से क्षत्रिय युग विप्र युग में तथा विप्रयुग के बाद फिर वैश्य युग लौट

कर आएगा। इस के बाद फिर शूद्र विप्लव दिखाई देगा। अतः समाज की गति तथा विप्लव पारस्परिक सम्पर्क युक्त हैं।

समाज चक्र में सामाजिक प्रगति के लिए चार प्रकार के मनस्तत्त्व प्राधान्य विस्तार करता है। एक युग की समाप्ति के अन्तिम पर्व में सामुहिक मनस्तत्त्व का विशिष्टतापूर्ण अवनमन होता है। इसके साथ नैतिक पदस्खलन, सामाजिक गति की ह्रास प्राप्ति, मानसिक-सामाजिक स्थविरता की सृष्टि होती है। उस समय शोषण बाधाओं से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के अस्वास्थ्यकर परिवेश एक युग समाप्ति का संकेत देता है। उस समय विभिन्न श्रेणी सामाजिक क्षमता को हस्तगत करने के लिए तथा अपना कर्त्तव्य स्थापन करने के लिए दूसरों के अधिकार को पददलित करता रहता है। इस प्रकार का द्वन्द्व मानवसभ्यता के उषालग्न से

ही लक्षित होता है। इस प्रकार संघर्ष तथा समिति के माध्यम से मनुष्य अपनी मुक्ति का पथ खोजने का प्रयास किया है।

आधुनिक पृथ्वी में पूँजीवादी शोषण सर्वत्र बाधाहीन रूप से विराज कर रहा है। लेकिन पूँजीवाद भी चरम पतन की ओर द्रुत गति से बढ़ता जा रहा है। पूँजीवीदी व्यवस्था के प्राथमिक स्तर में समाज कुछ सुविधाएँ लक्षित किया था लेकिन समाप्ति के निकट आकर समाज तृप्तिहीन लाभ, असहनीय कठोर जीवन तथा हृदयहीन वञ्चना का शिकार बन चूका है। जो सब पूँजीवादी देश इस प्रकार चरम पूँजीवादी शोषण में जर्जरित हो चूका है वे द्रुत गति से शूद्र विप्लव के पथ पर ही आगे बढ़ रहा है।

विप्लव के प्रकार :- चारित्रिक विशिष्टता के अनुसार विप्लव को साधारणतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

प्रासाद विप्लव तथा पिरामिडीय विप्लव। प्रासाद विप्लव तथा पिरामिडीय विप्लव वास्तव अर्थ में कोई विप्लव नहीं है क्योंकि वे लोग सामूहिक मनस्तत्व परिवर्तन के लिए तथा समाज की अग्रगति के लिए कोई निश्चितता दे नहीं सकता है।

प्राउट अन्य प्रकार के विप्लव के पक्षपाती हैं। इस विप्लव का नाम है न्यूक्लीयर विप्लव। इस विप्लव में समाज जीवन के हर क्षेत्र में –सामाजिक, अर्थनैतिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में ही परिवर्तन संसाधित होता है। नये नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यबोध का उन्मेष होता है जो समाज में प्रगति की गति में द्रुति ला देता है। पुराने युग के बदले नये युग का आगमन होता है। एक प्रकार सामूहिक मनस्तत्त्व के स्थान पर दूसरे प्रकार का सामूहिक मनस्तत्व पैदा होता है। इस

प्रकार का विप्लव ही समाज की सामग्रिक उन्नति तथा प्रगति ले आता है।

इस प्रकार का न्युक्लीयर विप्लव केवल सद्विप्रगण ही ला सकता है क्योंकि वे लोग समाज चक्र के केन्द्रबिन्दु पर अधिष्ठान करते हैं। वे उनके ऐक्यबद्ध प्रयास, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति और सामग्रिक प्रयास के माध्यम से शोषित मनुष्यों को एकताबद्ध करते है और शोषणकारी शासक को पराजित करते हैं। इस प्रकार जनसाधारण को साथ में लेकर किया गया विप्लव समाज को शोषणमुक्त करता है तथा नये युग की सूचना करता है। वह युग शान्ति और श्रीबृद्धि का युग होता है।

न्यूक्लीयर विप्लव का उपादान :

न्यूक्लीयर विप्लव को सार्थक करने के लिए इन के कुछ विशेष उपादानों की जरूरत होती है। इसके लिए पहली जरूरत है कि किसी न किसी रूप में हो शोषण की उपस्थिति होनी चाहिए। जरूरत है एक विप्लवी संघटन की उपस्थिति। जरूरत है प्रगतिशील सदर्थक दर्शन की। इसके अलावे विप्लवी कर्मी वाहिनी, अभ्रान्त नेतृत्व तथा वैप्लविक रणकौशल की जरूरत है।

शोषण की उपस्थिति: समाज में नाना प्रकार का शोषण मौजुद है। स्थान-काल-पात्र के परिवर्तन के साथ-साथ शोषण का धरन-धारण भी बदल जाता है। समाज चक्र के हर युग में ही विभिन्न प्रकार का शोषण दिखाई देता है। उदाहरणस्वरूप अर्थनैतिक क्षेत्र में सामन्ततान्त्रिक शोषण, औपनिवेशिक शोषण, पूँजीवादी शोषण, साम्राज्यवादी शोषण तथा फासिस्ट शोषण। फिर यह शोषण जागतिक, मानसिक, अर्थनैतिक, राजनैतिक तथा

सांस्कृतिक क्षेत्र मे भी हे सकते हैं। अतीतकाल में ग्रीक तथा रोमन साम्राज्य काल में क्रीतदास प्रथा चालु थी। अपना स्वार्थसिद्धि के लिए शासकवर्ग पराजितों का खून सोखता था। मानसिक शोषण के क्षेत्र में मेकी दर्शन की सहायता से भावप्रवणता, संकीर्ण मानसिकता के आश्रय करके जनसाधारण को विभ्रान्त करते थे। गणतान्त्रिक समाजतन्त्र तथा शान्तिपूर्ण सहावस्थान का तत्त्व कपटाचारी मनस्तत्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। अर्थनैतिक शोषण के क्षेत्र में कायमी स्वार्थवादी लोग जनसाधारण को उनके न्युनतम प्रयोजन से वञ्चित रखते थे। सुदखोर लोग काफी अधिक ब्याज पर रूपये उधार देने के व्यवसाय में गरीब किसानों को उनके उत्पादित फसल अभावी विक्रय करने के लिए बाध्य कराते थे, यही सब अर्थनैतिक शोषण का उदाहरणस्वरूप है। शोषक वर्ग शोषण के लिए विभिन्न प्रकार का कौशल अवलम्बन करता है। लेकिन जब समाज विप्लव के रास्ते पर चलने लगता है तब शोषकों की छल-चतुराई पकड़ में आ जाती है। उस समय

शोषकवर्ग उनके शोषण की चतुराई को छीपा कर नहीं रख सकता है।

किसी समाज में शोषण की उपस्थिति कई दिशाओं में नजर डालने पर ही चिह्नित किया जा सकता है। वे सब है चरम दरिद्रता, सामाजिक निरापत्ताहीनता, साधारण मनुष्यों का असाम्य जीवन में न्युनतम प्रयोजन क्रय करने की अक्षमता, समाज के विभिन्न श्रेणियों के बीच विशाल अर्थनैतिक तथा सामाजिक व्यवधान, समष्टिगत सम्पदों का अयौक्तिक बण्टन। भारत के वर्तमान सामाजिक, अर्थनैतिक, तथा राजनैतिक अवस्था अस्वस्थता का साक्ष्य बहन कर रहा है। इसलिए भारत विप्लव के रास्ते पर ही चल रहा है।

वैप्लविक संघटन :- विप्लव और युद्ध प्राय एक ही चीज होती है। विप्लव भी एक प्रकार का युद्ध ही होता है। दोनों में अन्तर यही है कि युद्ध में व्यष्टि या राष्ट्र के द्वारा शक्ति सम्प्रयोग किया जाता है और विप्लव में एक दल मनुष्य शोषणहीन समाज प्रतिष्ठा करने के लिए शक्ति सम्प्रयोग करता है। इसलिए इस वैप्लविक युद्ध में वैप्लविक संघठन की आवश्यकता होती है। विप्लव की मानसिक प्रस्तुति के समय समाज के विक्षुब्ध शूद्रों का एक वैप्लविक संघठन निर्माण करना ही होगा। यही संघठन विप्लव के लिए अनुकुल परिवेश तैयार करेगा।

विप्लव परिचालना करने के लिए बहुमुखी उद्देश्य साधक संघठन का प्रयोजन होता है। संघटन का दायित्व बहुत हद तक सरकार परिचालना करने का समान होता है। वैप्लविक संघटन के क्रियाकलाप का अधिक्षेत्र राष्ट्र के सर्वोच्च स्तर से लेकर

सर्वनिम्न ग्राम स्तर तक विस्तृत होगा। स्थानीय कर्मी तथा संयोग रक्षाकारियों सांघटनिक ढाँचा के प्रत्येक स्तर के साथ योगायोग (सम्पर्क) रखना होगा। सर्वोच्च संस्था ही समस्त वैप्लविक कार्यकलाप परिचालना करेंगे।

सांघटनिक वास्तव ढाँचा बिना तैयार किए ही अथवा ढाँचा में कोई त्रुटि या दोष रखकर ही अगर विप्लव शुरू किया जाय तो उसकी परिणति सर्वनाशा होगी। भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के समय वैप्लविक नेतृत्व ग्राम स्तर तक संघटन तैयार नहीं कर सके थे इसीलिए उस सांघटनिक दुर्बलता को ब्रिटिशों ने कुचल दिया था। यही दुर्बलता अपूरणीय क्षति की सृष्टि की थी। साम्प्रतिक भारत के इतिहास में यही हो रहा है।

प्रगतिशील सदर्थक दर्शन :- वैपल्विक संघठन को एक प्रगतिशील दर्शन के अनुसार चलाना होगा। प्रगतिशील तथा सर्वानुस्युत दर्शन बैप्लविक संघटन का अमोघ अस्त्र है। यह सभी प्रकार भावधाराओं के विरुद्ध लड़ कर सामूहिक मनस्तत्त्व में एक जोरदार तथा सदर्थक तरंग की सृष्टि करता है। एक तरफ जनसाधारण विप्लवमुखी होते हैं, दूसरे तरफ कायमी स्वार्थ के दिग्गज लोग इच्छाकृतरूप से प्रगतिशील परिवर्तन को रोकने की कोशिश करते है। फलस्वरूप सामूहिक मनस्तत्व में एक ध्रुवीकरण का निर्माण होता है। वैप्लविक नेतृत्व का दायित्त्व हुआ प्रगतिशील दर्शन के व्यापक प्रचार के माध्यम से इस प्रकार का ध्रुवीकरण तैयार करना।

वैप्लविक संघठन के दर्शन को अवश्य ही सभी प्रकर संकीर्णता और भावजड़ता से मुक्त होना पड़ेगा। अगर दर्शन के

अन्दर कोई त्रुटि रहे अथवा दर्शन अगर सर्वानुस्युत न हो तो विप्लवियों के हाथों से समाज का नेतृत्व निकल जाने का डर रह जाता है। समाज के प्रगतिशील उन्नयन के क्षेत्र में वह चरम हानिकारक है।

इसके अलावे दर्शन को अवश्य प्रयोग भौमिक होना पड़ेगा--सैद्धान्तिक होने पर नहीं चलेगा। दर्शन के वास्तव प्रयोग के क्षेत्र में अगर कोई त्रुटि रह जाता है तो उसे सुधार लिया जा सकता है लेकिन दर्शन के अन्दर ही अगर मौलिक त्रुटि रह जाय तो उसे कभी भी वास्तवायित नहीं किया जा सकेगा, सुधार भी नहीं किया जा सकेगा।

कार्ल मार्क्स तथा गान्धीजी का तत्त्व त्रुटिपूर्ण दर्शन का उदाहरण है। मार्क्सवाद की मौलिक नीति ही अमनस्तात्त्विक,

अयौक्तिक तथा आमानविक है। मार्क्सवाद कहता है कि पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध एकमात्र पथ है-विप्लव। यह एक सदर्थक भावना है। लेकिन मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक वस्तुवाद, इतिहास की जड़ केन्द्रिक व्याख्या, राष्ट्र की अप्रयोजनीयता की भावना, सर्वहारा का एक नायक तन्त्र, श्रेणीविहीन समाज सब कुछ ही त्रुटिपूर्ण है जिसका वास्तवायन कभी भी संभव नहीं होगा। ठीक इसी कारण से विप्लव के वाद हर कम्पूनिष्ट देशों ही विक्षोभ, अशान्ति तथा दमन का रास्ता अपनाया है। इस धरती पर कोई भी देश नहीं है जो मार्क्स के आदर्श के अनुसार प्रतिष्ठित हुआ है।

गान्धीवाद भी त्रुटिपूर्ण शोषण के हाथों से मुक्ति के निश्चितता की अपेक्षा शोषकों के ही स्वार्थ को अधिक प्रश्रय दिया है। इसीलिए यह एक नजर्थक (Negative) दर्शन है। जब शोषक वर्ग स्वयं ही दर्शन के अन्तर अपना आश्रय खोज लेते हैं तब उस

दर्शन के द्वारा शोषण से मुक्ति पाना असम्भव है। शोषक तथा शोषितों का सहावस्थान कभी भी किसी समाज को शोषणहीन अवस्था में पहुँचा नहीं सकता है। कोई भी वैप्लविक संघठन गान्धीवाद को आदर्श दर्शन के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। अगर कोई संघठन उसे स्वीकार भी कर लेता है तो वह संघटन कभी भी वैलविक संघटन के रूप में परिचित नहीं होंगे तथा बहुत शीघ्र ही वह टुट जाएगा। यह अवश्य ही एक ऐतिहासिक अपरिहार्यता है।

वैप्लविक कर्मी वाहिनी :- विप्लव के लिए उदात्त आहवान ज्ञापन करने के पहले वैप्लविक संघटन को व्यापक प्रस्तुति लेना होगा। विप्लव के सारे उपादान मौजुद रहते हुए भी जब तक शोषित जनसाधारण विप्लव के लिए मानसिक रूप से तैयार न होंगे तब तक विप्लव नही भी हो सकता है।

जनसाधारण अगर मानसिक रूप से विप्लव के पक्ष मे नही तो वे विप्लव की पुकार पर आवाज नहीं देंगे।

आदर्शगत शिक्षा में शिक्षित वैप्लविक कर्मियों को जनसाधारण के मनस्तत्व को विप्लवमुखी कर डालना होगा तथा वैप्लविक संघर्ष में लिप्त होने के लिए उद्बुद्ध करना होगा। ये कर्मीगण प्रगतिशील दर्शन के द्वारा अनुप्राणित होकर युक्तिसम्मत कर्मपद्धति अवलम्बन करेंगे। सामाजिक-अर्थनैतिक चेतना का निर्माण करेंगे तथा जनसाधारण के जीवन धारण के मानोन्नयन के लिए उत्सगीकृत होंगे। इन कर्मियों का कर्त्तव्य होगा हताशाग्रस्त जनसाधारण को विप्लव के रास्ते पर लाने के लिए प्रेरणा उत्पन्न करना। उनके त्याग तथा कर्ममुखीनता के माध्यम से ही सामूहिक मनस्तत्व को वे लोग विप्लव के सपक्ष में लाने में सक्षम होंगे।

विषयसूची

वैप्लविक संघटन का प्रथम तथा प्रधान कर्त्तव्य ही हुआ विप्लव के लिए उत्सर्गीकृत कर्मीवाहिनी तैयार करना।

अभ्रान्त नेतृत्व :- विप्लव की सफलता नेतृत्व के उपर निर्भर करता है। नेतृत्व जितना ही त्रुटिमुक्त होगा जीवन तथा सम्पत्ति की क्षय-क्षति उतनी ही कम होगी। समाज तथा विप्लव के लिए आदर्श नेतृत्व सम्पद स्वरूप होते है। नेता केवल सफल विप्लव ही उपहार नहीं देता है। विप्लव परवर्ती युग में जनसाधारण की आशा-आकाक्षांओं की भी पूर्ति करते हैं।

अभ्रान्त नेतृत्व के अभाव में अनेक देशों में विप्लव परवर्ती पर्याय में सुसंबद्ध तथा समृद्ध समाज निर्माण नहीं किया जा सका है। आदर्श नेतृत्व की धारणा के रूप में प्लेटो का 'दार्शनिक राजा', कनफ्युसियस का 'ऋषि', नितस् का 'अतिमानव' तथा

मार्क्स का सर्वहारा का एकनायक का तत्त्व आया था लेकिन सभी तत्त्व व्यर्थ हो चूके है। तत्त्व के नेता और वास्तव के मानव-गुण-सम्पन्न नेता के बीच आकाश-पाताल का प्रभेद है। तेजबुद्धि, सूक्ष्म विचार शक्ति, सामाजिक चेतना, वाग्मीता तथा अन्यान्य कई गुणावली सम्पन्न नेताएँ हो सकता है नानान प्रकार से इन्धन आपूर्ति करके विप्लव ला सकते हैं। लेकिन परवर्ती समय में समाज को प्रगति का पथ दिखा न सकने के कारण कलङ्क की कालिमा से विभूषित होंगे। वे जनसाधारण के सामने ज्वलन्त समस्यावलियों का समाधान निकालने तथा शोषण बन्द करने में अपारग होते हैं। नेतृत्व कभी भी उपर से थोपा नहीं जाता है। त्याग-तितिक्षा, आन्तरिकता, आदर्शप्रियता, संग्रामी मानसिकता, तथा समस्त प्रकार समस्याओं को समाधान करने की क्षमता की गुणावलियाँ अर्जन के माध्यम से नेता अपने को प्रतिष्ठित करते हैं।

सदविप्र नेतृत्व ही सबसे अधिक आदर्शपूर्ण नेतृत्व हैं। ये एकाधार में शारीरिक शक्तिमान बौद्धिकता में उन्नत तथा आध्यात्मिकता से समुन्नत होते हैं। उन्हीं के पथ निर्देशना में तथा सहायता से विप्लव संसाधित होगा।

वैप्लविक कौशल : वैप्लविक प्रचेष्टा में जो लोग प्रत्यक्ष रूपसे रूकावट पैदा करते हैं उनके पास प्रभूत सामरिक शक्ति रहते हुए भी विप्लवी जनसाधारण ही विजयी होते हैं। इसका कारण केवल सुसंबद्ध संघटन, प्रगतिशील आदर्श तथा सर्वगुण सम्पन्न नेतृत्व ही नहीं, वल्कि उसके साथ उनलोगों के पास वैप्लविक कौशल भी होते हैं।

चूँकि विप्लव के समय शोषक तथा समाजद्रोहियों के विरूद्ध सर्वात्मक संग्राम होगा, अतः जो लोग शोषित हैं उनलोगों

के बीच एकता लाना होगा और उस एकता को बरकरार रखने के लिए भी व्यवस्था करना ही होगा। विप्लवियों को तीन शक्तियों के विरुद्ध संग्राम में अवतीर्ण होना पड़ेगा बहिरागत शोषक, आभ्यन्तरीण शोषक, आभ्यन्तरीण अशुभ शक्ति समूह। यद्यपि ये तीनों शक्तियाँ बहुत ही प्रबल है, फिर भी विरोधीवर्ग विजीत होंगे ही इसका कारण है कि केवल बन्दुक की गोलियाँ ही शक्ति का उत्स नहीं है। विप्लवियों के अन्दर उनकी नैतिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति ही उन्हें विजयी घोषित कर देंगे। जड़ शक्ति की तुलना में नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति अनन्त शक्ति से शक्तिमान होता है।

यद्यपि शोषकों को विताड़ित करना ही विप्लवियों का प्राथमिक कर्त्तव्य है, फिर भी उन्हें निश्चित होना पड़ेगा कि फिर से शोषक वर्ग को क्षमता दखल करने की मौका न मिले तथा गुप्त रूप

से समाज का कोई अकल्याण न कर सके। जीवन तथा सम्पत्ति की क्षय क्षति का परिमाण न्युनतम पर्याय में रखकर समाज के अन्दर से शोषण को हटाना तथा सामूहिक मनस्तत्त्व में प्रगतिशील परिवर्तन लाना ही विप्लव की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

भावावेग की भूमिका :- कोई न कोई भावावेग को लेकर ही विप्लव संघटित होता है। सभी लोगों के हृदयग्राही कोई सुदृढ़ भावावेग न रहने पर विप्लव संघटित नहीं हो सकता है। युक्तियों से भी भावावेग की शक्ति हमेशा ही अधिक होती है।

कम्युनिज्म एक सेण्टिमेन्ट को प्रचार कार्य में व्यवहार किया था दुनिया का मजदूर एक हो। प्राथमिक रूप से जनसाधारण इस सेण्टिमेन्ट से आकर्षित हुआ था। लेकिन कुछ दिनों के बाद ही लोग समझ गए कि यह एक अन्तःसार शून्य तत्त्व है। परवर्तीकाल

में बुद्धिजीवियाँ भी इससे असन्तुष्ट हो उठे। वर्तमान में कम्युनिज्म कोई भी स्थानीय सेण्टिमेण्ट के विरूद्ध में (जो सब सेण्टिमेण्ट विश्व के विभिन्न प्रान्तों में सिर उठा रहा है) लड़ने में अपारग हो चुके हैं क्योंकि कम्युनिजम के सेण्टिमेण्ट से ये सभी सेण्टिमेण्ट बहुत ही तीव्र है।

प्राउट एक विश्वैकतावादी सेण्टिमेण्ट से पुष्ट और वह सेण्टिमेण्ट विश्व के सभी श्रेणी में प्रयोज्य है तथा धारावाहिक रूप से विश्व उसी सेण्टिमेण्ट के रास्ते में ही बढ़ रहा है। विश्वैकतावादी सेण्टिमेण्ट को स्मरण में रखकर भी क्या कोई स्थानीय सेण्टिमेण्ट में उद्बुद्ध कर सकेगा ? एकमात्र प्राउट ही यह काम कर सकेगा। कम्युनिष्टों के पास वैसे कोई आइडिया नहीं हैं। एक मात्र प्राउट ही समस्त स्थानीय सेण्टिमेण्ट को कार्यान्वित करके सभी लोगों को धीरे-धीरे विश्वैकतावाद की ओर ले जा सकता है।

विप्लवियों को अवश्य ही स्थानीय जनसाधारण की आशा-आकाँक्षाए तथा सेण्टिमेण्ट के विषय में सचेतन होना पड़ेगा तथा उस 'sentimental legacy' (सांवेदनिक उत्तराधिकार) को विश्वैकतावाद की ओर अग्रसारित करना होगा। विप्लव की प्रस्तुति काल में इस सेणिट्रमेण्टल लिगैसी को जगाने का निरन्तर प्रयास जारी रखना होगा। क्योंकि भावावेग विप्लव के पक्ष में जनसमर्थन पैदा करने में उत्साह प्रदान करके भी वैप्लविक कर्मियों के वीच अदम्य शक्ति तथा दृढ़-प्रत्यय का निर्माण करता है।

प्राउट के अनुसार भावावेग दो प्रकार के होते हैं-सदर्थक भावावेग (Positive Sentiment) तथा नर्थक भावावेग (Negative Sentiment) । सदर्थक भावावेग संश्लेषणात्मक

प्रकृति का होता है। ये भावावेग समूह समाज को ऐक्यबद्ध करके, मानवता का उद्बोधन करता है, सामूहिक स्वार्थ की श्रीवृद्धि करता है तथा प्रगतिशील अग्रगति को उत्साहित करता हैं। दूसरी और नर्थक भावावेग संकीर्ण विचार धारा युक्त होने के कारण इसे सीमित अवसर प्राप्त होता है और वह भावावेग समाज के अन्दर भेद-विभेद पैदा करता है।

शोषण विरोधी मनोभाव, विप्लवी मानसिकता, नीतिवादी मानसिकता, संस्कृति मनस्कता, विश्वैकतावाद तथा आध्यात्मिककतावाद को सदर्थक भावावेगों का उदाहरण के रूप में ग्रहण किया जाता है। दुसरी और नर्थक भावावेगों का उदाहरण के रूप में ग्रहण किया जाता है। दूसरी और नर्थक भावावेगों की नमुनें हैं-- साम्प्रदायिकता, देशप्रेम, जातीयतावाद, प्रादेशिकता, भाषावाद, जातिवाद ।

समाज के अन्दर कृत्रिम भेद-भाव पैदा करने में या जात-पात के आधार पर समाज को विभाजित करने के उद्देश्य से कभी भी नञ्अर्थक भावावेग को व्यवहार करना उचित नहीं है। लेकिन जनसाधारण के बीच एकता का निर्माण करने के उद्देश्य से इस भावावेग का व्यवहार किया जा सकता है। याद रखना पड़ेगा कि नर्थक पथ समाज के लिए अत्यन्त विपज्जनक तथा हानि का कारण हो सकता है। हिटलर ने समग्र जर्मन जातियों के बीच एकता निर्माण के लिए जातिवाद को व्यवहार करके तात्क्षणिक सफलता हासिल की थी लेकिन चूंकि उन्होंने केवल नर्थक भावावेग को ही जकड़कर बैठे पकड़े हुए थे, चूँकि उनके पास कोई सदर्थक भावावेग नहीं था, इसलिए उनका उद्यम अन्त में विश्वयुद्ध तक पहुँच गया और जर्मनी प्राय ध्वंस के कगार पर आ गया। सदर्थक भावावेग ही समाज निर्माण का वास्तव हथियार है- किसी अवस्था मे इसे भूलना उचित नहीं होगा।

विषयसूची

सदविप्र बनो : सदविप्र तैयार करो

इस धरती पर मानवेतिहास के प्रथम परिक्रमा में अभी तक सदविप्र समाज का निर्माण नहीं हो सका। अधिकांश देशों में प्रथम परिक्रमा का अन्तिम भाग चल रहा है, कुछ अल्प देशों में शूद्र-विप्लवोत्तर क्षत्रिय युग की प्रतिष्ठा हो चूकी है, कहीं-कहीं विप्र युग की संभावनाएँ झाँक रही है। सदविप्र समाज के अभाव में समाज चक्र स्वाभाविक रूप से ही घुम रहा है। हर युग में प्रधान वर्ण के शासन के बाद शोषण आ रहा है, उसके बाद क्रान्ति आ रही है। सदविप्रों की सहयोगिता के अभाव में मानव समाज की बुनियाद मजबूत नहीं हो पा रही है।

विषयसूची

आज हर युक्तिनिष्ठ धार्मिक नीतिवादी संग्रामी मनुष्यों के निकट मेरा अनुरोध है, वे अनतिविलम्ब में एक स्वस्थ सदविप्र-समाज का निर्माण करें। इन सदविप्रों को सभी देशों के लिए काम करना पड़ेगा, सभी मनुष्यों की सर्वात्मक मुक्ति के लिए आगे आना पड़ेगा। लाञ्छित धरती की धुलुण्ठित मानवता उनके आगमन की प्रतीक्षा में अधीर आग्रह से पूर्व आकाश की ओर झाँक रही है। उनके सामने से अमानिशा का अन्धतमिस्रा हट जाय। नवीन सूर्योदय नवीन दिन के मनुष्य नवीन धरती पर जग उठे। इसी शुभ कामना के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

समाप्त

****************X****************

विषयसूची

घोषणा

प्रउत (प्रगतिशील उपयोग तत्व) एक नया आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत है, जिसे आनंद मार्ग प्रचारक संघ के धर्मगुरु श्री प्रभात रंजन सरकार उर्फ़ श्री श्री आनंदमूर्ति जी ने प्रतिपादित किया है। धर्मगुरु के रूप में वे मानव इतिहास में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए एक सिद्धांत दिया। उनके विचार 'प्रउत' पुस्तकों में अभिव्यक्त हैं। उन्होंने न केवल विचार दिए, बल्कि यह भी भविष्यवाणी की, कि एक दिन अवश्य आएगा जब इस पृथ्वी ग्रह के लोग इसे पूरे मन से स्वीकार करेंगे।

विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और अन्य समस्याओं का न्यायोचित समाधान खोजने के उद्देश्य से प्रउत पढ़ें और दूसरों को भी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें।

मानव-निर्मित समस्याओं के कारण विश्व आज विनाश के कगार पर है। प्रउत की नीतियों को लागू करके ही समाज की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

प्रउत की नीतियों को लागू किए बिना इस विश्व को किसी भी तरह विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

"प्रउत" को " प्राउट" भी कहते हैं, जो अंग्रेज़ी Progressive Utilisation Theory का संक्षेप PROUT है।

आप नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करके ऐसी कई पुस्तकें पा सकते हैं।

www.anandamargaideas.com

यदि आपके कोई प्रश्न हों, तो आप पूछ सकते हैं।

आचार्य सत्यबोधानंद अवधूत

व्हाट्सएप नंबर: 8972566147

अक्टूबर 2025

विषयसूची